प्रकाशक : मन्त्री, सर्व-सेवा-संघ
राजघाट वाराणसी
संस्करण : पहला
प्रतियाँ ५ २ अक्तूबर, १९६४
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड
वाराणसी (बनारस) ६११९-२१
मूल्य २ रुपये ५ पैसे
३ रुपये ५ पैसे (सजिल्द)

© स्वामी आनन्द

Title GANDHIJI KE SANSMARAN
Author Shantikumar
Subject Reminiscences
Publisher Secretary
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition First
Copies 5,000 2nd October '64
Price Rs 2.50
Rs 3.50 (Bound)

पूज्य दादी-माँ

तथा

पिताजी और माताजी की पुण्यस्मृति में,

जिन्होंने

सेवा-भक्ति के संस्कारों का सिंचन कर

मुझे गांधीजी तथा देश के दूसरे नेताओं की

सेवा तथा समागम का सौभाग्य प्रदान किया।

बालक

शान्तिकुमार

निवेदन

सौभाग्यवश मैं बम्बई के प्रसिद्ध मोरारजी घराने में जन्मा और बुजुर्गों के पुण्य प्रताप से छोटी उमर में ही गांधीजी के सम्पर्क में आया। सन् १९२१ में मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ। उसके बाद मैं गांधीजी के अधिक निकट आया। अपने कारावास या बीमारियों के बाद गांधीजी एकाधिक बार जुहू के समुद्र-तट पर मेरी दादी-माँ के अतिथि के रूप में हमारे घर आकर रहे। इस कारण उनके साथ के मेरे सम्बन्धों को कुछ विशेष ख्याति प्राप्त हुई।

चूंकि यह सारा सम्बन्ध न्यूनाधिक अंश में निजी ढंग का था इसलिए गांधीजी के स्वर्गवास के बाद जब मित्रों, संस्थाओं अथवा आकाशवाणीवालों और ऐसे ही अन्य लोगों की ओर से मुझे गांधीजी के बारे में कुछ कहने या लिखने के संदेशे मिलने लगे तो मैं परेशानी में पड़कर इनकार करता रहा।

इस देश के सभी लोगों ने गांधीजी को 'राष्ट्र-पिता' माना है। आज हिन्दुस्तान में ही नहीं बल्कि दुनिया के सभी देशों में ऐसे हजारों-लाखों स्त्री-पुरुष होंगे जो गांधीजी के सम्पर्क में आ चुके हैं। हजारों परिवारों में गांधीजी का नाम घर के बड़े-बूढ़ों की जगह पा गया है। ऐसे अनगिनत लोगों में से ही एक मैं हूँ।

गांधीजी के साथ के अपने लम्बे समागम के दिनों में व्यक्तिगत अथवा ऐतिहासिक महत्त्व की बातों या घटनाओं के कोई टिप्पण डायरी अथवा ऐसी कोई चीज मैंने कभी रखी नहीं। लिखने-बोलने

किन्तु दैव की इच्छा कुछ और ही थी। इसलिए ये संस्मरण इस रूप में लिखे गये और प्रकाशित हुए। यह सब मेरी कल्पना के बाहर की बात थी।

× × ×

मूल गुजराती पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद श्री काशिनाथजी त्रिवेदी ने बड़े चाव से और भक्तिभावपूर्वक कर दिया और सर्व सेवा-संघ ने उसे प्रकाशित किया, इसलिए दोनों का मैं ऋणी हूँ।

अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व पं. जवाहरलालजी नेहरू ने एक गुजराती पुस्तक बहन मनुबहन गांधी के यहाँ देखी। उसके कुछ अंश उनसे सुने और इच्छा प्रदर्शित की कि इसका हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। इस कारण भी मेरे लिए इस हिन्दी अनुवाद का मूल्य बढ़ गया है। काश आज वे हमारे बीच होते!

[illegible]
[illegible] १

शान्तिकुमार न. मोरारजी

प्रस्तावना

ये संस्मरण जिन परिस्थितियों में लिखे गये, उसकी चर्चा भाई शान्तिकुमारजी ने अपने निवेदन में की है। तदनुसार उनके साथ बैठकर की गयी हमारी मिली-जुली स्मृति-चर्चा के नोटों के आधार पर उनमें सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री को छाँटकर मैंने ये संस्मरण लिखे हैं और हमने एकाधिक बार साथ बैठकर इन्हें व्यवस्थित किया है। अस्तु उनकी [illegible]। फिर भी मैंने इस बात की सावधानी रखी है कि जिससे उनके मन्तव्यों को ही तन्मय भाव से यथावत् प्रस्तुत कर सकूँ।

उनके पिता स्वर्गीय सेठ नरोत्तम मोरारजी के साथ गांधीजी का वर्षों तक गाढ़ सम्बन्ध बना रहा। भाई शान्तिकुमार भी छोटी उमर में ही गांधीजी के कितने प्रीति-पात्र बन गये थे, इसका पता हमें महादेवभाई द्वारा अंकित गांधीजी के नीचे लिखे शब्दों से चलता है :

> "यह अभी नवयुवक है, पर उसकी आत्मा महान् है। यह स्वयं त्यागी-प्रेमी है और खादी ही पहनता है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि यह कोई उसका बड़े-से-बड़ा गुण है। उसमें दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है। जैसा नाम है, वैसे ही गुण हैं। शान्ति की मूर्ति है। मुझे यह देखकर बहुत आनन्द होता है कि करोड़पति के घर ऐसा रत्न है।"
>
> "बापू के शब्दों में अंकित इस नवयुवक की पहचान हो!"
>
> [illegible] ११-७-१९१ म० ह० दे०

सन् १९ ८ में [illegible] परिस्थिति में हुई*। उसके बाद गांधीजी ने भाई शान्तिकुमार को पहचाना और

के क्षेत्र में मेरी कोई योग्यता नहीं। इन सब कारणों से गांधीजी के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ कहने या लिखने की दृष्टि से मैं सदा ही अनिच्छुक और संकोची बना रहा।

असल में इन संस्मरणों को लिखने का श्रीगणेश उस समय हुआ जब कोई पाँच-सात साल पहले एक बार श्री मनुबहन गांधी कुछ दिनों के लिए बम्बई में मेरे पास आकर रही थीं। किन्तु उस समय मैं एक या दो पृष्ठ से अधिक न लिख सका और फिर लिखना बन्द हो गया। फिर कुछ समय बाद पूज्य स्वामी आनन्द अपनी प्रोस्टेट ग्रंथि के ऑपरेशन के कारण दो-तीन महीने बम्बई रहे। उन दिनों अपने दफ्तर से लौटते समय मैं रोज शाम को उनके स्वास्थ्य-समाचार पूछने जाता था। गांधीजी के कारण उत्पन्न इस सम्बन्ध के अलावा स्वामीजी का हमारे परिवार के साथ बहुत पुराना नाता था। इसलिए रोज-रोज की इन मुलाकातों के चलते हमारे बीच मोरारजी घराने के साथ ही गांधीजी से सम्बन्ध रखने वाली कई पुरानी स्मृतियाँ ताजा हो जातीं और इन चर्चाओं में सहज ही घण्टा डेढ़ घण्टा बीत जाता।

दस-तीन दिनों के बाद स्वामी आनन्द ने बिस्तर पर पड़े-पड़े हमारी इन रोज की बातों को लिखना शुरू किया। यों धीरे-धीरे उनके और मेरे मिले-जुले संस्मरणों के नोटों से एक खासी मोटी संपुट बन गयी। बाद में उन्होंने इस सामग्री में से मेरे संस्मरणों को अलग छाँटकर उन्हें व्यवस्थित रीति से लिख डाला और गुजराती के 'संस्कृति' मासिक में क्रमिक रूप से प्रकाशित करवाया। अब उन्होंने उसी सामग्री को तिथिक्रम से सजाकर और बढ़ा-घटाकर एक व्यवस्थित रूप में यहाँ दिया है।

हमारे परिवार के साथ के अपने पुराने प्रेम के कारण और मुझ पर उनकी जो अपार ममता रही है उसके कारण ही उन्होंने

यह सब मुझसे लिखवा लिया और उस रूप में लिखकर और व्यवस्थित करके छपाया है। सामग्री की सहेजन में और मेरे मनोभावों को तटस्थतापूर्वक पकड़कर उन्हें शब्दबद्ध करने में उन्होंने पूरी सावधानी बरती है। संस्मरणों की सामग्री अधिकांश में मेरी है पर शब्द-शैली भाषा और रचना सब उनकी है। इस सबके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। इसी तरह मैं श्री मनुबहन गांधी का भी ऋणी हूँ जिनकी प्रेरणा से मूलतः इन संस्मरणों का श्रीगणेश हुआ था।

गांधीजी के अलावा मैं देश के अन्य नेताओं के भी सम्पर्क और समागम में आया। इस स्मृति-ग्रन्थ के अन्त में उनमें से कुछ की अभिन्न स्मृतियों को एक स्वतन्त्र प्रकरण के रूप में सम्मिलित करने की धृष्टता मैंने की है। उनमें जीवित नेताओं में से किसी की स्मृतियों का समावेश नहीं किया है।

पुस्तक के प्रकरणों के प्रारम्भ में और अन्यत्र भी जो चित्र दिये हैं वे कुहुकामी हमारी गांधीग्राम की बस्ती के 'जनभवन' में बनाये हुए चित्र, समाधियों आदि के हैं। इसी तरह अपनी स्मृतियों से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ प्रसंगों के फोटो भी मैंने इस पुस्तक में देने का साहस किया है यह समझकर कि वे अपनी जगह पूर्ति के रूप में उपयुक्त ही माने जायेंगे।

इन संस्मरणों को इस तरह लिखकर अथवा लिखवाकर प्रकाशित करने की कल्पना कभी मेरे मन में आयी ही नहीं थी। बहुत हुआ तो कभी मन में यह विचार उठा कि गांधीजी के सम्बन्ध के ऐसे संस्मरण भविष्य में कदाचित् किसी संशोधक अथवा इतिहासकार के लिए उपयोगी सिद्ध हों, इस दृष्टि से उन्हें लिखित रूप में किसी गांधी-संस्था को अथवा संग्रहालय को सौंप दिया जाय।

किन्तु दैव की इच्छा कुछ और ही थी इसलिए ये संस्मरण इस रूप में लिखे गये और प्रकाशित हुए। यह सब मेरी कल्पना के बाहर की बात थी।

× × ×

मूल गुजराती पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद श्री काशिनाथजी त्रिवेदी ने बड़े चाव से और भक्तिभावपूर्वक कर दिया और सर्व सेवा-संघ ने उसे प्रकाशित किया इसलिए दोनों का मैं ऋणी हूँ।

अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व श्री जवाहरलालजी नेहरू ने मूल गुजराती पुस्तक बहन मनुबहन गांधी के यहाँ देखी। उसके कुछ अंश उनसे सुने और इच्छा प्रदर्शित की कि इसका हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। इस कारण भी मेरे लिए इस हिन्दी अनुवाद का मूल्य बढ़ गया है। काश आज वे हमारे बीच होते!

जनमंगल, वडू
जन्माष्टमी २ २

शान्तिकुमार न० मोरारजी

प्रस्तावना

ये संस्मरण जिन परिस्थितियों में लिखे गये उनकी चर्चा भाई शान्तिकुमारजी ने अपने निवेदन में की है। तदनुसार उनके साथ बैठकर की गयी हमारी मिली-जुली स्मृति-चर्चा के नोटों के आधार पर उनसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री को छाँटकर मैंने ये संस्मरण लिखे हैं और हमने एकाधिक बार साथ बैठकर इन्हें व्यवस्थित किया है। वस्तु उनकी, लेखन सारा मेरा। फिर भी मैंने इस बात की सावधानी रखी है कि जिससे उनके मनोभावों को ही तटस्थ भाव से यथावत् प्रस्तुत कर सकूँ।

उनके पिता स्वर्गीय सेठ नरोत्तम मोरारजी के साथ गांधीजी का वर्षों तक गाढ़ सम्बन्ध बना रहा। भाई शान्तिकुमार भी छोटी उमर में ही गांधीजी के विशेष प्रीति-पात्र बन गये थे। इसका पता हमें महादेवभाई द्वारा अंकित गांधीजी के नीचे लिखे शब्दों से चलता है

> "यह अभी नवयुवक है, पर इसकी आत्मा महान् है। यह स्वयं खादी-प्रेमी है और खादी ही पहनता है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि यह कोई उसका बड़े-से-बड़ा गुण है। इसमें दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है। जैसा नाम है, वैसा ही गुण है। शान्ति की मूर्ति है। मुझे यह देखकर बहुत आनन्द होता है कि करोड़पति के घर ऐसा रत्न है।
>
> "बापू के शब्दों में वर्णित इस नवयुवक को पहचानते हो?"
>
> सोमपुर ११-५-१९२ — म० ह० दे०

सन् १९२९ में नरोत्तम सेठ की मृत्यु करुण परिस्थिति में हुई। उसके बाद गांधीजी ने भाई शान्तिकुमार को अपनाया और

भाई महादेव मथुरादास देवदास की कोटि के पुत्रों में उनकी गिनती थी। रोम-रोम का यह सम्बन्ध अन्तिम दिन तक ज्यों का त्यों रहा।

यह निकट सम्बन्ध लगभग तीन दशक तक चला। इस बीच भाई शान्तिकुमार जिन अनगिनत सार्वजनिक और व्यक्तिगत अवसरों प्रसंगों और घटनाओं के साक्षी अथवा भागीदार रहे उनसे सम्बन्ध रखनेवाले इन संस्मरणों में गांधीजी का व्यक्तित्व और चरित्र विविध रूपों में प्रकट होता पाया जाता है। कुछ प्रसंग और चित्र तो ऐसे हैं जिन्हें अकेले वे ही दे सकते थे अन्यथा वे उनके साथ ही काल के उदर में समा जाते। इस पुस्तक के निमित्त से वे सब जनता के लिए सुलभ हुए हैं। इन संस्मरणों से हमें इस बात का भी पता चलता है कि गांधीजी के बारे में प्रचलित कुछ रूढ़ मान्यताएँ जैसे वे यंत्र बिजली अथवा बड़े पैमाने पर चलनेवाले उद्योगों के बिलकुल विरुद्ध थे किस हद तक और किस अर्थ में सच्ची थीं।

इस प्रकार इन संस्मरणों में इस देश के गांधी-युग का कुछ इतिहास अनायास ही समा गया है। बिना किसी नोट या डायरी आदि की मदद के केवल अपनी याद के सहारे उन्होंने अपने इतने विविध संस्मरण देश को दिये यह उनके लिए बड़े गौरव की बात है।

जनता को अपनी यह देन देकर भाई शान्तिकुमार ने राष्ट्र पिता का बहुत ही उचित तर्पण किया है और देश की मूल्यवान् सेवा की है इसमें सन्देह नहीं। मुझे विश्वास है कि जनता इस स्मृति-ग्रन्थ का स्वागत उतनी ही उमंग से करेगी।

स्वामी आनन्द

अनुक्रम

निवेदन : प्रकाशक ५
प्रस्तावना : स्वामी आनन्द ९
१ आरम्भिक स्मृतियाँ १७
बहु-तट पर १९
२ सोलापुर से मन्दीवर्ग ४
४ पिताजी का अवसान ४९
५ बारडोली होती गोलमेज-परिषद् ५८
६ सेवाग्राम (गुरु के साथ) ६५
७ जमनालालजी की गो-सेवा ७४
'क्विट इण्डिया'—पहला बलिदान ८१
९ आगा खान-महल के उपवास ९
१ कस्तूरबा का स्वर्गवास ९६
११ गांधीजी की बीमारी और मुक्ति १ २
१ जुहू-वास (अन्तिम) १ ५
१३ कस्तूरबा का कोष और समाधियाँ १२१
१४ गांधी-जिन्ना-वार्तालाप १३१
१५ [illegible] १४
१६ खादी और उद्योग १४७
१७ सेवाग्राम (आखिर के वर्ष) १७१
१ चिन्ताएँ और दिनचर्या १८६
१९ अन्तिम भेंट २ ७
हे राम २१४
१ अस्थि-विसर्जन और श्राद्ध १६
अन्य संस्मरण २२३
परिशिष्ट २६६

चित्र-सूची

मुखपृष्ठ गांधीजी (कॉपीराइट फोटो कनु गांधी)
[[illegible] में]

फोटोमाला (प्रत्येक फोटो पर छपे अंग्रेजी क्रम के अनुसार) २ गांधीजी द्वारा उपयोग में ली गयी चीजें ३ समाधियाँ ४ गांधीजी के बायें हाथ के अक्षर ५ से २१ कुछ चित्र (परिचय यथास्थान दिया है।)

आवरण १ मनुभाभी २ [illegible] ४ दाहिने हाथ के हस्ताक्षर।

ऋण-स्वीकार

श्री कनुभाई गांधी ने सेवाग्राम में गांधीजी की दिनचर्या के बारे में कोई दो पृष्ठों की मूल्यवान जानकारी लिखकर भेजी इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। इसी तरह एक से अधिक मुद्रकों और प्रकाशन-संस्थाओं ने मेरे अनवरत आग्रह और धाँधलियों को सहन करके यह पुस्तक तैयार कर दी उसके लिए क्षमा प्रार्थनापूर्वक उन सबका भी ऋण स्वीकार करता हूँ। इस पुस्तक में दिये गये चित्रों और फ़ोटोग्राफ़ों के लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। किन्तु भाषा और व्याकरण सम्बन्धी अपने अज्ञान और असावधानी के कारण इस पुस्तक में शब्द और वर्तनी इत्यादि के जो दोष और त्रुटियाँ रह गयी हैं उनके लिए मैं पाठकों के निकट क्षमाप्रार्थी हूँ।

स्वामी आनन्द

गाधीजी
के
सस्मरण
•

१

प्रारम्भिक स्मृतियाँ

हमारे गांधीजी

१ उन दिनों मेरी उम्र कोई ९ साल की रही होगी। हम बम्बई के पेडर रोड वाले 'शान्ति भवन' नामक बंगले में रहते थे। सन् १९१३ में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए 'परमिट रेजिस्ट्रेशन' का आन्दोलन चला रहे थे। जिस दिन पूजनीया कस्तूरबा गांधी जी की गिरफ्तारी का समाचार अखबार में छपा उस दिन पिताजी ने मेरी माँ से कहा

"[illegible] अफ्रीका में हमारे गांधीजी गिरफ्तार हो गये हैं। उन्हें तो गिरफ्तार किया ही गया, उनकी धर्मपत्नी को भी पकड़ लिया।"

हमारा परिवार मूलतः पोरबन्दर का है। गांधीजी भी पोरबन्दर के थे। इसीलिए पिताजी ने 'हमारे गांधीजी' कहा।

उस दिन मैंने पहली बार गांधीजी का नाम सुना।

६ हमारे [illegible] के पोरबन्दर [illegible] [illegible] की [illegible] की थी। [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की बहुत [illegible]। [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] को भी [illegible] [illegible]। [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] होने से हम को [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता।

सबसे अपना काम करवाती जाती और देश-दुनियाभर की बातें रस ले-लेकर सुनाती। इनमें गांधीजी की बातें भी अमुक क्रम से हुआ करतीं। इस तरह मेरे कानों पर गांधीजी के नाम और काम की बातें पड़ने लगीं और मुझमें उनकी बातें सुनने की जिज्ञासा जागी।

१ इसके बाद ९ जनवरी १९१५ के दिन जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से बम्बई आये उस समय उनको अपनी कहाँ ठहराना ठीक होगा इसकी चर्चा करते हुए उस जमाने की बम्बई के बेताज के बादशाह सर फीरोजशाह महेता ने कहा "हम उन्हें भी सयाजीराव गायकवाड़ के महल में ठहरायें। लेकिन पूछताछ के लिए आवश्यक समय था नहीं इसलिए आखिर शान्ति-भवन में ठहराने का निश्चय हुआ। तदनुसार गांधीजी हमारे घर पधारे। कुछ घण्टे रहने के बाद वे स्व. रेवाशंकर जगजीवन के घर चले गये जहाँ वे हमेशा ठहरा करते थे।

उन दिनों गांधीजी अनाज भी हम नहीं खाते थे। मूँगफली और जैतून का तेल (ओलिव ऑयल) आदि चीजें खाया करते थे। उनके खान-पान आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें समझाने के लिए गांधीजी के बेटे स्वर्गीय हरिलालभाई हमारे घर आये थे।

जिस दिन गांधीजी आये उस दिन शनिवार था। जब मैं पाठशाला से घर पहुँचा तब गांधीजी विदा हो रहे थे। पिताजी मुझे सीधे ही गांधीजी के पैर छुआने के लिए ले गये।

"पाठशाला के ये कपड़े मैले हो चुके हैं। इन्हें बदलकर आऊँ तो?"

"गांधीजी ऐसी बातों का खयाल नहीं करते तू तो इसी तरह चला चल।"

मैं गया और मैंने गांधीजी के पैर छुए। मेरी उम्र ११ की थी।

४ इसके बाद की एक घटना गांधीजी के ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय हरिलालभाई सम्बन्धी है। वे उन दिनों कलकत्ते के हमारे दफ्तर में काम करते थे। वहाँ उन्होंने पैसों के मामले में कुछ गड़बड़ की थी। इस सिलसिले में पिताजी का गांधीजी के साथ थोड़ा पत्र व्यवहार हुआ था। पत्र लिखने के बाद पता कैसे लिखना इसके बारे में पिताजी ने पास ही बैठे अपने मित्र श्री कन्हैयालाल (श्री व रणछोड़भाई उदयराम के पुत्र) से पूछा। उन्होंने सुझाया "लिखिये 'महात्मा' मोहनदास करमचन्द गांधी।

हरिलालभाई के इस मामले के सिलसिले में उन्हीं दिनों गांधीजी एक बार और हमारे घर पिताजी से मिलने आये थे। उन्होंने पिताजी से कहा था कि वे हरिलाल के विरुद्ध कानूनी तौर पर जो कुछ भी करना उचित हो सो करें। किन्तु पिताजी ने किसी भी तरह की कोई कार्रवाई न करने की बात कही।

यह वह समय था जब गांधीजी शरीर पर अँगरखा पहनते थे और सिर पर काठियावाड़ी फेंटा ही बाँधते थे।

५ मेरे पिताजी राजनीतिक आन्दोलनों में कहीं कोई खास नेतृत्व अथवा अगवानीवाला काम नहीं करते थे। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक देश-नेताओं के साथ उनका बहुत घना सम्बन्ध था। इस प्रकार के लोग जब कभी बम्बई आते तब अक्सर हमारे ही घर ठहरा करते। पिताजी उनके कामों के लिए बिना अपना नाम दिये हमेशा ही उनकी यथासम्भव मदद किया करते थे। स्व. गोपालकृष्ण गोखले के साथ मेरे पिताजी की गाढ़ी मित्रता थी। जब कभी गोखलेजी बम्बई आते तो वे हमारे ही घर ठहरते। गांधीजी के लिए उनके मन में बहुत ऊँचा विचार था और गांधीजी भी

उन्हें गुरु-तुल्य मानते थे। गोखलेजी ने शुरू से ही गांधीजी को सूचित कर रखा था कि जब कभी उन्हें अपने काम-काज के लिए किसी भी तरह की सहायता की आवश्यकता हो तो वे मेरे पिताजी से मिल लिया करें। बाद के वर्षों का ऐसा एक प्रसंग मुझे याद है। जिन दिनों गांधीजी ने साबरमती आश्रम की स्थापना की उन्हीं दिनों वे एक बार आर्थिक सहायता के लिए पिताजी के पास आये थे और पिताजी ने अपना नाम प्रकट न करने की शर्त पर उन्हें रकम दी थी।

६ सन् १९१५ के अन्त में बम्बई में लॉर्ड सिन्हा के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। मैंने गांधीजी को दूसरी बार वहीं देखा। उस अधिवेशन में जिन्नासाहब दक्षिण अफ्रीका की स्थिति पर बोले थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने भी अपने कोकिलकण्ठ से सुन्दर भाषण किया था। उसी समय इन दोनों को मैंने पहले-पहल सुना था।

७ सन् १९१६ में काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास वाइसराय लॉर्ड हार्डिञ्ज के हाथों मालवीयजी श्रीमती एनी बेसेन्ट और अनेक राजा-महाराजाओं की उपस्थिति में हुआ था। मालवीय जी का आमन्त्रण पाकर गांधीजी भी वहाँ पहुँचे थे। उस सभा में गांधीजी ने एक बॉम्ब गोले जैसा भाषण किया। उस समय मेरी उम्र १२ साल की थी। किन्तु यह भाषण मुझे इतना पसन्द आया था कि मैंने उसे अखबार से छाँटा और मैं उसे बार-बार निकाल कर पढ़ता गया। बाद में यह भाषण गांधीजी के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषणों में माना गया।

८ सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उन दिनों स्वर्गीय रणछोड़राम बाबाभाई मेरे शिक्षक और कम्पैनियन थे। मैंने उनसे पूछा था

हिन्दुस्तान का बड़े-से-बड़ा नेता कौन बनेगा ?

'गांधीजी।

९ सन् १९१६ में मेरे पिताजी ने दूसरे तीन भागीदारों के साथ मिलकर ग्वालियर के महाराजा सिन्धिया से 'मॉवस्टी' नामक स्टीमर खरीदा। इस स्टीमर में उसी साल मैं पिताजी के साथ पहले-पहल विलायत पढ़ने गया। हमारे बम्बई से रवाना होने के दिन गांधीजी भी जमनादास द्वारकादास के साथ अचानक ही हमारे घर आये। उन दिनों उन्होंने फेंटा और अंगरखा पहनना छोड़ दिया था और कुरता तथा खादी की टोपी पहनने लगे थे।

जिस समय गांधीजी आये पिताजी भोजन कर रहे थे। किन्तु गांधीजी तो बिना किसी संकोच के सीधे हमारे भोजनालय में पहुँच गये। मैंने उनके पैर छुए। मुझे आशीर्वाद देते हुए वे बोले

"तू बड़ा वकील-बैरिस्टर बनकर लौटना।

उस समय मेरी उम्र १७ साल की थी। मैं गांधीजी की लिखी 'हिन्द स्वराज' पुस्तक और उनकी दूसरी कई रचनाएँ पढ़ चुका था जिसमें उन्होंने वकालत के धन्धे की कड़ी टीका (= आलोचना) की थी। मेरा मन हो आया कि मैं उनसे पूछूँ कि 'आप तो वकालत के धन्धे के विरुद्ध हैं। फिर भी आपने मुझे ऐसा आशीर्वाद क्यों दिया ?

लेकिन तब ऐसी कोई बात पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

वह २ अप्रैल का दिन था। रौलट-कानून के विरुद्ध गांधीजी ने सविनय अवज्ञा का जो आन्दोलन उठाया था सारे देश में और बम्बई में समुद्र-किनारे चौपाटी पर उसका श्रीगणेश अगले ही दिन

हानेवाला था। इतने बड़े आन्दोलन की जिम्मेदारी सिर पर होते हुए भी भारी व्यस्तता के बीच समय निकालकर गांधीजी हमारे घर आ पहुँचे थे!

१० हमारा स्टीमर अभी विलायत के रास्ते पर ही था कि इतने में बम्बई के मुख्य न्यायाधीश की पत्नी लेडी बोंकिन्सन के नाम स्टीमर पर पिताजी का या किसी और का तार पहुँचा 'हिन्दुस्तान में देशव्यापी आन्दोलन भड़क उठा है। अमृतसर के जलियाँवाला बाग में कत्लेआम हुआ है। गांधी पकड़े गये हैं और पंजाब में फौजी कानून का एलान हो चुका है।

विलायत पहुँचने पर मैंने देखा कि वहाँ के समाचार-पत्रों में हिन्दुस्तान के बारे में शायद ही कभी कोई खबर छपती थी। जब बम्बई के अखबार पहुँचे तभी मुझे पहले-पहल ब्योरेवार खबरें पढ़ने को मिलीं।

११ विलायत में हैरो के प्रसिद्ध विद्यालय के एक सेवा-निवृत्त शिक्षक के घर मैं खानगी विद्यार्थी के रूप में रहने लगा। मेरे साथ भारत का एक और राजकुमार भी था। एक दिन मेरे शिक्षक की पत्नी ने श्रीमती बेसेन्ट की बात बतायी

'यह स्त्री हिन्दुस्तान में राजनीतिक आन्दोलन चला रही है और हिन्दुस्तानियों को हमारे साम्राज्य के विरुद्ध उभाड़ती रहती है। इनके बाप इसी हैरो में थे। उन दिनों यह लड़की चर्च में जाकर खाली कुर्सियों के सामने खड़ी रहती थी और भाषण करने का अभ्यास करती थी। इस तरह उसने भाषण करना सीखा।

'उनके साथ तो हमारा गहरा सम्बन्ध है। अब भी बम्बई आती हैं, हमारे ही घर ठहरती हैं।'

सुनकर शिक्षक की पत्नी ने मुँह बनाया और उनका मन खट्टा हो गया। मैंने मजाक में भी खिझाने के विचार से कहा

'गांधीजी के साथ भी हमारा ऐसा ही बना सम्बन्ध है।'

एक दिन मेरे शिक्षक की इस पत्नी ने मुझे आदेश दिया कि मैं अपने कमरे में श्रीमती बेसेण्ट और गांधीजी के फोटो न रखूँ।

मैं कुछ बोला नहीं। लेकिन उसी दिन बम्बई पत्र लिखकर दोनों के बड़े आकार के फोटो मँगवाये और जैसे ही वे आये मैंने उन्हें अपने कमरे में सजाया।

शिक्षक-पत्नी लाल-पीली हो उठी। उन्होंने अपने पति से इसकी शिकायत की। लेकिन चूँकि मैं उन लोगों को अपने कमरे का किराया चुकाता था इसलिए पति ने पत्नी की बात मानी नहीं।

हिन्दुस्तान के राजनीतिक प्रश्नों नेताओं और विचारों के सिलसिले में इस महिला के साथ समय-समय पर मेरी नोक-झोंक होती रहती थी। इस कारण वह मुझे परेशान भी करती थी। मैं शाकाहारी ठहरा इसलिए खाने-पीने के मामले में भी वह मुझे सताया करती थी। उन्हीं दिनों वहाँ रेलवेवालों की एक बड़ी हड़ताल हुई। हड़ताल के नेता थे—मि. टॉमस (जो बाद में मजदूर दल के शासन-काल में मंत्री बन गये)। खाने-पीने की चीजें मिलती नहीं थी। कण्ट्रोल के कायदे भी बहुत कड़े थे। इस बहाने भी शिक्षक-पत्नी ने मुझे एक-दो दिन भूखा रखा था। किन्तु सब-कुछ सहन करके भी मैं शाकाहारी ही बना रहा।

१२ जिन दिनों मैं विलायत में था मैंने वहाँ गांधीजी के चित्रवाला एक बैजवडर तैयार किया था। उस पर सूत्र-वाक्य के रूप में Truth Conquers All शब्द लिखवाकर अन्त में

मैंने प्रश्नचिह्न बनवाया था। उन दिनों यह कैलेण्डर बहुतों के लिए विनोद की सामग्री बना और पिताजी ने इसकी एक प्रति खुद गांधीजी को भी दी।

११ अप्रैल सन् १९२ के अन्तिम सप्ताह में गांधीजी पूना के निकट सिंहगढ़ के किलेवाले हमारे बंगले में कुछ दिन आकर रहे थे। उन दिनों मैं विलायत में था। लेकिन स्वर्गीय महादेव भाई, डॉ. जीवराज, स्वामी आनन्द और बालकोबा भावे आदि गांधीजी के साथ थे।

यह किला उत्तम जलवायु के लिए प्रसिद्ध है और इसके देवकुण्ड का पानी उत्तम माना जाता है। लेकिन किला अपने-आपमें बिलकुल वीरान हालत में है। मुश्किल से ८१ बंगले होंगे। उन दिनों वहाँ कोई चीज-वस्तु मिलती न थी। सब-कुछ अठारह मील दूर पूना से मँगवाना पड़ता था। यहीं स्वर्गीय दाजी आबाजी खरे के बंगले में लोकमान्य तिलक भी कभी-कभी आकर रहते थे। जब गांधीजी सिंहगढ़ पहुँचे तो स्वामी आनन्द के आग्रह से तिलक महाराज भी गांधीजी के समागम की दृष्टि से खास तौर प सिंहगढ़ आये और रहे थे। दुर्भाग्यवश अहमदाबाद में मिल मजदूरों की हड़ताल की सम्भावना की खबर मिलने से इन दोनों महानुभावों का सहवास अपेक्षाकृत कम रह पाया। कोई पाँच-छह दिन के बाद ही गांधीजी को वापस अहमदाबाद जाना पड़ा। वे १९२ के अप्रैल महीने की २९ तारीख से लेकर ४थी या ५वीं मई तक सिंहगढ़ रहे थे। इसके कुछ ही महीनों बाद १ अगस्त १९२ के दिन बम्बई में लोकमान्य का स्वर्गवास हुआ।

उसी साल मेरी माताजी का भी अवसान हुआ। इस कारण मैं विलायत छोड़कर वापस हिन्दुस्तान आया। आने के बाद तुरन्त

ही गांधीजी के दर्शनों के लिए मणि भुवन पहुँचा। किन्तु वे सोये हुए थे इसलिए दूर ही से दर्शन करके लौट आया।

●

१५ चूँकि मणि-भुवन में मैं गांधीजी से मिल नहीं पाया था इसलिए कुछ दिनों के बाद मैं साबरमती पहुँचा। सेठ अम्बालाल साराभाई के घर ठहरा। वहाँ से साबरमती आश्रम गया। पूरा दिन गांधीजी के पास बिताया। उनके साथ बैठकर भोजन किया। उस समय आश्रम में एक ही बड़ा सामूहिक भोजनालय सोमनाथ-छात्रालय के पीछे चलता था। जहाँ तक मेरा ख्याल है, उन दिनों भोजनालय के नीचेवाले तलघर में पुस्तकालय था। जीमनेवाले जीम चुकने पर थाली में हाथ धोते और फिर थाली उठाकर उसे बाहर माँजने ले जाते। हम लोग थाली में हाथ नहीं धोते इसलिए मैं बाहर गया और हाथ-मुँह धोकर वापस आने के बाद अपनी थाली माँजने के लिए उठाने पहुँचा किन्तु आकर देखा तो पता चला कि गांधीजी ने मेरी थाली उठवाकर किसीको माँजने के लिए सौंप दी थी। मैंने कहा

"हम लोग थाली में हाथ नहीं धोते इसलिए हाथ-मुँह धोकर मैं थाली मलने आ ही रहा था।"

बापू "कोई बात नहीं।"

मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ।

१ जब कभी गांधीजी बम्बई आते तो जितने भी दिन वे बम्बई में ठहरते उतने दिन मैं रोज शाम मणि भुवन जाया करता। उन दिनों शाम की प्रार्थना मणि भुवन की छत पर हुआ करती थी। एक दिन मेरा सिर दुख रहा था। मैंने घर पर फोन किया "देर से

पहुँचूँगा। भोजन नहीं करूँगा। उन दिनों श्री रेवाशंकरभाई का छोटा लड़का बीमार था। इसलिए वे बोरीवली रहते थे। गांधीजी ने मुझसे कहा

'मुझे रेवाशंकरभाई से मिलने बोरीवली जाना है। तुम मुझ से चलोगे ?

मैंने 'हाँ' कहा।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का एक शिष्ट-मण्डल मिलने आया था। उसके साथ चल रही बातचीत को रोककर शाम की प्रार्थना के बाद जाने का निश्चय हुआ था। लेकिन प्रार्थना के बाद भी लोगों की भीड़ छँट नहीं रही थी। बड़ी मुश्किल से रात ९ बजे हम अपनी 'ईम्पर्स ऐरो' मोटर में रवाना हुए। रास्ते में गांधीजी ने मुझसे पूछा

'शाम को तुम क्या खाते हो ? तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?

'पूरी आदि तली हुई चीजें अच्छी नहीं लगतीं। ताजी रसोई भाती है।

बाद में पण्ढरपुर के मन्दिर के विठोबा की मूर्ति के बारे में चर्चा चली। पहले एक बार गांधीजी ने महादेवभाई से पूछा था

'पण्ढरपुर के विठोबा की मूर्ति अपने दोनों हाथ कमर पर रखकर खड़ी है इसका अर्थ क्या हो सकता है ?

महादेवभाई ने कहा था 'पता लगाकर आपको बताऊँगा।

मोटर में महादेवभाई ने कहा

'काका (कालेलकर) कहते हैं कि दोनों हाथ कमर पर रखकर मूर्ति को खड़ा जो रखा है सो पुरुषातन* का सूचक है।

---

* इस विषय में काकासाहब कालेलकर, विनोबाजी तथा प्यारेलालजी के स्पष्टीकरण परिशिष्ट (पृष्ठ २६६) में देखिये।

उन दिनों मेरी मासी बुआ अहमदाबाद में रहती थीं। उनका घर शहर में पड़ता था। मेरे फूफा [illegible] सेठ धर्मी कुछ दिन पहले ही गुजरे थे।

इसलिए गांधीजी पहले मासी बुआ से मिलने उनके घर गये। गांधीजी मौत के बाद शोक-समवेदना के लिए जाना और बीमारों को देखने जाना कभी चूकते न थे।

वहां से निकलकर हम [illegible]भाई के घर रात को ११ बजे के बाद पहुंचे।

होटल पर पहुंचने के बाद घर से उतरकर गांधीजी ने [illegible]भाई के पैर छुए। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

पहुंचते ही गांधीजी ने [illegible]भाई से पूछा

"तेरा घर में कुछ खाने को होगा? [illegible] में भोजन नहीं किया है।"

मैंने बहुत कहा "[illegible] रहा है। मुझे खाना ही नहीं है। इसलिए मैं घर पर खाना भी खा चुका हूं।"

फिर भी देखा कि गांधीजी ने होटल में खाना कुछ लिया था [illegible] [illegible]भाई ने [illegible] भोजन बनवाया ही।

और हम भोजन करने लगे।

[illegible] की [illegible] का [illegible] पूछने के बाद गांधीजी ने [illegible] के साथ श्रीमद् [illegible] के बारे में बातचीत की। [illegible] के श्रीमद् की पुस्तक के लिए एक प्रस्तावना लिखकर दी थी। [illegible] लिखा था कि वे स्वयं श्रीमद् को ईश्वर नहीं मानते। [illegible] का कहना था [illegible] ने उपदेश के रूप में लिखा था कि [illegible] का लिए [illegible] पूजा करना है। [illegible] की [illegible] [illegible] कि वह [illegible] होता है [illegible] लिए नहीं पूछना।

रेवाशंकरभाई 'आपके ऐसा लिख देने से मेरी स्थिति कुछ नाजुक हो गयी है !"

बाद में मैंने सुना था कि वह पुस्तक गांधीजी की प्रस्तावना के बिना ही छपी थी !

लौटते समय तक आधी रात हो चुकी थी। उस दिन गांधीजी का शाम का टहलना हो नहीं पाया था। इसलिए जैसे ही वर्ली के समुद्र-तट पर पहुँचे मोटर खड़ी करवाकर गांधीजी नीचे उतरे और हाजीअली के नाके तक पैदल चले। इस तरह आधी रात के बाद भी वे टहल लिये !

कोई डेढ़-दो बजे के लगभग हम लोग मणि-भुवन वापस पहुँचे होंगे। लेकिन उसके बाद भी गांधीजी सोये नहीं। दक्षिण अफ्रीका के शिष्ट-मण्डल के सदस्य उस समय भी जाग ही रहे थे। गांधीजी उनके साथ बैठे और अधूरी चर्चा पूरी करने के बाद ही उठे !

उन लोगों को सवेरे ही छूटनेवाले स्टीमर में वापस दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना होना था।

मुश्किल तीन बजे मुश्किल से पौन घण्टा सो पाये होंगे। उन दिनों सवेरे की प्रार्थना चार बजे हुआ करती थी। मैंने अक्सर देखा था कि उस जमाने में गांधीजी रोज के चौबीस घण्टों में से २०-२१ घण्टे काम करते रहते थे।

१६ गोपी बुआ साबरमती आश्रम के श्री लक्ष्मीदास आसर की काकी होती थी। उनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उन्होंने लक्ष्मीदासभाई की एक लड़की को अपने पास रखकर उसका पालन पोषण किया था। स्वर्गीय जमनालालजी बजाज उसका विवाह जाति के बाहर कराना चाहते थे। गांधीजी ने भी पत्र-व्यवहार किया था। गोपी बुआ बहुत चतुर और बड़ी समझदार थी। सुन्दर उत्तर लिखा

करती थीं। हम ठहरे पुरानी पीढ़ी के लोग। आजकल आधुनिक की लड़कियाँ पुराने रीति-रिवाज नहीं मानतीं। न चूड़ी पहनती हैं, न बिन्दी लगाती हैं। सुना सिर खुला रखती हैं। हम पुरानी चालों के घर नये समाज बनाकर देखें ? आदि-आदि। आखिर उन्होंने लड़की का विवाह [illegible]-परिवार में ही किया !

•

१७ सन १९२१ की गर्मियों में मैसूर के दीवान सर मिर्ज़ा इस्माइल हमारे यहाँ आये। उन दिनों गांधीजी भी बम्बई में थे। मिर्ज़ासाहब बोले

मैं एक बार गांधीजी को उनसे मिले बिना ही नज़दीक से देखना चाहता हूँ।

मैं उन्हें [illegible] लेकर गया। गांधीजी दीवानखाने [illegible] के सामने दूसरी [illegible] पर बैठे थे और मौलाना शौकतअली के साथ बातचीत कर रहे थे। [illegible] उनके [illegible] के लिए [illegible] को सार्वजनिक रूप से [illegible] माँगनी पड़ी थी। [illegible] उसी [illegible] में बात रही थी। [illegible] [illegible] [illegible] थीं। [illegible] [illegible] [illegible] को दूर से देखते हुए [illegible]।

[illegible] गांधीजी को देख लिया।

[illegible] [illegible] है, तो [illegible] हम [illegible] चलें।

[illegible]। [illegible] मौलाना शौकतअली की ऊँचाई देखते हैं।

मौलाना के [illegible] के बाद गांधीजी से [illegible] ही हम [illegible]। [illegible] [illegible] गांधीजी के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए

१८ बम्बई की गिरगांव खेतवाड़ी और फ़ारसरोडवाली बस्तियों में गोवा तथा दक्षिण कोंकण की नायकिनें पीढ़ियों से आबाद हैं। वे 'गोवावालियां' कहलाती हैं। ये ऊंचे स्तर की किन्तु हलका धन्धा करनेवाली स्त्रियां विनय-विवेक में खानदानी घरों की बहू-बेटियों को भी मात करती हैं। इन नायकिनों की एक छोटी मण्डली एक बार गांधीजी से मिलने मणि-भुवन आयी। गांधीजी ने अपनी बैठकवाले दीवानखाने में उनका स्वागत किया। उनकी मुखिया बहन को सम्मान के साथ अपनी बैठने की गादी पर अपने पास बैठाकर उन्होंने बड़े ही सद्भाव के साथ सब बहनों से बातें कीं और उन्हें समझाया कि वे अपना अनीतिपूर्ण धन्धा छोड़ दें। मुझे कुछ धुंधली सी याद है कि इस घटना के सम्बन्ध में गांधीजी ने उन दिनों 'नवजीवन' अथवा 'यंग इण्डिया' में एक टिप्पणी लिखी थी।

१९ जिन दिनों गांधीजी मणि-भुवन में ठहरते थे उन दिनों जब भी कभी उन्हें बाहर दौरे पर जाना होता था तब प्रायः मैं ही उन्हें स्टेशन पर पहुंचाया करता था। स्टेशन की ओर जाते समय रास्ते में किसीसे मिलना-भेंटना होता तो हमेशा मुझसे उतने समय की गुंजाइश रखने को कह दिया करते थे। बम्बई के प्रसिद्ध शेयर दलाल स्व. मनसुखलाल छगनलाल की मृत्यु के बाद जब गांधीजी पहली बार बम्बई आये तो उन्होंने सदा की तरह मुझसे कहा "उनकी पत्नी से मिलकर ही स्टेशन जाना है, इतना वक्त रखना।

मैं जानता नहीं था कि वे मनसुखलाल कौन-से हैं उनका घर कहां है और कितनी दूर है। मैं तो उन्हें शेयर-बाजार के उनके चालू छोटे नाम से ही पहचानता था। इसलिए मैं थोड़े सोच में पड़ा। गांधीजी मेरी परेशानी को ताड़ गये। बोले

'वो बड़े शेयर-दलाल थे।

फिर तो मैं समझ गया और उनके घर तक जाकर आने में कितने मिनट अधिक खर्च होंगे, इस सबका ठीक अन्दाज लगा-बैठाकर और उतने समय की गुंजाइश रखकर मैं गांधीजी को उनके घर ले गया। बाद में मैं हमेशा इसी तरह करता रहा।

२० जब कुलाबे से अहमदाबाद जाते तो रेलगाड़ी पर सवार होने से पहले कफ परेड मिलिटरी कैम्प आदि की दिशा में एकान्त मार्ग पर, जहाँ तमाशबीनों अथवा भक्तों की भीड़ का कोई उपद्रव न रहता था वे पैदल चलकर शाम का अपना टहलना पूरा कर लिया करते थे।

उन दिनों इस दल के आसपास गोरे सैनिकों की बैरकें थीं। एक बार एक यूनीफॉर्म पहना हुआ सैनिक लोगों की भीड़ में से रास्ता करता हुआ सामने आया और बड़ी ही कोमलता तथा नम्रता के साथ बापू से हाथ मिलाकर बोला

"मि. गांधी, मैं आपका बड़ा प्रशंसक हूँ।" कहकर चला गया।

२१ एक बार मैं अपने चाचा रतनसीभाई के लड़कों भाई प्रताप और दीपकभाई को लेकर गांधीजी के पास पहुँचा था। मैंने दोनों का परिचय कराया। गांधीजी ने पूछा

"खादी नहीं पहनते?" मैंने कहा "खादी नहीं पहनते। किन्तु स्वदेशी (मिल के) तो पहनते ही हैं।"

'सच है सच है। पानी से खून गाढ़ा होता ही है।' —Blood is thicker than water

हम सब हँस पड़े।

●

२६ जलियाँवाला बाग के कत्ले-आम और पंजाब के फौजी शासन के बाद के पहले वाइसराय लॉर्ड रीडिंग रहे। वे जिस स्टीमर में आये उसीमें मेरे पिताजी भी थे। उन्होंने पिताजी पर कुछ ऐसी मोहिनी डाली मानो वे हिन्दुस्तान का इतना हित करेंगे जितना इससे पहले किसीने न किया हो। पिताजी ने स्टीमर पर से ही मुझे तार किया

'गांधीजी से कहना नये आनेवाले वाइसराय बहुत अच्छे आदमी हैं। हिन्दुस्तान के लिए यथासम्भव सब कुछ करना चाहते हैं।

मुझे तो कोई आशा थी नहीं किन्तु पिताजी की खातिर मैंने गांधीजी को यह बात कह दी थी।

२७ गांधीजी की अंग्रेजी इतनी सादी संक्षिप्त और जोरदार होती थी कि उनके कट्टर विरोधी अंग्रेज भी उनके 'यंग इण्डिया' को बड़े चाव के साथ पढ़ा करते थे और हर हफ्ते उसकी बाट जोहा करते थे। खुद लॉर्ड रीडिंग इस खयाल से कि कहीं उनके कार्यालयवाली प्रति उन्हें देर से न मिले अपने लिए अलग से एक अतिरिक्त प्रति मँगवाते थे। बाद में जब गांधीजी ने कुछ समय के लिए अपना राजनीतिक आन्दोलन स्थगित किया तो लॉर्ड रीडिंग ने अपनी प्रति बन्द करा दी।

गांधीजी ने स्वामी से पूछा

ऐसा क्यों किया होगा ?

महादेवभाई ने कहा

आजकल आपने राजनीतिक लेख लिखना लगभग बन्द कर दिया है। इधर तो आप यही लिखते रहते हैं कि आश्रम में किसीके कान कटवाये किसीका सिर मुँड़वाया किसीकी चूड़ियाँ निकलवायी

गांधीजी के

आदि आदि। भला इन बातों में वाइसराय को क्या दिलचस्पी हो सकती है?

२५ सन् १९२० में मेरे विलायत से लौटने के बाद गांधीजी ने मेरी ऑटोग्राफ-बुक में नीचे लिखा एक वचनामृत अंकित कर दिया था:

> "अपनी अन्तरात्मा जिसे सत्य माने मृत्यु के समय तक भी उसका अनुसरण करते रहना चाहिए। इससे अधिक उत्तम धर्म मैं जानता नहीं।"
>
> (संवत् १९७७ पौष सुदी ९)
>
> मोहनदास करमचन्द गांधी

इसके कुछ वर्षों बाद १५ जून १९२७ के दिन मैंने अपनी 'ऑटोग्राफ-बुक' में एक ही दिन भारत के चार बड़े नेताओं के ऑटोग्राफ लिये थे। वे इस प्रकार थे:

Be a Man — मोतीलाल नेहरू
Be a God — चितरंजन दास
Be a Child — चक्रवर्ती राजगोपालाचारी
Be True — वल्लभभाई पटेल

मेरी ऑटोग्राफ-बुक का यह पृष्ठ एक बार महादेवभाई ने देखा और उन्होंने उसे गांधीजी को दिखाया। गांधीजी ने कहा:
"सबने original (मौलिक) बनने की कोशिश की है पर कोई बन नहीं सका!"

२

जुहू-तट पर

गांधीजी का 'अस्पताल'

२५. सन १९२२ में गांधीजी को ६ साल की सजा हुई थी उसमें से लगभग २½ साल तक जेल में रहने के बाद १९२४ में पूना के सासून अस्पताल में उनका 'एपेण्डिसाइटिस' का ऑपरेशन हुआ। इस ऑपरेशन के बाद आखिर सरकार को उन्हें रिहा कर देना पड़ा। रिहाई के बाद गांधीजी सीधे जुहू-तटवाले हमारे धाम-वन नामक बँगले पर आये और ११ मार्च से २८ मई तक वहीं रहे। उन दिनों मेरे पिताजी काश्मीर में थे। इस कारण व्यवस्था का सारा भार मुझ पर ही पड़ा। किन्तु भोजन-सम्बन्धी सारी व्यवस्था अपने जिम्मे लेकर स्व. रेवाशंकरभाई ने पिताजी की अनुपस्थिति का अभाव खटकने नहीं दिया।

गांधीजी जहाँ भी जाते अकेले तो रहते ही न थे। उनके पास बीमारों का काफिला इतना बड़ा होता था कि एक अच्छा-खासा अस्पताल बन सके। स्व. मगनलाल गांधी की पुत्री राधाबहन सरदार की पुत्री मणिबहन आचार्य कृपालानी की बहन लीलीबहन ये सब—साथ ही थीं। सब बीमार।

२६. गांधीजी बँगले की पहली मंजिल के बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठा करते थे। सामने पैर रखने के लिए एक स्टूल

होता था और उसकी बगल में पुस्तक आदि रखने के लिए दूसरा स्टूल रखा था। गांधीजी के आने का निश्चय होते ही मैंने रस्किन टॉल्स्टॉय थोरो आदि गांधीजी के प्रिय महापुरुषों की तसवीरें दीवार पर टांग दीं।

गांधीजी ने मुझसे पूछा था

'ये तसवीरें यहां मेरे कारण ही लगायी हैं न ?'

फिर लोगों में माना यह जाता है कि रस्किन टॉल्स्टॉय और थोरो को पढ़ने के बाद ही मैंने उनके सिद्धान्तों को अपनाया है। किन्तु सच यह है कि अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ होने के बाद ही मैंने इनकी पुस्तकें पढ़ीं और मेरी श्रद्धा अधिक दृढ़ हुई।

२३ उन्हीं दिनों स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की चर्चा चल रही थी। देशबन्धु दास पंडित मोतीलाल नेहरू मौलाना मुहम्मद अली अभी अभी छूट आये। उन दिनों मौलाना मुहम्मदअली कांग्रेस के अध्यक्ष थे। बहुत सख्त गर्मी पड़ रही थी और रमजान का महीना था। मौलाना साहब रोजा रखते थे। फिर भी उस दोपहरी में ठेठ आश्रम तक सड़क की रेत पर चलते हुए गांधीजी के पास आते थे।

दासबाबू एक छोटी कुर्सी पर गांधीजी के सामने बैठ जाते और उनसे बातचीत करने लगते। उन दिनों उनका स्वास्थ्य भी गिरा हुआ था। यहीं स्वराज्य-पार्टी की स्थापना का निश्चय हुआ। इन चर्चाओं के बारे में गांधीजी ने मौलाना मुहम्मदअली से कहा था

'आपको ठीक जंचे तो आप सब इसकी स्थापना कीजिये। मैं विरोध नहीं करूंगा। अपना सारा ध्यान खादी में और रचनात्मक कामों में ही लगाये रहूंगा।'

२८ स्वर्गीय कृष्णालाल मोहनलाल झवेरी का मेरे पिताजी के साथ गहरा सम्बन्ध था। दीवाली आदि के अवसरों पर दोनों एक-दूसरे से मिलने आया करते थे। गांधीजी के जुहू आने पर मैं उन्हें एक बार गांधीजी के पास ले गया। दोनों बहुत प्रेमपूर्वक मिले। फिर गांधीजी ने कहा

'आपने मेरे साथ काम करने का वादा किया था। कहिये अब कब आते हैं?

'दो-तीन साल के बाद। पेन्शन पक जाने पर।

'अभी ही क्यों नहीं?

कृष्णालाल काका ने हाथ जोड़े।

२९ जुहू-वास के इन्हीं दिनों में वैशाखी पूर्णिमा की शाम को बुद्ध-जयन्ती मनायी गयी थी और हमारे बँगले के सामने समुद्र तट पर जनता की भारी भीड़ के सामने दो वर्षों के कारावास के बाद गांधीजी का पहला सार्वजनिक भाषण हुआ था।

३० एक बार जुहू की हमारी लाइब्रेरी में गांधीजी ने प्राकृतिक उपचार के प्रसिद्ध जर्मन-विशेषज्ञ लुई कूने की पुस्तकें देखीं। बोले

'तुम्हारे क्या काम की हैं? मुझे दे दो।

'समूची लाइब्रेरी ही ले जाइये न!

'एक शर्त पर ले जा सकता हूँ। आलमारी के साथ इन पुस्तकों को साबरमती पहुँचाने की व्यवस्था तुम्हें करनी होगी।

मैंने कबूल किया।

इस लाइब्रेरी को साबरमती ले जाने की चर्चा एकाधिक बार हुई लेकिन वह साबरमती न गयी सो नहीं ही गयी! कोई-न-कोई विघ्न आता ही चला गया।

६ गुरु-जयन्ती यह १९२४

७ कस्तूरबा

८ महादेवभाई
हरिपुरा-कांग्रेस १९३

९. विनोबाजी के साथ
सेवाग्राम १९४२

११ सामप्रार्थना
। प्रार्थना मे बाप

गांधीजी तथा मालिनियार
सत्याग्रह

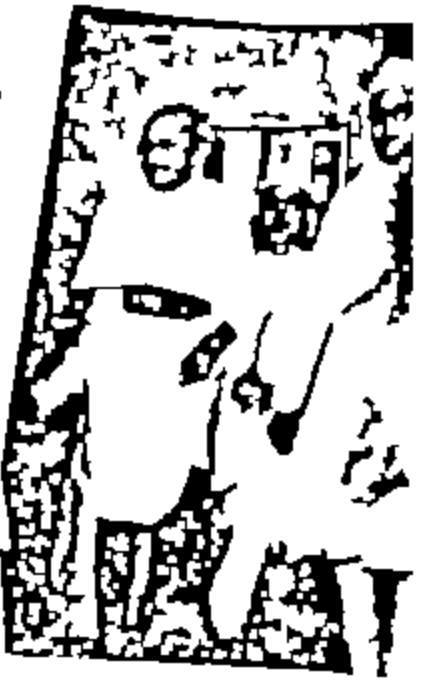

। मिलिया हाउस में । ४२
पावना पग हाउस मे बं

मेरे पिताजी का प्राकृतिक उपचार में विश्वास था। नवरात्रि के ९ दिन पानी पीकर रहते थे। सौंफिया बराबर खाते रहते थे। स्वास्थ्य उपचार, आहार-सम्बन्धी प्रयोग और ऐसी ही अन्य बातों में गांधीजी वैज्ञानिक जैसी रुचि रखते थे। जब उन्होंने पिताजी के नवरात्रिवाले उपवासों की बात सुनी तो तुरन्त ही पत्र लिखा 'उपवास किसलिए कर रहे हैं? उपवास के दिनों में क्या लेते हैं? पानी कितनी बार और कुल कितना पीते हैं? इन उपवासों के चलते दस्त होते हैं या नहीं?' आदि कितनी ही ब्यौरे की बातें पूछी और उनका तफसीलवार खुलासा करनेवाला जवाब माँगा।

१२. एक बार मैंने वर्धा में गांधीजी के एक मंत्री श्री कृष्णदासभाई से गांधीजी के हाथों-कते सूत की एक गुण्डी और उनकी एक खड़ाऊँ-जोड़ माँगी। उन्होंने गांधीजी से पूछकर मुझे दोनों चीजें दे दीं।

गांधीजी ने मुझसे कहा

ले जाओ। लेकिन इस खड़ाऊँ की पूजा तो नहीं करोगे न? देखना ऐसा कोई काम न करना!

१३. जब गांधीजी एक बार और जुहू-तटवाले बिड़ला-हाउस में रहने आये थे उस समय वहाँ अथवा उसके पड़ोस में ही श्री जमनालालजी बजाज द्वारा हाल ही बनवाये गये 'जानकी-कुटीर' नामक बंगले में मैं 'तुकाराम'-फिल्म में तुकाराम का अभिनय करने वाले श्री विष्णुपन्त पागनीस को उनके भजन सुनवाने के लिए गांधीजी के पास ले गया था। उन्होंने 'तुकाराम' फिल्म के ही भजन गाये। गांधीजी ने उन्हें बहुत ही पसन्द किया। लेकिन उन दिनों गांधीजी का रक्त चाप (ब्लड प्रैशर) बहुत ऊँचा रहा करता था

३ :

शोलापुर से नन्दीदुर्ग

टीमकी

३७ सन १९२७ के फरवरी महीने में १९ से २१ तक ३ दिन गांधीजी शोलापुर रहे थे। हमारी मिल के मोतीबाग गेस्ट-हाउस में ठहरे थे। कस्तूरबा साथ थीं। आराम से नहायी-धोयीं। कहने लगीं

"आज कई दिनों के बाद सिर धोया। गांधीजी के साथ सफर में अक्सर तेल-कुंकुम भी नहीं मिलते।"

गांधीजी ने गेस्ट-हाउस के इंतजाम देखे। बहुत खुश हुए। मिल देखने निकले। वहाँ भी बोले : पहले संडास दिखाओ।

'ऐसी स्वच्छता हमारे यहाँ मुश्किल से देखने को मिलती है।'

३८ शोलापुर में मेरे पास 'टीमकी' नाम की एक छोटी कुतिया थी। वह मुझे छोड़ती न थी इसलिए उसे सब जगह साथ ले जाना पड़ता था। गांधीजी जब सवेरे उठकर जैसे ही अपने काम में लगते वह उनके बुलाने में धमकर बैठ जाती। यों तो गांधीजी को यह सब अच्छा न लगता था लेकिन उसे रोकते न थे। बहुत साफ और सुन्दर थी। कोई भूल हुआ तो तुरन्त माँ-सी करके मूकम मनाती। गांधीजी कहते

"दया इस टीमकी का क्या? किसीको कुछ लगने नहीं देगी!

टीमकी का मतलब है नन्हीं छोटी।"

५

३९. सन् १९२८ में शोलापुर की हमारी मिल में और बम्बई की मिलों में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। उन दिनों शोलापुर की मिल का प्रबन्ध मैं देखता था। इस हड़ताल के चलते गांधीजी ने विवादास्पद मुद्दों को समझने में और मजदूर-नेताओं की आपत्तियों तथा शिकायतों पर ध्यान देने में बहुत दिलचस्पी ली थी।

बम्बई की हड़ताल के सिलसिले में गांधीजी ने मजदूर-संघ अहमदाबाद के श्री गुलजारीलाल नन्दा को जाँच के लिए भेजा था।

उन दिनों मिल-मालिकों के एसोसियशन के चेयरमैन श्री जहाँगीर पिटीट थे। मैंने नन्दाजी को सुझाया था कि वे मजदूरों का मामला समझ लेने के अलावा श्री जहाँगीर पिटीट से मिलकर मिलवालों का केस भी समझ लें। मैंने श्री जहाँगीर से पुछवाया। उत्तर मिला कि वे स्वयं श्री नन्दाजी से मिलने के लिए विशेष उत्सुक नहीं हैं। फिर भी उन्हें मिलना हो तो वे घर पर आवें। वे स्वयं उन्हें मालिकों का दृष्टिकोण समझायेंगे आदि।

४० गांधीजी के शोलापुर के आसपास के क्षेत्र की यात्रा करके मोटर से पण्ढरपुर पहुँचने तक के प्रबन्ध की जिम्मेवारी मेरी थी। उन दिनों सड़कें अच्छी नहीं थीं। फोर्ड के अलावा दूसरी मोटरें चल नहीं सकती थीं। मैंने उन्हें फोर्ड में ही घुमाया था। गांधीजी रास्ते में भी सो सकें इसके लिए बैठने की सीट पर तख्ता लगवाकर मैंने एक प्लेटफॉर्म-सा बनवा लिया था। गांधीजी उस पर सोया करते थे। रास्ते में गड्ढा आने पर सिर न टकराये इस विचार से अक्सर वे मेरी गोद में सिर रखकर सो जाते थे।

४१ पण्ढरपुर में मैंने गांधीजी से पूछा

विन्मोबा के दर्शनों के लिए चलेंगे?

"हरिजनों को जाने देते हैं?

उसके और बढ़ जाने के कारण दो-तीन भजन बजने के बाद ही डॉक्टर ने उन्हें बन्द करा दिया।

वैसे तो मैं फिल्में बहुत देखता नहीं हूँ! लेकिन यह तुकाराम वाली फिल्म मैंने १२ बार देखी थी और महादेवभाई को भी दिखाने ले गया था। बापू

"बापू को दिखाने योग्य है। नाचगानवाला भाग काटकर अवश्य ही दिखाई जा सकती है।"

१४ उन्हीं दिनों मैंने एक बार पू. कस्तूरबा, महादेवभाई, प्यारेलालजी, सुशीलाबहन आदि सबको भोजन के लिए न्योता। ये सब गांधीजी की अनुमति के बिना कहीं जा नहीं सकते थे इसलिए मैंने उनकी अनुमति प्राप्त की। भोजन के बाद वापस आने पर बापू ने देखा कि सुशीलाबहन ने मेरे घर पान खाया था। चिढ़ गये —

'मुझे पान से बड़ी चिढ़ है। खानेवाले जहाँ-तहाँ थूकते हैं। यह गन्दी चीज है। इसे छोड़ ही सकती हो तो छोड़ सको। लिपस्टिक लगाना बुरा पर उसके विरुद्ध मुझे उतनी आपत्ति नहीं जितनी पान के विरुद्ध है।

१५. जिन दिनों गांधीजी यहाँ जुहू में बिड़लाजी के घर अथवा जानकी-कुटीर में ठहरे थे उन दिनों रामदासभाई का लड़का कान्हा मेरे घर आया करता था। ६-७ साल का रहा होगा। बहुत ही चपल और चालाक। एक बार बिड़ला-कम्पाउण्ड में खड़ी मोटर का ब्रेक खोलकर उसने मोटर पेड़ से टकरा दी थी। एक बार खुद ही वहाँ के कुएँ में गिर पड़ा था। पानी बहुत नहीं था और तले में रेत थी इसलिए बच गया। जब गांधीजी समुद्र किनारे टहलने निकलते तो वह उन्हें अपने साथ दौड़ाता। गांधीजी दौड़ते। कान्हा कहता "खेल खेलाओ" तो गांधीजी खेलते-खेलाते।

इण्टरव्यू वाले सेब !

एक बार उसने गांधीजी को पत्र लिखा

"अहिंसा के साथ हथियारों का उपयोग करने की बात भी कहिये।

'आदमी दो घोड़ों पर सवारी नहीं कर सकता।

'क्यों नहीं कर सकता ? मैंने खुद सर्कस में देखा है!

३६ एक बार देवदासभाई का लड़का गोपू गांधीजी के साथ बातें कर रहा था और खेल रहा था। किसीने आकर कहा

'अखबारों के संवाददाता इण्टरव्यू के लिए आये हैं।

गोपू "यह इण्टरव्यू क्या चीज है?

बगल में सेब रखे हुए थे। गांधीजी ने एक सेब उठाकर उसके हाथ में दिया

'इण्टरव्यू अर्थात् सेब। चल अब यहाँ से भाग जा!

३

शोलापुर से नन्दीदुर्ग

टीमकी

१७ सन १९२७ के फरवरी महीने में १९ से २१ तक ३ दिन गांधीजी शोलापुर रहे थे। हमारी मिल के मोतीबाग गेस्ट-हाउस में ठहरे थे। कस्तूरबा साथ थीं। आराम से नहायीं-धोयीं। कहने लगीं

'आज कई दिनों के बाद सिर धोया। गांधीजी के साथ सफर में अक्सर तेल-कुंकुम भी नहीं मिलते!

गांधीजी ने गेस्ट-हाउस के संडास देखे। बहुत खुश हुए। मिल देखने निकले। वहाँ भी बोले: पहले संडास दिखाओ। 'ऐसी स्वच्छता हमारे यहाँ मुश्किल से देखने को मिलती है।

१८ शोलापुर में मेरे पास 'टीमकी' नाम की एक छोटी कुतिया थी। वह मुझे छोड़ती न थी इसलिए उसे सब जगह साथ ले जाना पड़ता था। गांधीजी बड़े सवेरे उठकर जैसे ही अपने काम में लगते वह उनके दुशाले में घुसकर बैठ जाती! यों तो गांधीजी को यह सब अच्छा न लगता था लेकिन उसे रोकते न थे। बहुत साफ और सुन्दर थी। कोई मुझे छूता तो तुरन्त भौं भौं करके भूकने लगती। गांधीजी कहते

देखो इस टीमकी को देखो। किसीको छूने तक नहीं देती।

'टीमकी' का मतलब है नन्ही छोरी।

गांधीजी के

मेरा ख्याल है कि जाने देते हैं।

गांधीजी मन्दिर में गये। अन्दर जाकर विनोबा के पैरों पर माथा टिका दिया।

लौटते समय ओखामेला की सीढ़ियों के पास आते हुए पता चला कि हरिजन यहीं तक जा सकते हैं। यहाँ से आगे उन्हें जाने नहीं दिया जाता।

'मैंने तुमसे कहा था न? इसीलिए तो मैंने खास तौर पर पूछा था। मैं तुम्हारे भरोसे रहा!'

मैंने अपनी भूल कबूल की। बहुत पछताया।

४२ बाहर आकर देखा तो गांधीजी की चप्पल गायब! बहुत तलाश की पर मिलने क्यों लगे? मैंने कहा

'जी बापू! आपके किसी भावुक भक्त का ही काम होगा। जीवनभर उन्हें महात्मा गांधी की अनमोल स्मृति के रूप में सहेजे रखेगा!'

'हाँ ऐसा भी हो सकता है। लेकिन उस बेचारे को क्या पता कि अब उसके इस 'महात्मा' को ६ महीने तक नंगे पैर चलना पड़ेगा!'

गांधीजी उन दिनों भी अपनी मौत मरे पशु के चमड़े की ही चप्पल पहनते थे। वर्धा में उनके पास वैसी कोई दूसरी चीज भी नहीं। कहने लगे

अब मुझे आश्रम में किसी पशु के मरने की बाट जोहनी होगी।

यह तो बहुत आसान है। घास मत खिलाइये उसी दम मरेगा और आपको चमड़ा मिलेगा।

गांधीजी हँस दिये।

५६. सन् १९२७ में गांधीजी रत्नागिरि गये थे। उस समय वहां उन्होंने सार्वजनिक सभा में लोकमान्य की जन्मभूमि का उल्लेख करते हुए कहा था कि उनके लिए तो वह एक पवित्र तीर्थ-स्थान ही है। बाद में भावपूर्ण शब्दों में श्री सावरकरजी की चर्चा करते हुए वे बोले थे

'लोकमान्य के स्वराज्य-मंत्र को सिद्ध करने का मेरे जितना प्रयत्न दूसरों ने चाहे किया हो किन्तु मुझसे अधिक करने का दावा कोई नहीं कर सकता। क्योंकि मैं तो मानता हूं कि न केवल स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है बल्कि उसे प्राप्त करना हमारा पवित्र कर्तव्य है। हम इससे जितने दूर रहेंगे उतने ही मनुष्यता से भी दूर होंगे। बिना स्वराज्य के हम अपने में विद्यमान शक्तियों को प्रकट ही नहीं कर सकते।

'और लोकमान्य ने जिस स्वराज्य का स्वप्न देखा था वह स्वराज्य अकेले रत्नागिरि का अथवा महाराष्ट्र का नहीं बल्कि समूचे भारतवर्ष का गरीब-अमीर सभी का था। जब तक इस देश में रहनेवाले करोड़ों गरीबों को भरपेट खाना नहीं मिलता तब तक मेरे विचार में स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं रहता।

'आप पूछते हैं कि मिल का कपड़ा पहनने से गरीबों की सेवा क्यों नहीं होगी? शोलापुर-मिल के मालिक नरोत्तम सेठ मेरे मित्र हैं। कभी-कभी मैं उनका मेहमान बनकर उनके घर रह आया हूं। उनके पुत्र ने मुझ पर अपना अपार प्रेम बरसाया है। लेकिन क्या इसीलिए मुझे उनकी मिल के कपड़े का उपयोग करके इन 'गरीब' बाल-बच्चे की सेवा करनी चाहिए? मैं कहता हूं कि पागल भी कभी ऐसा नहीं कहेगा कि उनकी मिल का कपड़ा पहनने से हम अपने देश के गरीबों की सेवा कर सकेंगे।

महाराजा के चरखा-गुरु !

४५ मैसूर के महाराजा को चरखे में बड़ी दिलचस्पी थी। एक बार मैंने गांधीजी से इसकी चर्चा की और कहा कि वे प्रतिदिन नियमित रूप से कातते हैं। मुझसे बोले

यह बात मुझ तक भी पहुँच चुकी है।

लेकिन उन्हें एक चरखा-शिक्षक की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अभी-अभी उनका एक पत्र आया है।

गांधीजी ने देवदासभाई को भेजा। देवदासभाई कुछ समय रहकर और सिखाकर वापस आये। गांधीजी ने कहा

आइए महाराजा मैसूर के चरखा-गुरु!

४६ सन् १९२७ में मैसूर के महाराजा ने गांधीजी को स्वास्थ्य की दृष्टि से जलवायु-परिवर्तन के निमित्त अपने नन्दी-दुर्ग पर्वत पर आकर रहने के लिए आमंत्रित किया था। इसके कारण अंग्रेजी हुकूमत से सम्बन्ध रखनेवालों में अन्दर ही अन्दर एक खलबली-सी मची थी। ब्रिटिश-शासन की अधीनता में रहनेवाली एक बड़ी रियासत का राजा इस प्रकार गांधीजी को अपने राज्य के सम्माननीय प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित करने का साहस करे, उस जमाने के लिहाज से यह एक अनोखी चीज थी। दूसरी ओर इसके कारण समूचे देश की जनता ने एक प्रकार के उत्साह और गौरव का ही अनुभव किया था।

मैसूर के राज-परिवार के साथ हमारे मोतीवाली घराने का तीन पीढ़ी पुराना निकट का नाता था। इस कारण राज-परिवार की ओर से गांधीजी को नन्दी-दुर्ग के लिए आमंत्रित कराने में मैं एक हद तक निमित्त बना था। और जिन दिनों गांधीजी मैसूर के नन्दी-दुर्ग में रहे, मैं वहाँ गया भी था। इसलिए इस बात की

सफलता के सिलसिले में अपना आभार प्रकट करते हुए मैंने बाद में गांधीजी को एक पत्र लिखा था। उत्तर में उन्होंने मुझे लिखा

"मैसूर की सफलता के लिए तुम गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते के बराबर यश तो पा ही नहीं सकते। क्योंकि उसकी होशियारी तुममें है ही कहां? वह तो बिना बोझ ढोये ही बोझ ढोनेवाले की तरह भोंककर दिखाता है। और उसकी जात-बिरादरीवाले वैसा मानते भी हैं। हां तुम्हें उस कहानीवाली गिलहरी की उपमा दी जा सकती है। लेकिन मेरे पास विक्टोरिया क्रॉस कहां कि तुम्हें दूं?

"अथवा गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते की होशियारी हमारी मानो। गाड़ी तो तुम खींचो अब अगर कोई पागल बनकर उसका भार ढोने का यश हमें देना चाहे तो हम उसे लूट लेंगे।

"सचमुच तुम्हारा रोपा हुआ बीज फला है। ईश्वर गरीबों के प्रति तुम्हारे प्रेम को दिन प्रतिदिन बढ़ाये।

बीजारोपण में मैसूर के राज-परिवार में चरखे के प्रचार का और महाराजा स्वयं चरखा कातते थे इस सफलता का संकेत है। भिश्तीवाली बात मैं समझ नहीं सका था इसलिए जब दुबारा उनसे मिला तो मैंने उसके बारे में पूछा। इस पर उन्होंने मुझे यह बात इस तरह सुनायी

एक बार बादशाह मुहम्मद तुगलक नदी की बाढ़ में बहकर जाने लगा। किनारे पर एक भिश्ती चला जा रहा था। उसने अपनी मशक फेंककर बादशाह को बचा लिया। बादशाह ने उससे कहा "जो चाहो मांगो। जो मांगोगे दूंगा।" भिश्ती बोला "मेरी मशक के चमड़े के सिक्के बनवाकर मेरे नाम से चलवाइये।" बादशाह ने उसकी मांग मंजूर कर ली। भिश्ती का नाम भी मुहम्मद था। इस तरह उसके नाम से चमड़े के सिक्के

बनवाकर बादशाह ने उन्हें नवाजा! जिस तरह युद्ध के जमाने में बहुत बड़ी बहादुरी दिखानेवाले को 'विक्टोरिया क्रॉस' मिलता है उसी तरह उन दिनों उस मिस्त्री ने इसीमें अपना भारी सम्मान समझा होगा। गांधीजी ने इसी विचार से अपने पत्र में विक्टोरिया क्रॉस का उल्लेख किया था।

४६. जब गांधीजी पहली बार नन्दी हिल गये थे उस समय वे दो-तीन दिन बंगलोर में रहे थे। मैं भी वहीं था। एक दिन एक मैसूरी ब्राह्मण की पत्नी थाली में नारियल केले पान-सुपारी फूल आदि लेकर आयी और सब-कुछ गांधीजी के पैरों के पास रखकर और उनके पैर छूकर सामने खड़ी रही। बापू ने हाथ जोड़े। दो-तीन बार जोड़ने पर वह बहन उसी तरह खड़ी रही। उस समय राजाजी गांधीजी के साथ थे।

"क्या इन्हें कुछ कहना है? जरा पूछिए।

राजाजी ने उस बहन से कन्नड़ में बातचीत की।

"इन्हें पुत्र की आवश्यकता है आप महात्मा हैं इसलिए आपका आशीर्वाद चाहती है।

"मैं महात्मा नहीं हूं। मैं आशीर्वाद कैसे दूं?

"ये कहती हैं कि आपने बहुतों को दिये हैं। और वे फले हैं तो मुझे क्यों नहीं देते?

'मुझे अभी ही इस बात का पता चला कि मुझमें ऐसी कोई शक्ति है। लेकिन इनसे कहिये कि गांव में इतने सारे बालक हैं उनमें से एक को गोद लेकर उसका लालन-पालन क्यों नहीं करती?

बहन ने कहा: 'मैं तो रिश्तेदारों के अथवा पड़ोसियों के बालकों को बहुत प्यार करती हूं। लेकिन अपना तो आखिर अपना ही है न!

गांधीजी ने उन्हें 'मेरे-तेरे' और 'अपना-पराया' पर एक अच्छा सा प्रवचन दिया। पर वह बहन टस-से-मस न हुई। आखिर बापू ने कहा:

"अगर भगवान् आपका बेटा लेना चाहे तो क्या मैं इनकार कर सकता हूँ?"

यह मानकर कि आशीर्वाद मिल चुका है, बहन चली गयीं।

५७ बैंगलोर में गांधीजी रात को खड़ाऊँ पहनकर आश्रम में आया करते थे। एक दिन बहन बोलीं:

"रात को मेरे उठने पर मेरी खड़ाऊँ की आवाज से नींद खुल जाती है। बाजार से आप के स्लीपर ले आओ।"

सारे शहर में घूमा, लेकिन रबर स्लीपर कहीं नहीं मिली।

गांधीजी: "मैं तो बाजार में रोज़ देखता हूँ।"

"स्लीपर तो है, लेकिन वे स्वदेशी नहीं हैं।"

"तुम सब बहुत ही स्वदेशी हो ही नहीं सकते। चीन जापान के ही बने लाओ।"

५८ मेरे पिताजी मैसूर में एक खास क्वालिटी की अगरबत्ती बनवाते थे और पूजा में उसका उपयोग करते थे। यह अगरबत्ती बहुत प्रसिद्ध हुई। कालान्तर में उसे 'सर्वोत्तम अगरबत्ती' का नाम दिया। यह अगरबत्ती मैं गांधीजी को हमेशा ही दिया करता था और जहाँ वे बैठे होते वहाँ जलाया करता था। महादेवभाई को यह बहुत पसन्द थी।

बहुत समय के बाद मुझे पता चला कि गांधीजी को अगरबत्ती नापसन्द ही थी!

लहसुन खूब खाते थे !

५९. गांधीजी का रक्त-चाप बहुत ऊँचा रहा करता था। इसके कारण उन्हें हमेशा लहसुन खूब खाना पड़ता था। पास बैठनेवालों को बराबर उसकी गन्ध आया करती थी। एक बार पण्डित जवाहरलालजी ने मजाक में कहा

'आप लहसुन बहुत खाते हैं। आपको तो उसकी गन्ध नहीं आती लेकिन दूसरों के लिए आपके पास बैठना मुश्किल हो जाता है !

●

४

पिताजी का अवसान

आश्वासनभरा तार

५० ता० ४ नवम्बर १९२९ की शाम को धन्वासा-घाट में मेरे पिताजी की मृत्यु हुई। उस समय गांधीजी यात्रा में थे। ८ नवम्बर को उन्होंने हाथरस से मुझे नीचे लिखा आश्वासनभरा तार भेजा था

पिताजी के स्वर्गवास की सूचना देनेवाला जमनालालजी का तार अभी-अभी मिला। तुम्हारे इस दुःख में मेरी पूरी-पूरी सहानुभूति है। मेरी ओर से माँ को आश्वासन देना। उनको तुमको और दूसरों को ईश्वर पर श्रद्धा रखकर धैर्य धारण करना चाहिए। ईश्वर तुम्हें आघात सहन करने की शक्ति दे। जमनालालजी ने मुझे लिखा है कि तुम्हें उनकी मदद और सलाह की जरूरत है या नहीं सो मैं तुमसे पूछ लूँ। मेरी यात्रा का कार्यक्रम 'यंग इंडिया' में छपा है।

उसी दिन पत्र भी लिखा। उसमें लिखा

आज तुम्हें तार दिया है मिला होगा। मैंने तो अभी-अभी अखबार में पढ़ा और जमनालालजी का तार मिला। दिल उठा। यह दुर्घटना कैसे घट गयी? अपने स्वभाव के अनुसार जमनालालजी ने मुझ पर यह जिम्मेदारी डाली है कि तुम्हें उनकी सलाह अथवा मदद की जरूरत हो तो मैं उसके बारे में तुमसे पूछ लूँ

इसलिए तुमसे पूछा है। तुम बहादुर हो धीरज रखोगे ही। जिस रास्ते पिताजी गये हैं हम जानते हैं कि उस रास्ते हम सबको जाना ही है, फिर शोक किस बात का? माताजी तो ज्ञानी हैं संयमी हैं। इसलिए उन्हें हर्ष-शोक न होना चाहिए।

पिताजी की गादी को सुशोभित करना। सारे कामों में खूब धीरज रखना। मैं चाहता हूँ कि मुझे इधर बराबर लिखते रहो।

५१ इसके अलावा उन्होंने अपने 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' नामक दोनों साप्ताहिकों में भी पिताजी की मृत्यु पर टिप्पणियाँ लिखी थीं। उनमें लिखा था 'उनकी (सेठ नरोत्तम मोरारजी की) अकाल मृत्यु से देश ने एक धुरन्धर व्यापारी और देशभक्त खो दिया है। जिस जमाने में व्यापारी देश का काम करते से डरते और शरमाते थे उस जमाने से नरोत्तम उसमें हाथ बँटाने लगे थे और यथाशक्ति सेवा करते रहते थे। उन पर डॉ॰ बेसेण्ट और गोखले का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। मैंने अनुभव किया है कि अपनी मिलों में काम करनेवाले मजदूरों के साथ उनका सम्बन्ध अच्छा था। उनकी दान-धारा प्रबल थी और उसका अधिकांश आज के वातावरण के अनुकूल और देश-हित के कामों में खर्च होता था। सिन्धिया कम्पनी की उनकी योजना में धनोपार्जन के अंश की तरह ही देश-सेवा का भी अंश था। इस परिवार के साथ मेरा तो निकट का सम्बन्ध है। इसलिए मैं इसके दुःख में सहभागी हूँ।

पिताजी की मृत्यु के बाद तत्काल मेरे सामने जो उलझनें आकर खड़ी हुईं, जमनालालजी ने उनमें व्यक्तिगत रुचि दिखायी और आर्थिक दृष्टि से मेरी मदद भी की।

शोक-सभा न हो सकी !

५२. मेरे पिताजी के अवसान के बाद कुछ मित्रों ने इस बात की कोशिश की कि बम्बई के शेरिफ के नाम से एक सार्वजनिक शोक-सभा की जाय। मुझे इसमें कोई दिलचस्पी न थी क्योंकि यह केवल एक रस्म-अदाई की बात थी। तिस पर उन दिनों ऐसी सभाओं के सभापति भी गवर्नर ही हुआ करते थे। मैंने इस बात का आग्रह किया कि सभा गांधीजी के सभापति होने पर ही की जाय। अपने उक्त मित्रों के जोर देने पर मुझे गांधीजी को पत्र लिखकर यह बिनती करनी पड़ी कि वे ऐसी एक सभा का सभापतित्व करें।

उनसे नीचे लिखा उत्तर मिला

"तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी मांग को अस्वीकार करने में मुझे अतिशय क्षोभ तो होता ही है, लेकिन मैं ऐसी सभा के लिए बिलकुल अयोग्य हूं। नामों की सूची देखकर ही चौंक उठा हूं। ऐसी सभा में मेरा उपयोग क्या ? और मैं करूं क्या ? सर पुरुषोत्तमदास अथवा सर दीनशा पिटीट अवश्य उपयोगी होंगे। मेरी सलाह तो यह है कि इससे भिन्न विचार छोड़ ही देना।

आखिर वह शोक-सभा नहीं हो सकी।

५३ सिन्धिया कम्पनी के कार्यालयोंवाला नया मकान 'सिन्धिया हाउस' तैयार हुआ। निश्चय किया गया कि उसमें मेरे पिताजी की मूर्ति स्थापित की जाय। स्वर्गीय वालचन्द काका की और सिन्धिया वाले अन्य सब लोगों की इच्छा थी कि इस मूर्ति का अनावरण गांधीजी के हाथों कराया जाय। गांधीजी से कुछ भी करवाना या कहलाना होता तो मित्र मुझे ही आगे कर दिया करते थे। इस काम के सिलसिले में भी फिर मुझीको मैदान में उतारा गया। मेरे बिनती-पत्र के उत्तर में गांधीजी ने लिखा

मूर्ति का अनावरण

"मेरी दृष्टि में यह कहना अप्रासंगिक है कि मैं पिताजी को पहचानता था। उनके साथ तो घर का-सा सम्बन्ध था। इसलिए मैं उनकी मूर्ति का अनावरण करूँ उसमें विशेषता क्या होगी? न भी करूँ तो उससे इस सम्बन्ध में कमी भी क्या आयेगी? भाई भाई की मूर्ति का अनावरण थोड़े ही करता है।

ऐसे कामकाजों में अब मुझे कोई दिलचस्पी रही ही नहीं है। इसलिए जरा भी बुरा न मानते हुए दिल से समझकर मुझे मुक्त रखो। जिस दिन भवन का उद्घाटन हो उसी दिन मूर्ति का अनावरण भी कराना और सो भी सरदार के हाथों। मुझे माफ कर देना न

सिन्धिया-हाउस का उद्घाटन सरदार वल्लभभाई के हाथों ही हुआ और उसी दिन उसी समय पिताजी की मूर्ति का अनावरण भी स्वर्गीय भूलाभाई देसाई ने किया।

२४ गांधीजी को पहले-पहल 'महात्मा' किसने कहा और वे कब से महात्मा के नाम से पहचाने जाने लगे इसके बारे में असंख्य मत [illegible]। असंख्य लोगों के अनगिनत दावे हैं। ऐसी एक स्मृति मेरे पास भी है। मेरे पिताजी की मृत्यु के बाद शोलापुर की मिल [illegible] में [illegible]। जयकर-होल्कर[illegible] की सभा हुई। स्वर्गीय एक [illegible] दीनशा [illegible] [illegible] और उन्हींकी पेढ़ीवाले स्वर्गीय [illegible] गांधीजी[illegible] थे।

सभा [illegible] कि वे स्वतंत्र रीति से [illegible] कर और [illegible] से कहा कि वे दूसरे कमरे में [illegible]। हम सब [illegible] के कमरे में जाकर बैठे। चूँकि [illegible] सम्बन्ध था इसलिए चर्चा उन्हींके

गांधीजी के

बारे में बात चली। एक ई ने पूछा 'गांधी को 'महात्मा' की टाइटिल पहले-पहल किसने दी ?' पहला नाम गोखलेजी का लिया गया। दूसरे भी दो-तीन नाम सुझाये गये, लेकिन अन्त में निश्चय यह रहा कि श्रीमती बेसेण्ट ने उन्हें पहले-पहल उस समय 'महात्मा' कहा जब वे दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे। इसमें सचाई कितनी है सो तो राम ही जाने। लेकिन इससे यह सिद्ध हुआ कि एफ ई डीनशा और वाडी दोनों गांधीजी में गहरी दिलचस्पी रखते थे।

१९ जब सन् १९११ में मैं अपने स्वर्गीय पिताजी की अस्थियाँ गंगाजी में विसर्जित करने के लिए हरद्वार ले जा रहा था तो मेरी दादी-माँ ने मुझसे कहा कि मैं किसी आदमी को अपने साथ ले जाऊँ। मेरे साथ मेरे काका रतनसीभाई के पुत्र प्रताप जानेवाले थे। इसके अलावा मेरे पास दूसरा ऐसा कोई आदमी नहीं था जो ऐसी यात्रा में उपयोगी सिद्ध हो। उलटे मुझीको उसे सँभालना पड़ जाय।

किन्तु दादी-माँ के आग्रह के कारण अन्त में मुझे अपने एक नौकर को साथ ले जाना पड़ा। दिल्ली से हरद्वार जानेवाली ट्रेन में अपने डिब्बे के साथ जुड़े नौकरोंवाले डिब्बे में मैंने इस नौकर को बैठा दिया था और कह दिया था कि डिब्बा सीधा हरद्वार पहुँचेगा। रास्ते में कहीं गाड़ी बदलनी नहीं होगी।

लेकिन वह सहारनपुर जंक्शन पर उतर गया। हरद्वार में हमें नहीं मिला। वह मुझे 'काकू सेठ' के नाम से ही जानता था। दूसरा कोई नाम-पता उसे मालूम न था।

हरद्वार पहुँचकर हमने हर की पैड़ी पर गंगाजी में अस्थियाँ विसर्जित कीं और वहाँ से लाहौर में चल रहे कांग्रेस-अधिवेशन के

लिए निकल पड़े। अपने इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था। विषय-विचारिणी सभा की बैठक के चलते गांधीजी ने अपना खास आदमी भेजकर मेरे बारे में पूछ-ताछ करवायी थी। मैं गांधीजी से मिला नहीं था न मैंने उन्हें अपने लाहौर पहुँचने की कोई सूचना ही भेजी थी। मैं गांधीजी के पास पहुँचा।

'क्या तुम्हारा आदमी खो गया है? वह मिल गया है और दिल्ली में शोलापुर मिल की दूकान पर पहुँच गया है।

सौभाग्य से हमारे इस नौकर को शोलापुर मिल का नाम इसलिए याद रह गया था कि इस मिल की दिल्लीवाली दूकान के लोग मुझसे मिलने के लिए दिल्ली-स्टेशन पर आये थे। इस कारण दिल्ली पहुँचने के बाद वहाँ शोलापुर मिल की दूकान का पता पूछता हुआ वह ठिकाने पर पहुँच गया था।

दूकान के लोगों को लाहौर का मेरा पता मालूम नहीं था लेकिन यह सोचकर कि मैं लाहौर में गांधीजी के पास ठहरूँगा अथवा उनसे मिले बिना लाहौर नहीं छोड़ूँगा उन्होंने गांधीजी के नाम तार कर दिया था। इस तरह हमें अपने आदमी का पता चला।

५६ मेरे पिताजी के पास चाँदी की एक रिपीटर घड़ी थी। बटन दबाने पर वह घण्टे आध घण्टे और पाव घण्टे के अन्तर से तरह-तरह की आवाज करती थी। पिताजी बालकों को बहुत चाहते थे। जब वे शोलापुर जाते तो मिल-मजदूरों के बच्चों के सामने अपनी यह घड़ी बजाकर वे उनका मनोरंजन किया करते थे। पिताजी की मृत्यु के बाद मैंने यह घड़ी गांधीजी को दी क्योंकि गांधीजी को रात में समय देखने की कठिनाई रहती थी। गांधीजी ने घड़ी मुझसे ली और दांडी-कूच के समय उन्होंने उसे अपनी

 गांधीजी के

कमर में लटकाया। इस भूल के बाबत उन्होंने हांसोटी गांव से लिखे अपने पत्र में इसका उल्लेख किया है:

"तुम्हारी याद तो अक्सर आती रहती है। पिताजी की घड़ी रोज मेरी कमर में लटकी रहती है, इसलिए उनका स्मरण तो बना ही रहता है।

इसके कुछ महीनों बाद यरवदा जेल से ८ सितम्बर, १९३ को गांधीजी ने मुझे जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने पुनः लिखा:

"रोज तुम्हारा स्मरण करता हूं। घड़ी तो मेरे सामने पड़ी ही है न?

किन्तु अलग-अलग प्रकार की यात्राओं पर से गांधीजी घण्टे आध घण्टे और पाव घण्टे के फरक को पकड़ नहीं पाते थे इसलिए वह घड़ी उन्हें जंची नहीं। उन्होंने उसे जवाहरलालजी की घड़ी से बदल लिया। उन्होंने यह भी माना कि इस बात की जानकारी मुझे देनी चाहिए। इसलिए एक पत्र द्वारा मुझे इसकी सूचना भी भेज दी।

५७ शुरू में गांधीजी मेरे नाम के पत्रों के आरम्भ में 'भाईश्री' लिखा करते थे और नीचे 'मोहनदास के आशीर्वाद' इन शब्दों में अपनी सही करते थे। कुछ समय के बाद आरम्भ 'चि ' से करके अन्त में अपनी सही 'बापू के आशीर्वाद' के रूप में करने लगे। यह चीज अन्त तक चलती रही। जब खुशमिजाजी की हालत में होते और कोई उनके पैर छूने आता तो गांधीजी उसकी पीठ पर जोर से एक घूंसा जमाते थे। कभी-कभी तो इतने जोर से जमाते कि पीठ लाल हो जाती। लेकिन जिसकी पीठ पर वह घूंसा पड़ता था उसकी छाती तो इस प्रसादी को पाकर गजभर

लिए निकल पड़े। अपने इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था। विषय-विचारिणी सभा की बैठक के चलते गांधीजी ने अपना खास आदमी भेजकर मेरे बारे में पूछ-ताछ करवायी थी। मैं गांधीजी से मिला नहीं था न मैंने उन्हें अपने लाहौर पहुँचने की कोई सूचना ही भेजी थी। मैं गांधीजी के पास पहुँचा।

'क्या तुम्हारा आदमी खो गया है? वह मिल गया है और दिल्ली में शोलापुर मिल की दूकान पर पहुँच गया है।

सौभाग्य से हमारे इस नौकर को शोलापुर मिल का नाम इसलिए याद रह गया था कि इस मिल की दिल्लीवाली दूकान के लोग मुझसे मिलने के लिए दिल्ली-स्टेशन पर आये थे। इस कारण दिल्ली पहुँचने के बाद वहाँ शोलापुर मिल की दूकान का पता पूछता हुआ वह ठिकाने पर पहुँच गया था।

दूकान के लोगों को लाहौर का मेरा पता मालूम नहीं था लेकिन यह सोचकर कि मैं लाहौर में गांधीजी के पास ठहरूँगा अथवा उनसे मिले बिना लाहौर नहीं छोड़ूँगा उन्होंने गांधीजी के नाम तार कर दिया था। इस तरह हमें अपने आदमी का पता चला।

५६ मेरे पिताजी के पास चाँदी की एक रिपीटर घड़ी थी। बटन दबाने पर वह घण्टे, पाव घण्टे और पाव घण्टे के अन्तर से तरह-तरह की आवाज करती थी। पिताजी बालकों को बहुत चाहते थे। जब वे शोलापुर जाते तो मिल-मजदूरों के बच्चों के सामने अपनी यह घड़ी बजाकर वे उनका मनोरंजन किया करते थे। पिताजी की मृत्यु के बाद मैंने यह घड़ी गांधीजी को दी क्योंकि गांधीजी को रात के समय देखने की कठिनाई रहती थी। गांधीजी ने घड़ी कुबूल की और डांडी-कूच के समय उन्होंने उसे अपनी

गांधीजी के

इस आशय की अफवाहें तो फैल ही रही थीं कि सरकार गांधीजी को गिरफ्तार कर लेगी और आश्रम को बन्द करेगी। लेकिन गांधीजी ने घोषणा की थी कि आश्रम का कुछ भी क्यों न हो वे स्वयं तो स्वराज्य प्राप्त होने के पहले आश्रम में नहीं लौटेंगे।

इस देशव्यापी उत्तेजना और उथल-पुथल के बीच गांधीजी को अपने निजी मामलों के लिए परेशान न करने के खयाल से मैं उन्हें अपने बारे में कुछ भी लिखता न था। इसके बावजूद भारी व्यस्तता के बीच भी गांधीजी स्वयं मेरी चिन्ता रखते और मुझे पत्र लिखकर पूछताछ करते रहते।

इसलिए मैंने निश्चय किया कि मैं एक बार उनके पास हो आऊं। फलतः कूच के दिनों में मैं सूरत के समीप छापरा भाठा-पड़ाव पर उनसे मिला। गांधीजी ने पूरा समय देकर मुझसे बातचीत की। बाद में मैंने 'आश्रम-भजनावलि' की एक प्रति पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त किये और सूरत तक साथ रहकर वापस लौट आया। ●

उछलती थी। गांधीजी के निकटवर्ती अथवा आश्रमवासी के रूप में काम करने में मैं सहज ही बहुत गौरव का अनुभव किया करता था सेकिन अगर कोई मेरी पहचान उनके पुत्र या आश्रमवासी के रूप में करवाता अथवा कोई उनका फोटो खींचता होता तो एक समय उनके नजदीक रहने में मुझे डर लगा करता।

गांधीजी के बारे में अखबारों में लिखने अथवा रेडियो पर बोलने के सरिसे मुझे अवसर मिला करते। एक बार मैंने रेडियो वालों को स्वीकृति भी दे दी। लेकिन जब समय आया तो मैंने अपनी लाचारी दरसायी। कुछ याद ही न पड़ता था। जिसके साथ मनुष्य का गाढ़ा सम्बन्ध होता है उसके बारे में लिखने अथवा बोलने का अवसर आने पर कइयों की ऐसी ही स्थिति हो जाती है। खुद गांधीजी का भी यही हाल था।

५८. इसके बाद मैं कई महीनों तक पिताजी की मृत्यु के पश्चात् जो जिम्मेदारियाँ मुझ पर आ पड़ी थीं उनकी उलझनों में फँसा रहा। दूसरी तरफ गांधीजी ने सन् १९३ के ऐतिहासिक नमक-सत्याग्रह की तैयारियाँ शुरू कर दी थीं और देश के चारों कोनों में फैली हुई जनता का आवाहन करके उन्होंने क्रम क्रम से सविनय सत्याग्रह की बात समझानी शुरू कर दी थी। भावी लड़ाई की उत्तेजना से कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक समूचा देश थरथरा उठा था।

गांधीजी ने घोषणा की थी कि वे सूरत जिले के डाँडी गाँव के पास समुद्र-तट पर कुदरती तौर से बननेवाले गैरकानूनी नमक को गैरकानूनी ढंग से उठाकर ६ अप्रैल के दिन सविनय कानून भंग करेंगे और इसके लिए वे अपने चुने साथियों के एक दल को लेकर साबरमती आश्रम से पैदल रवाना होंगे। उस समय

अपने उसी पत्र में मैंने गांधीजी को लिखा था

'लल्लूकाका (सर लल्लूभाई सामलदास) भी मानते हैं कि जहाँ तक रेवेन्यू का सम्बन्ध है सरकार का केस बिलकुल लचर है।

रेवेन्यू के मामले में सर लल्लूभाई का जो ज्ञान था समूचे प्रदेश में उनकी बराबरी करनेवाला दूसरा शायद ही कोई रहा हो।

६० बारडोली की इस लड़ाई के दिनों में भी कानजी द्वारकादास प्रतिदिन की ताजा खबरें जानने के लिए हमेशा मेरे दफ्तर में आया करते थे। एक दिन डाक से महादेवभाई का एक पत्र मिला। मैंने बाद में पढ़ने के विचार से उसे एक ओर रख दिया। कानजीभाई अक्षर पहचानते थे। बोले "पढ़ो। बारडोली की ताजा खबरें होंगी। अब वह पत्र तो मेरे पास नहीं रहा किन्तु उसमें लिखा था कि सर पुरुषोत्तमदास बारडोली की लड़ाई में विशेष रुचि नहीं ले रहे हैं शायद इसलिए कि उनके काका सर चुन्नीलाल सरकार के एक बड़े मेम्बर हैं। यह बात सर फ़ज़ल करीमभाई के पास पहुँची। उन्होंने टाटा के डाइरेक्टरों की बोर्ड-मीटिंग में सर पुरुषोत्तमदास से कहा

"गांधी-सर्कल में आपके भाव उतर गये हैं!

सर पुरुषोत्तमदास चिढ़ गये और उन्होंने गांधीजी को एक कड़ा पत्र लिखा।

सेठ मानजी नारणजी ने मुझसे इसकी चर्चा की। (उस समय तक पत्र भेजा नहीं गया था।) इस गलतफहमी को दूर करने के लिए मैं दौड़ा-दौड़ा सर पुरुषोत्तमदास आदि के पास पहुँचा। महादेवभाई को तार किया। घबड़ाकर गांधीजी से मिलने भी गया। बातचीत की। बोले

६८. कूच शुरू होने के एक दिन पहले बुआजी (स्वर्गीय सरोजिनी नायडू) गांधीजी के दल में सम्मिलित होने के लिए बम्बई से रवाना होनेवाली थीं। मैं उनसे मिलने गया। बोलीं "देख तो यह बूढ़ा क्या करने चला है? एमर्सन ने व्यर्थ की बकवास नहीं की है। सारी दुनिया के अखबारवाले इकट्ठा हुए हैं। सचमुच इन सबके सामने हमारी हँसी होगी।

साड़ियाँ रँगनेवाले एक मुसलमान मित्र उस समय मेरे साथ थे। उन्होंने अपने हाथों-रँगी एक साड़ी सरोजिनी देवी को भेंट की। फिर बोले

"अगर आप कहें तो गांधीजी के लिए भी एक बढ़िया तिरंगी लँगोटी तैयार कर दूँ।

बुआजी बहुत विनोद-प्रिय थीं। अपने स्वभाव के अनुसार वे बरबस हँस पड़ीं। बोलीं :

देखिये ऐसा कुछ मत कर बैठिये। क्योंकि अगर कहीं सचमुच ही स्वराज्य मिल गया तो यह बूढ़ा उसकी खुशी में अपनी तिरंगी लँगोटी ही उतारकर उसे झण्डे की तरह फहरा देगा।

६९. अगले साल सन् १९३१ में गांधी-इरविन-सन्धि के कारण लड़ाई मुल्तवी रही। सब जेलों से छूटे और फिर कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। गांधीजी कराची जाने के लिए बम्बई आये। विले-पार्ले में उन्हें एक थैली भेंट की गयी। सर नेस वाडिया कावसजी जहाँगीर एफ ई मोदी आदि मिल-मालिक मिलने आये। कपड़े पर लगी एक्साइज-ड्यूटी को हटवाने में उन्हें गांधीजी के समर्थन की आवश्यकता थी। चर्चा के चलते सर कावसजी ने गांधीजी को 'गांधी-सेठ' कहकर सम्बोधित किया।

चिन्ता की कोई बात नहीं। मैंने तुम्हारे तार को गलत नहीं पाया। लेकिन मैं तो समझा गया था। तुम्हें दौड़कर आने की ज़रूरत नहीं थी। पत्र आयगा तो मैं उसका यथोचित उत्तर दूँगा।

मेरी चिन्ता दूर हुई।

मैंने सोचा कि मैं गांधीजी से मिलकर आया हूँ, इसकी जानकारी मुझे सर पुरुषोत्तमदास को देनी ही चाहिए। इस विचार से एक दिन मैं उनके पास पहुँच गया। वे कहीं बाहर जाने की तैयारी में थे। इसलिए उन्होंने मुझे अपनी मोटर में बैठा लिया। मैंने कहा

मैं गांधीजी से मिल आया हूँ।

क्या कहा?

आपके पत्र की राह देख रहे हैं। मिलने पर उसका यथोचित उत्तर देंगे।

चौपाटी के मुहाने पर मोटर खड़ी करवायी। बोले

मेरी मोटर पीछे है। अच्छा था।

*१ जिन दिनों बापू ने डाँडी-कूच की घोषणा की थी, लॉर्ड इरविन वाइसराय थे। गृह-सचिव एमर्सन ने दिल्ली में बड़े गोरे अधिकारियों के सामने मज़ाक करते हुए कहा था, 'यह गांधी चुटकीभर नमक उठाकर हम अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से निकाल बाहर करेगा। इसलिए आप सब बोरिया-बिस्तर बाँधकर तैयार रहिये। अपना चाहियों का कोई बिल बाँधकर रखिये!

लेकिन अब यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि गांधी के चुटकी-भर नमक उठाते न उठाते ही समूचे देश में अंग्रेज अधिकारियों और कर्मचारियों के क्या हाल हुए थे और 'नमक का कानून तोड़ दिया' की पुकारों ने उनके होश किस तरह गुम कर दिये थे।

६२. जब गुरू होने के एक दिन पहले बुआजी (स्वर्गीय सरोजिनी नायडू) गांधीजी के दल में सम्मिलित होने के लिए बम्बई से रवाना होनेवाली थी। मैं उनसे मिलने गया। बोली "देख तो यह बूढ़ा क्या करने चला है? एमर्सन ने व्यर्थ की बकवास नहीं की है। सारी दुनिया के संवाददाता इकट्ठा हुए हैं। सचमुच इन सबके सामने हमारी हँसी होगी।"

साड़ियाँ रँगनवाले एक मुसलमान मित्र उस समय मेरे साथ थे। उन्होंने अपने हाथों-रँगी एक साड़ी सरोजिनी देवी को भेंट की। फिर बोले

"अगर आप कहें तो गांधीजी के लिए भी एक बढ़िया तिरंगी लँगोटी तैयार कर दूँ।

बुआजी बहुत विनोद-प्रिय थीं। अपने स्वभाव के अनुसार वे बरबस हँस पड़ी। बोली

देखिये ऐसा कुछ मत कर बैठिये। क्योंकि अगर कहीं सचमुच ही स्वराज्य मिल गया तो यह बूढ़ा उसकी चूड़ी में अपनी तिरंगी लँगोटी ही उतारकर उसे झण्डे की तरह पहरा देगा।

६३. अगले साल सन् १९३१ में गांधी-इर्विन-सन्धि के कारण लड़ाई मुल्तवी रही सब जेलों से छूटे और फिर कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। गांधीजी कराची जाने के लिए बम्बई आये। विले-पार्ले में उन्हें एक थैली भेंट की गयी। सर नेस वाडिया कावसजी जहाँगीर एफ ई मोदी आदि मिल-मालिक मिलने आये। कपड़े पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटवाने में उन्हें गांधीजी के समर्थन की आवश्यकता थी। चर्चा के चलते सर कावसजी ने गांधीजी को 'गांधी-सेठ' कहकर सम्बोधित किया।

सब हँस पड़े।

पर कावसजी ने अनुभव किया कि महात्मा गांधीजी को गांधी कहने में उनसे कुछ भूल हुई है।

इसलिए तुरन्त ही अपनी भूल का सुधारते हुए बोले :

I mean मा'रमा सेठ !"

यह सुनकर तो हँसी के फव्वारे दुगुने जोर से छूट चले।

लेकिन सर कावसजी तो आखिर तक समझ ही नहीं पाये कि गड़बड़ कहाँ हुई है।

६४ विले-पार्ले की सभा में गांधीजी को सोने की एक तकली भी मिली थी। गांधीजी ने उस पर सभा में ही थोड़े तार काते और फिर वहीं उसे नीलाम किया। श्री रामनिवास रूइया ने रु ४,) देकर वह तकली ली।

●

६५. गांधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए विलायत जायेंगे या नहीं बिलकुल अन्तिम समय तक इसका निश्चय नहीं हो पाया था। चूँकि महादेवभाई मुझे लिख चुके थे इसलिए पी एण्ड ओ कम्पनी के साथ टिकट आदि की बात तो मैंने कई दिन पहले ही तय कर ली थी। मेरे एक फुफेरे भाई मानते थे कि उन्हें बिलकुल ताजा-से-ताजा 'अन्दर की बात' मालूम होती रहती है। मुझसे बोले। "मैं जानता हूँ गांधीजी नहीं जायेंगे। स्वयं शर्त बदने को भी तैयार थे। मैंने कहा

'मैं शर्त नहीं बदूँगा क्योंकि मैं जानता हूँ।

इतने पर भी उन्होंने शर्त बदी और वे हारे। कोई दस रुपये की शर्त थी। चाय का समय हो रहा था इसलिए उस रकम के पेड़े मँगवाये गये और दफ्तर के सब लोगों ने खाये।

६६. जिस दिन गांधीजी की अब्बसी गोलमेज-परिषद् के लिए विदा हुई, उस दिन मैं बड़े सबेरे ही मणि-भुवन पहुँच गया था। एक पासपोर्ट-अधिकारी जानेवालों के हस्ताक्षर कराने के लिए वहाँ आया था। बापू ने उससे पूछा

'सबके हस्ताक्षर मिल गये?

"जी एक देवदासभाई के ही बचे हैं। वे मणि-भुवन में नहीं हैं। सुनकर गांधीजी ने कहा था

"मेरी सारी 'वैनिटी' (अहंकार) उसमें घुस बैठी है। म जाने क्या-क्या सामान बटोरने के लिए कहीं भटक रहा होगा।

विलायत की इस यात्रा के लिए देवदासभाई और महादेव भाई ने कई सन्दूकें सूटकेस आदि इकट्ठा करके उन्हें तरह-तरह क सामानों से भर लिया था। सब कोई जानते हैं कि वह सारा सामान गांधीजी ने किस तरह अदन से वापस लौटा दिया था।

६७ इस गोलमेज-परिषद् के सिलसिले में जिन दिनों गांधीजी लन्दन में थे उन्हीं दिनों अमेरिका के लिए गांधीजी की एक रेडियो-वार्ता निश्चित हुई थी। कोई दस या बीस मिनट की थी। गांधीजी ब्रॉडकास्ट कर रहे थे। तीन ही मिनट शेष रहे थे तब तक गांधी जी समापन (समिंग अप) नहीं कर पाये थे। ब्रॉडकास्टवालों ने धीमे से गांधीजी के सामने चिट्ठी रखकर उनका ध्यान इस ओर खींचा कि अब दो ही मिनट बचे हैं और अभी तक 'समिंग अप' हुआ नहीं है। गांधीजी न तुरन्त सावधान होकर दो ही मिनटों

में बड़ी ही खूबी के साथ इतना सुन्दर समापन किया कि सारे पत्रकारों ने मुक्त कण्ठ से उसकी सराहना की।

यह बात एक अमेरिकन पत्रकार ने मुझसे कही थी।

५८. कोलम्बिया कम्पनी के God is Truth नामक रेकार्ड का इतिहास महादेवभाई ने मुझे सुनाया था। वे लोग लन्दन में गांधीजी की स्वीकृति से गये थे। बाद में निश्चित समय पर बापू स्टूडियो पहुँचे। समय हो चुका था लेकिन बापू की अपनी कोई तैयारी नहीं थी। इसलिए बापू ने 'यंग इण्डिया' की फाइल से God is Truth शीर्षक पैराग्राफ पढ़कर रेकार्ड करवा दिया।

अपने मूल रूप में यह रेकार्ड बहुत शुद्ध है। लेकिन चूंकि गांधीजी का मुँह पोपला था इसलिए एक-दो जगहों पर लड़खड़ाती जीभ की आवाज सुनाई पड़ती है। बाद में इस रेकार्ड पर से दूसरी सुधरी हुई प्रतियाँ तैयार की गयी हैं लेकिन वे उतनी प्रामाणिक नहीं हैं। असल रेकार्ड ही बढ़िया है।

६

सेवाग्राम (शुरू के साल)

देश और दुनिया का आकर्षण-केन्द्र

६९. लगभग सन् १९३४ से गांधीजी वर्धा रहने लगे थे। शुरू में थोड़े-थोड़े समय के लिए महिला-आश्रम, मगनवाड़ी आदि स्थानों में रहे और फिर वर्धा से पूर्व में ४ मील पर बसे सेगांव नाम के एक गाँव के पास जाकर बस गए। सेगांव में ज्यादातर हरिजनों की बस्ती थी।

फिर तो कुछ ही वर्षों के अन्दर उनकी अनेकविध सार्वजनिक प्रवृत्तियों और रचनात्मक कार्यक्रमों के कारण वहाँ चरखा-संघ, ग्रामोद्योग-संघ, तालीमी-संघ, गो-सेवा-संघ आदि अनेक संस्थाओं की एक बड़ी बस्ती ही खड़ी हो गयी। सेगांव का भी नया नामकरण हुआ और वह 'सेवाग्राम' कहलाने लगा। गांधीजी के जीवन-काल के अन्तिम बारह वर्षों में भी अधिक समय तक वर्धा और सेवाग्राम दोनों देश, दुनिया और विशेष भारत के लिए असाधारण आकर्षण के और उथल-पुथल के आकर्षण-केन्द्र बने रहे।

गांधीजी के सेवाग्राम-निवास के इन वर्षों में मैं कई बार सेवाग्राम आता-जाता रहा। उस समय के अपने संस्मरणों की चर्चा करने से पहले सन् १९३८ के मार्च में हुई हरिपुरा-कांग्रेस के दो संस्मरण यहाँ दे रहा हूँ।

७० हरिपुरा-कांग्रेस के अवसर पर मैं गांधीजी के लिए गुजरात की मिल द्वारा बनायी गयी एक छोटी बड़ीदार मेज ले गया था। उसे बिस्तर पर रखकर उस पर खाने-पीने की चीजें रखी जा सकती थीं। गांधीजी ने पूछा

"क्या खुद तुमने बनायी है?

"जी नहीं। स्वदेशी बनावट की चीज है, इसलिए लाया हूँ।

"चाहे स्वदेशी ही क्यों न हो मैं लूँगा नहीं। खुद तुम्हारे हाथ का बना कुछ हो तो दो नहीं तो 'क्षिक माफ करो!

मेरा मन रखने के लिए उन्होंने केवल एक दिन उसका उपयोग किया। दूसरे दिन लौटा दी। मौन था इसलिए चिट्ठी पर लिखा

"अच्छा हुआ आ गये। यह हरी मेज मुझे अखरती है। सेगाँव में शोभा नहीं देगी। इसलिए वापस ही ले जाओ।

इस मेज को मैंने अभी तक सँभालकर रखा है।

७१ कांग्रेस-अधिवेशन के स्थान पर एक ओर मजदूरों के निवास बने थे। इंग्लैण्ड से गांधीजी को मिलने आये पार्लमेण्ट के सिनियर नेता लॉर्ड सैम्युअल उसी तरफ घूम रहे थे। वे मजदूर-निवास देखने निकले थे। महादेवभाई या और कोई उनके साथ थे जो उन्हें सब-कुछ दिखा और समझा रहे थे।

लॉर्ड सैम्युअल ने देखा कि मजदूर-निवास में जगह-जगह कीमती हैण्ड-बैग सूटकेस और पोर्टमैण्ट आदि सामान पड़ा हुआ था। बोले

"क्या ही अच्छा हो यदि विलायत के हमारे मिल-मजदूरों को भी ऐसे बैग और सूटकेस मिल सकें!

असलियत यह थी कि अहमदाबाद के अमुक मिल-मालिक इन मजदूर-निवासों में मजदूर-नेताओं के साथ ठहरे थे। मजदूर नेताओं के साथ रहने से एक ओर लोकशाही स्थापित करने का यश मिलता है और दूसरी ओर सस्ती दरों से रहने को मिल जाता है। एक कंकड़ से दो पक्षी!

७२. मैं जब कभी सेवाग्राम जाता तो कभी-कभी वहाँ के अतिथि-घर में भी ठहरता लेकिन अधिकतर महादेवभाई के पास ही ठहरा करता। गांधीजी के कमरे में बैठता जरूर था पर बातचीत नहीं करता था। वर्धा में ११७-१८ तक की गरमी पड़ती थी। माथे पर गीली तौलिया रखने पर भी वह ५-७ मिनट में ही सूख जाती थी।

एक दिन बहुत कड़ी गरमी रही। गांधीजी ने तुरन्त ही कहलवा भेजा

'आज गरमी बहुत है। दोपहर को मेरी बैठक में सोना।'

'नहीं। मुझे इतनी मालूम नहीं होती।'

गांधीजी की कुटिया के दरवाजों और खिड़कियों पर खस की टट्टियाँ लगायी जाती थीं।

७३ एक दिन गांधीजी को पता चला कि मैं आम नहीं खाता। इससे उन्हें आश्चर्य हुआ। आम न खानेवाले व्यक्तियों में तो वे अकेले एक स्वामी आनन्द को ही जानते थे। इसलिए मुझसे इतिहास पूछा। मैंने बताया

'हमारे परिवार में इसकी परम्परा है। मेरी दादी-माँ ने अपने वैधव्य के दिन से आम खाना छोड़ा। पिताजी ने मेरे छोटे भाई

पद्मकान्त की मृत्यु के बाद छोड़ा। पिताजी नहीं खाते थे इसलिए माताजी ने छोड़ा।

मैंने सन् १९१२ में छोड़ा। जिन दिनों मैं विलायत में था वहाँ लीमड़ी के राजकुमार भी थे। एक बार उनके साथ चर्चा चल पड़ी। कहने लगे

"आम तो कोई छोड़ ही नहीं सकता।

'तो भी मैंने आम ही से छोड़ा।

'उसी साल मेरी माताजी की मृत्यु हो जाने के कारण मैं हिन्दुस्तान वापस आया। इसके कुछ ही समय बाद विदेश-यात्रा की प्रायश्चित्त विधि करवाने के लिए मेरी दादी-माँ मुझे बनारस ले गयी। वहाँ काशी-विश्वनाथ के सामने हरएक को कुछ-न-कुछ छोड़ना पड़ता है। इसलिए विलायत में आम छोड़ने का जो निश्चय मैंने किया था काशी में उसी पर मोहर लगा दी।

७४ गांधीजी के साथ हुई मेरी इस बातचीत का पता हमारे एक बहुत मजाकिया मित्र को चला। वे सज्जन गांधीजी की मण्डली में ठठोलीबाज के रूप में प्रसिद्ध थे। कहने लगे।

'बापू ने तुम्हारे आम छोड़ने पर भले ही अचम्भा प्रकट किया हो लेकिन तुम्हारे इस आम से कहीं बड़ी और प्यारी चीज मैं काशी-विश्वेश्वर के दरबार में छोड़ आया हूँ। उसकी चर्चा करूँ तो बापू को आश्चर्य तो आश्चर्य बेहोशी आ जाय!"

कौन-सी चीज? मुझसे तो कहिये। मैं बेहोश नहीं होऊँगा।

'जानते हो मुझे अपने माता-पिता से और गांधीजी से प्यारी-से प्यारी कौन-सी चीज मिली है? सत्य! मैं इसी सत्य को

काशी के विश्वेश्वरनाथ के चरणों में छोड़ आया हूँ। अब बालो है कोई ऐसा जो इस त्याग में मेरी बराबरी कर सके?

हम दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े!

कहा जाता है कि उन्होंने यही जवाब एक बार खुद गांधीजी को भी दिया था! मैं नहीं जानता कि उसे सुनकर गांधीजी बेहोश हुए थे या नहीं।

७५. सेवाग्राम में बिच्छू बहुत निकला करते थे। हर दिन किसी-न-किसीको काट लेते थे। रात में जब लड़कियों को काटते तो रोना-चिल्लाना शुरू हो जाता। गांधीजी की नींद खुल जाती। वे थोड़ी दौड़-धूप करवाते और बात ठंडी पड़ती। जब तक यह न होता, शायद ही कभी शान्ति हो पाती।

७६ सेवाग्राम में गांधीजी का पत्र-व्यवहार बहुत जबरदस्त हुआ करता। बहुतेरे महत्त्व के पत्र महादेवभाई के पास रहते। उन्हें सुरक्षित रखने के लिए आलमारी आदि की कोई व्यवस्था न थी। आखिर एक बार महादेवभाई ने मुझे लिखा और गोदरेज की दो आलमारियाँ मँगवायीं। आलमारियाँ सेवाग्राम पहुँचीं। लेकिन उन्हें महादेवभाई के घर के अन्दर ले जाते और रखते समय उनकी एक 'रामायण' खड़ी हो गयी। जिस घर में महादेवभाई रहते थे वह गांधीजी की कुटिया से लगा हुआ ही था। उन्हें डर था कि कहीं गांधीजी देख लेंगे तो आपत्ति उठायेंगे कि यह सारा ठाट बाट आखिर किसके बल पर है? लेकिन सौभाग्य से गांधीजी ने कोई खास आपत्ति नहीं की।

इसी तरह एक बार और महादेवभाई ने हिटमार जी-जी बनावटवाले पसन्द करके बनाने लायक दो सफेद मैस के लैम्प

पत्नीकान्त की मृत्यु के बाद छोड़ा। पिताजी नहीं चाहते थे इसलिए माताजी ने छोड़ा।

मैंने सन् १९२० में छोड़ा। जिन दिनों मैं विलायत में था वहीं भीवड़ी के राजकुमार भी थे। एक बार उनके साथ चर्चा चल पड़ी। कहने लगे

मांस तो कोई छोड़ ही नहीं सकता।

तो लो मैंने मांस ही ले छोड़ा।

'उसी साल मेरी माताजी की मृत्यु हो जाने के कारण मैं हिन्दुस्तान वापस आया। इसके कुछ ही समय बाद विदेश-यात्रा की प्रायश्चित विधि करवाने के लिए मेरी दादी-माँ मुझे बनारस ले गयी। वहाँ काशी विश्वनाथ के सामने हरएक को कुछ-न-कुछ छोड़ना पड़ता है। इसलिए विलायत में मांस छोड़ने का जो निश्चय मैंने किया था काशी में उसी पर मोहर लगा दी।

७४ गांधीजी के साथ हुई मेरी इस बातचीत का पता हमारे एक बहुत नजदीकी मित्र को चला। ये सज्जन गांधीजी की मण्डली में ठठोलीबाज के रूप में प्रसिद्ध थे। कहने लगे।

बापू ने तुम्हारे मांस छोड़ने पर भले ही प्रसन्नता प्रकट किया हो लेकिन तुम्हारे इस मांस से कहीं बड़ी और प्यारी चीज मैं काशी विश्वम्भर के दरबार में छोड़ आया हूँ। उसकी चर्चा करूँ तो बापू को आश्चर्य तो आश्चर्य बेहोशी आ जाय!

कौन-सी चीज? मुझसे तो कहिये। मैं बेहोश नहीं होऊँगा।

जानते हो मुझे अपने माता-पिता से और गांधीजी से प्यारी-से प्यारी कौन-सी चीज मिली है? सत्य! मैं इसी सत्य को

गांधीजी के

मैंने उसे महादेवभाई के पास भेज दिया और लिखा "इसे देखकर आपको हँसी आयगी।" महादेवभाई ने वह पत्र गांधीजी को दिखा दिया।

गांधीजी ने प्रोफेसर एप्स्टिन को पत्र लिखवाया "आपको ये शराब की पार्टियाँ क्यों दी जा रही हैं? ऐसी पार्टियों में आपको नहीं जाना चाहिए।"

इस पर बहुत लम्बा पत्र-व्यवहार चला। श्री महावीर पटेल एप्स्टिन के मित्र थे। उन्होंने मुझसे पूछा

"तुमने यह क्या कर डाला?"

मैंने तो सिर्फ कॉकटेल-पार्टी का कार्ड केवल विनोद के विचार से महादेवभाई को भेज दिया था। बाकी कुछ लिखा नहीं था।

३९ प्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार और लेखक लुई फिशर एक बार गरमियों में सेवाग्राम पहुँचे थे। उन दिनों गांधीजी ने उन्हें सुझाया था कि वे दोपहर की कड़ी गरमी से बचने के लिए उस समय रोज पानी के टब में बैठा करें। तदनुसार वे टब में बैठे रहते थे और टब की किनार पर आड़ी पटिया रखकर उस पर अपना टाइप-राइटर रख लेते थे और इसी हालत में सारा समय अपनी टिप्पणियाँ और लेख टाइप किया करते थे। उन्होंने A Week with Gandhi (गांधी के साथ एक सप्ताह) नामक अपनी पुस्तक इसी तरह टाइप करके तैयार की थी।

४० अपनी एक वर्षगांठ के अवसर पर मैंने सदा की भाँति गांधीजी को प्रणामसूचक पत्र लिखा। साथ में महादेवभाई के नाम अपनी ओर से पत्र लिखवाया। जब बम्बई लौटकर महादेवभाई ने दोनों पत्र उन्हें दिखाये तो गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

मुझसे संमझाया। उन दिनों सेवाग्राम में बिजली नहीं थी और सारी बत्तीवाला लैम्प या लालटेन के उजाले में लिखना महादेवभाई से बनता नहीं था। उन्हें दो लैम्प भेजे लेकिन महादेवभाई ने उसके पार्सल को कई दिनों तक खोला ही नहीं। प्यारेलालजी उनसे बार-बार पूछा करते कि क्या चीज आयी है? एक दिन गांधीजी के सो जाने के बाद महादेवभाई ने प्यारेलालजी को विश्वास में लेकर पार्सल खोला। लेकिन लैम्पों का उपयोग उन्होंने कुछ ही समय तक किया। मुझे पक्की जानकारी तो नहीं है लेकिन शक है कि बहुत करके बाद में गांधीजी ने उन्हें बन्द करवा दिया था।

७७ एक बार मैंने महादेवभाई के सामने अपनी यह माँग रखी कि वे मुझे गांधीजी का एक गिरा हुआ दाँत दें। उन्होंने मुझे पहले का एक किस्सा सुनाया। महादेवभाई ने गांधीजी का एक गिरा हुआ दाँत सहेजकर रखा था। देवदासभाई ने उसे देखा। उन्होंने कहा 'बस दो वो मुझे दो। इस पर मेरा हक है। इतने में ऊपर से गांधीजी निकले। पूछा क्या बात है? यह तकरार किसलिए है?

महादेवभाई यह दाँत आपका है। मैंने सँभालकर रखा था। देवदास माँग रहा है। कहता है इस पर मेरा हक है।

गांधीजी हक की ही बात हो तो महादेव का ही हक अधिक माना जायगा। लेकिन मेरा हक सबसे ज्यादा है। लाओ।

गांधीजी ने दाँत माँग लिया। फिर हाथ में लेकर उसे ऐसी जगह फेंक दिया कि जहाँ से किसी के हाथ न लग सके।

७८ बम्बई के विलिंग्डन क्लब में फ्रीडर एडविन के सम्मान में एक पार्टी दी गयी। मुझे उसका निमंत्रण-पत्र मिला।

८१ एक बार सन् १९४ में मैं सेवाग्राम पहुँचा। अम्माजी (सरोजिनी देवी) भी वहीं थीं। उनके परिचितों की एक टोली सेवाग्राम देखने आयी थी। गांधीजी भी उनसे मिले। बाद में सब लोग आश्रम देखने निकले। किशोरलालभाई ने एक आश्रमवासी को उन्हें सब कुछ दिखाने-समझाने के लिए साथ कर दिया था। बुआजी भी साथ में थीं।

बुआजी हँसी-मजाक के लिए प्रसिद्ध थीं। उनका हँसी-मजाक निर्दोष होते हुए भी कभी-कभी गजब की चोट कर बैठता था। गांधीजी की कुटिया से निकलकर सब लोग कस्तूरबा के घर और मुख्य रसोई-घर के बीचवाले खुले मैदान में खड़े थे। दिखानेवाले भाई घर के सामनेवाले निवासों की ओर इशारा करके बोले:

पहले यहाँ गोशाला थी और गायें बँधती थीं। बाद में जब आश्रमवासियों के लिए मकानों की तंगी महसूस होने लगी तो गोशाला को दूसरी जगह ले गये और ये घर यहाँ बनवाये गये।

बुआजी बोलीं: 'बेशक, यही तो हो सकता था!'

यों कहकर उन्होंने फारसी का एक शेर पढ़ा, जिसका आशय कुछ इस प्रकार था:

'आम्मको कारसाजी क्या ला चाशो
के मार्फी मर्मा रामय मै कार्दा सिनी गायो।*

सुनकर सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये!

---

* अर्थ: कुदरत का करिश्मा इतना दिलचस्प है कि उसने गधे आदम बना दिये हैं और गायों को बाहर निकाल दिया है।

कनुभाई ने उनके उस मुक्त हास्य का एक फोटो लिया था जो बहुत प्रसिद्ध हो चुका है। गांधीजी ने मुझे लिखा

'एक मुन्शीको गुजराती मे और महादेव को अंग्रेजी मे क्यों? गुजराती का अभ्यास रखने से अक्षर और भाषा दोनो सुधरेंगे। बहुत ही जल्दी हुआ करे तो अपने गुजराती पत्र किसी गुजराती कारकुन से लिखवा लिया करो। जो कमी रह गयी है उसे प्रयत्न पूर्वक दूर कर लेना चाहिए।'

८१ सेवाग्राम मे आश्रम के सामूहिक रसोई-घर के अलावा महादेवभाई, किशोरलालभाई जैसे एक-दो के घर पर ही अलग से रसोई बनती थी। बड़े रसोई-घर में रसोई सादी और मामूली बना करती थी। नमक जरूरत के अनुसार अलग से दिया जाता था। मै दोपहर को बड़े भोजनालय मे और शाम को महादेवभाई के साथ भोजन करता था। जब कोई प्याज परोसनेवाला मेरे पास पहुँचता तो गांधीजी उससे कहते "ये प्याज नही लेते। ये बा की जाति के है"

एक बार श्री मणिलाल गांधी दक्षिण अफ्रीका से आये थे। उन दिनो नमक और मसाले के बारे में लम्बी चर्चाओं के बाद थोड़ी छूट दी गयी थी लेकिन वह कुछ ही दिन चली।

८२ बड़े भोजनालय में भोजन करनेवालो को प्रतिदिन आश्रम के बगीचे के फल मिला करते थे। ज्यादातर अमरूद मिलते थे। एक दिन एक लड़का अपना हिस्से का अमरूद खा रहा था बिलकुल कच्चा। उसने गांधीजी को दिखाया। गांधीजी बोले

"कोई हर्ज नही। भोजन रसोई-घर में चूल्हे के सामने रख दे, शाम तक पक जायगा"

मोर्चे में सम्मिलित होने के लिए न्योता था । वे आग्रही थे कि दाल-बाटी का मुझे बहुत शौक है । भोजन के बाद काकाजी (जमनालालजी) ने हम सबको इकट्ठा करके गो-सेवा-संघ के उद्देश्यों और कार्यक्रम को समझाते हुए एक खासा लम्बा भाषण दिया । बाद में बोले

'कहिए अब आप लोगों में से कौन-कौन संघ के सदस्य बनने को तैयार है ?

परिवार के और निमंत्रित भी सब मिलाकर कुल १०-१२ लोग वहाँ मौजूद थे । किन्तु उनके ज्येष्ठ पुत्र कमलनयनजी सहित कोई भी ऐसा न था जो सदस्यता की प्रतिज्ञा लेने को तैयार हो ।

यह देखकर काकाजी थोड़े उदास-से हो गये । मैंने कहा

'अगर एक साल के लिए सदस्य बना सकते हों तो मैं आपके संघ का सदस्य बनने को तैयार हूँ ।

दीवाली के दिन थे । काकाजी खुश हुए ।

घर आने पर मैंने अपनी पत्नी से चर्चा की । वे बोलीं

'इसमें कौन बड़ा गढ़ जीतकर आये हो ? दूध, दही, मक्खन और इनसे बनी चीजों के प्रति तो आपकी जन्म से ही अरुचि रही है । आपके समान लोग इस प्रकार का व्रत लें और संघ के सदस्य बनें उससे गायों का दुख कभी घटनेवाला नहीं है ।

बाद में काकाजी के आग्रह के कारण उनसे पत्र-व्यवहार करके मैं स्थायी सदस्य भी बन गया था । लेकिन उसमें शर्त यह रखी थी कि किसी भी समय किसी अनिवार्य कारण से मैं त्याग-पत्र दे सकूँगा । काकाजी ने अपने पत्र में इसके लिए स्वीकृति लिख भेजी थी ।

७

जमनालालजी की गो-सेवा

दाल-बाटी की गोठ

अपनी मृत्यु से कुछ पहले के अन्तिम वर्षों में जमनालालजी ने गो-सेवा का काम अपनाया था। गांधीजी के मार्ग-दर्शन में अखिल भारत गो-सेवा-संघ की स्थापना करके वे समस्त भाव से संघ का काम करने लगे थे। उन्होंने नालवाडी गाँव के निकट गो-पुरी नामक बस्ती बसायी थी और खुद भी वहीं रहने लगे थे। स्वयं उन्होंने गाय के ही दूध घी चमड़े आदि का उपयोग करने का व्रत लिया था और वे दूसरों को भी ऐसा व्रत लेने के लिए समझाया करते थे। अपने आने-जाने के लिए भी वे बैलगाड़ी का ही उपयोग करते थे। वर्धा में रहते हुए कभी मोटर में नहीं बैठते थे।

गांधीजी की सलाह से उन्होंने जिस गो-सेवा-संघ की स्थापना की थी, उसके सदस्य बननेवाले को गाय का ही घी-दूध खाने और अपनी मौत मरे गाय-बैल के ही चमड़े का उपयोग करने की प्रतिज्ञा लेनी होती थी। इन प्रतिज्ञाओं का पालन कठिन था, इसलिए संघ के सदस्य अधिक नहीं बनते थे। किन्तु जमनालालजी कभी हारते न थे। नये सदस्य बनाने का प्रयत्न बराबर करते रहते थे।

एक बार वर्धा में हमारे पड़ोस में रहनेवाले रुइया-परिवार के घर में दाल-बाटी की गोठ में आये थे। जमनालालजी ने मुझे

मार्ग में सम्मिलित होने के लिए न्योता था वे जानते थे कि दाल-बाटी का मुझे बहुत शौक है। भोजन के बाद काकाजी (जमनालालजी) ने हम सबको इकट्ठा करके गो-सेवा-संघ के उद्देश्यों और कार्यक्रम को समझाते हुए एक खासा लम्बा भाषण दिया। बाद में बोले

'कहिए अब आप लोगों में से कौन-कौन संघ के सदस्य बनने को तैयार है?

परिवार के और निमंत्रित मों सब मिलाकर कुल १०-१२ लोग वहाँ मौजूद थे। किन्तु उनके ज्येष्ठ पुत्र कमलनयनजी सहित कोई भी ऐसा न था जो सदस्यता की प्रतिज्ञा लेने को तैयार हो।

यह देखकर काकाजी थोड़ उदास-से हो गये। मैंने कहा

'अगर एक साल के लिए सदस्य बना सकते हों तो मैं आपके संघ का सदस्य बनने को तैयार हूँ।

दीवाली के दिन थे। काकाजी खुश हुए।

घर आने पर मैंने अपनी पत्नी से चर्चा की। वे बोलीं

"इसमें कौन बड़ा गढ़ जीतकर आये हो? दूध, दही मक्खन और इनसे बनी चीजों के प्रति तो आपको जन्म से ही अरुचि रही है। आपके समान लोग इस प्रकार का व्रत लें और संघ के सदस्य बनें उससे गायों का दूध कभी बढ़नेवाला नहीं है।

बाद में काकाजी के आग्रह के कारण उनसे पत्र-व्यवहार करके मैं स्थायी सदस्य भी बन गया था। लेकिन उसमें शर्त यह रखी थी कि किसी भी समय किसी अनिवार्य कारण से मैं त्याग-पत्र दे सकूँगा। काकाजी ने अपने पत्र में इसके लिए स्वीकृति लिख भेजी थी।

इसके कुछ ही समय बाद जमनालालजी का आकस्मिक स्वर्गवास हुआ। गांधीजी ने मुझे संघ का उपाध्यक्ष बनाया।

बाद में जब सन् १९४६ में इंग्लैण्ड-अमेरिका जाने का मेरा कार्यक्रम बना तो मैंने संघ की सदस्यता से अपना त्याग-पत्र भेज दिया। वैसे विदेशों में गाय के घी दूध और मक्खन की कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि इंग्लैण्ड और अमेरिका में भैंसें होती ही नहीं। लेकिन वहाँ कुदरती तौर पर मरे गाय-बैल के ही चमड़े के जूतों का और दूसरी चीजों के उपयोग का नियम पाला नहीं जा सकता था। इसलिए मैंने त्याग-पत्र भेज दिया।

क्योंकि जमनालालजी रहे नहीं थे इसलिए त्याग-पत्र गांधीजी के पास पहुँचा।

तुम आजीवन सदस्य हो। त्याग-पत्र नहीं दे सकते।

'जी, सदस्य बनते समय जमनालालजी के साथ मैंने यह तय कर लिया था कि मैं जब चाहूँ तब त्याग-पत्र दे सकूँगा।

गांधीजी को इस बात की कोई कल्पना नहीं हो सकती थी कि जमनालालजी ऐसी कोई रियायत करेंगे।

जमनालालजी तो जीवित हैं नहीं। तुम्हारे पास कुछ लिखा हुआ है?

उस समय हमारे बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था सो मैंने गांधीजी को दिखाया। उन्हें आश्चर्य हुआ।

बाद में मैंने गांधीजी को जुहू की दाल-बाटीवाली गोठ का सारा इतिहास सुनाकर बताया कि मैं किस तरह 'फँसा' था और सदस्य बना था। फिर मैंने कहा

'प्रत्येक मनुष्य में किसी-न-किसी प्रकार की कोई कमजोरी होती ही है और उसमें वह कभी-न-कभी अचूक रीति से फँसता

है। खाने की चीजों में खटाई ही मेरी एकमात्र कमजोरी है। इस तरह उसने मुझे संघ की सदस्यता में 'फँसा लिया था'।

गांधीजी खिलखिलाकर हँसे। कहने लगे

"इस फन्दे में पड़कर तुमने गाय की सेवा की तो एक लाभ ही हुआ न?"

८५. नियम यह था कि गो-सेवा-संघ के सदस्यों को गाय का ही घी-दूध खाने का व्रत लेना चाहिए। वे दूसरा कोई घी-दूध या दूध से बननेवाले पदार्थ खा नहीं सकते। मैं गो-सेवा-संघ का सदस्य था। गांधीजी अपनी बकरी के दूध की बनी चीजें सबको बाँटा करते थे। एक दिन मुझे भी देने लगे। मैंने इनकार किया। कहा 'मैं गो-सेवा-संघ का सदस्य हूँ। मैं बकरी के दूध की बनी चीजें नहीं खा सकता। नहीं नहीं बल्कि आप हमारे संघ के सदस्य बनना चाहें, तो भी आपके लिए तो संघ के दरवाजे बन्द ही रहेंगे। जब तक आप गाय का घी-दूध न खायें हम आपको भी अपने संघ का सदस्य नहीं बना सकते।

सब ठहाका मारकर हँस पड़े।

८६. इस गो-सेवा-संघ की स्थापना के थोड़े समय बाद कुछ मित्रों ने गायों की नस्ल सुधारने के लिए ऊँची नस्ल के सांडों का पालन करनेवाले एक 'वृषभ-सुधार मण्डल' की स्थापना का काम हाथ में लिया।

इस सम्बन्ध की चर्चा के चलते मैंने कहा कि लोग 'वृषभ सुधार' नाम समझेंगे नहीं। वृषभ के बदले दूसरा कोई सरल नाम रखना ठीक होगा। 'गो-वंश-सुधार-समाज' या ऐसा ही कोई नाम रखिये। 'गोपति-सुधार' भी सुझाया गया और उस पर लोग खूब

दिये। 'नन्दी-कुमार' का सुझाव भी आया। राजाजी ने कहा, 'नन्दी ब्रह्मचारी था। आजीवन वहीं रहकर उसने अन्तेवासी के रूप में शिवजी की सेवा की थी। ऐसे नन्दी को गायों की नस्ल सुधारनेवाले कुलीन सांड के रूप में कैसे रखा जाय?'

अन्त में 'वृषभ-कुमार' ही रहा।

८७ एक बार गांधीजी जुहू के समुद्र-तट पर 'जानकी-कुटीर' में ठहरे थे। वहां कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक चल रही थी। एक दिन एक आदमी एक मोटे-से नन्दी के साथ डमरू बजाता हुआ आया। 'भोलानाथ' नाम का वह नन्दी उन दिनों चारों ओर मशहूर हो चुका था और उसका रक्षक स्वामी उसे लेकर सर्वत्र घूमता था। दक्षिण में इस प्रकार के नन्दियों को लेकर घूमनेवाले भिक्षुओं की एक जमात ही पायी जाती है। नन्दी के बदन पर बढ़िया लाल रंग की झूल पड़ी थी और उस पर रंग-बिरंगे कांचों के टुकड़े टँके थे। गले में छोटे घण्टे और कौड़ियों की मालाएँ थीं। रक्षक डमरू बजाकर लोगों की भीड़ इकट्ठा करता था और लोगों से कहता था कि उन्हें कोई सवाल पूछने हों तो 'भोलानाथ' से पूछें और भोलानाथ था कि सिर हिलाकर सवालों के अचूक उत्तर देता था।

इधर उस दिन भी वर्किंग कमेटी की बैठक पूरी हुई और उधर फाटक के सामने से 'भोलानाथ' गुजरा। स्वर्गीय जमनालालजी को इस प्रकार की बातों में बड़ी दिलचस्पी थी। उन्होंने उस रक्षक को नन्दी के साथ अहाते में बुलाया। कमेटी के सब सदस्य नेता बाहर निकल आये और 'भोलानाथ' को घेरकर खड़े हो गये। रक्षक ने कहा,

'आपको जो पूछना हो, पूछिये।'

जमनालालजी 'भोलानाथ' से सवाल पूछने लगे

'कहो भोलानाथ! ये जितने लोग यहाँ खड़े हैं उनमें गांधीजी सबसे ज्यादा किसको चाहते हैं?'

भोलानाथ ने सब मजमा के सामने से गुजरकर पहले एक चक्कर लगाया। फिर जवाहरलालजी के सामने आकर खड़ा रहा!

कुछ दिनों के बाद सब बिखर गये। गांधीजी वर्धा पहुँचे। इसके बाद एक दिन वर्धा से जमनालालजी का एक तार मेरे नाम आया

'भोलानाथ को खरीद लो और फौरन वर्धा भेजो।

तार की भाषा बिलकुल स्पष्ट थी। पर विश्वास नहीं होता था कि जमनालालजी ऐसी कोई माँग करेंगे। दैवयोग से उस समय महादेवभाई बम्बई में थे। मैंने उनसे चर्चा की। कहने लगे

"जमनालालजी को तो कोई भी नया पशु प्राणी अथवा कोई अद्भुत चीज मिल जाती है तो बस एक ही धुन रहती है उसे वर्धा पहुँचाने की। और तो और, तुम तो नहीं समझो न कि वे गांधीजी को भी एक महान् प्राणी का नमूना मानकर ही साबरमती से वर्धा उठा ले गये हैं!!!

मुझे तो पक्का विश्वास और पता था कि नन्दी अपने रक्षक का सिखाया हुआ होता है। यदि बिना रक्षक के अकेले नन्दी को कोई खरीदे या ले जाय तो वह उसके गले ही पड़ रहे। खुद नन्दी में अपनी कोई करामात नहीं होती।

मैंने उस खरीदने की कोई कार्रवाई नहीं की और कुछ ही दिनों में बात आयी-गयी हो गयी!

८ जमनालालजी के अवसान के कोई ११-१२ दिन पहले मैं वर्धा में उनके प्रसिद्ध अतिथि-गृह वाले बँगले में ठहरा हुआ था।

बम्बई के दूसरे दो-तीन मित्र भी मेरे साथ रहते थे। जमनालालजी गोपुरी से बंगले पर आते थे। लौटते समय उन्होंने हम सबसे पूछा

"मेरे साथ गोपुरी कौन चलता है?"

कोई तैयार नहीं हुआ। यह देखकर मैं तैयार हो गया। उस शाम और रात भी मैं उन्हीं के साथ रहा। बहुत खुश हो गये। वे बड़े सबेरे उठकर घूमते समय गाय को अपने हाथों खिलाते खुजलाते और सहलाते थे।

बम्बई लौटकर मैंने ३ फरवरी के दिन उन्हें एक आभार सूचक पत्र लिखा। उत्तर में ९ फरवरी को उन्होंने मुझे लिखा

"आभार के पत्र की कोई आवश्यकता नहीं थी। उलटे मेरे यहाँ तुमको कष्ट ही हुआ होगा। लेकिन मैं तो तुम्हें घर का आदमी समझता हूँ इसलिए मैंने उस तरफ ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी और आज भी नहीं समझता।

अगले ही दिन वे चल बसे।

८९. लड़ाई के वर्षों में चीन के उस समय के मुखिया च्यांग-काई-शेक कलकत्ते आये थे। वे गांधीजी से मिलना चाहते थे। इसलिए गांधीजी कलकत्ते गये। मिलकर तुरन्त ही सेवाग्राम लौट आये। क्योंकि जमनालालजी का अभी हाल ही देहान्त हुआ था। जब से गांधीजी कलकत्ते गये तभी से हम च्यांग-काई-शेक के बारे में उनकी राय जानने को बहुत उत्सुक थे। उनके लौटने के तुरन्त बाद हम सब उनकी कुटिया में घुसे और उनसे च्यांग-काई-शेक के बारे में पूछा। गांधीजी ने कहा

'मुझे उनकी हिन्दुस्तान-यात्रा के मूल में राजनीतिक मिशन (हेतु) की गंध आती है। मेरा तो खयाल है कि हिन्दुस्तान को

लड़ाई में घसीटने के लिए 'ईसाइयों'—ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रों—ने ही उन्हें यहाँ भेजा है।

१० जिन दिनों गांधीजी कलकत्ता गये थे उन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध बंगाली साध्वी आनन्दमयी देवी गोपुरी (वर्धा) आयी थीं। जमनालालजी की साधु-सन्तों में बड़ी आस्था थी। उन्होंने गांधीजी के साथ मिलाप कराने के लिए आनन्दमयी देवी को आग्रहपूर्वक सेवाग्राम आने का आमंत्रण दिया था। दुर्भाग्यवश वे जमनालालजी के अवसान के बाद ही आ सकीं। गोपुरी में माता जानकीदेवी ने पति की मृत्यु के बाद संकल्पित दान-पुण्य की सारी धन-राशि और गायें आदि सब-कुछ मैया आनन्दमयी को अर्पित कर दिया। गांधीजी सेवाग्राम में थे नहीं इसलिए उन्हें आग्रहपूर्वक रोका। जब तक गांधीजी के साथ भेंट-चर्चा न हुई, उन्हें जाने न दिया। एक-दो दिन के बाद गांधीजी कलकत्ता से लौटे। माता जानकी-देवी की इच्छा थी कि गांधीजी गोपुरी आयें। मैया ने कहा

'वे उम्र में बड़े हैं इसलिए हमारे जाने में कोई हर्ज नहीं।'

गांधीजी की अनुमति प्राप्त करने के बाद जानकीदेवी के साथ सारा दल गांधीजी से मिलने के लिए सेवाग्राम रवाना हुआ। शाम की प्रार्थना के बाद लगभग १½ घण्टे तक गांधीजी की और मैया की मुलाकात चली। गांधीजी के हम सब अन्तेवासी वहीं रहे। कुटिया खचाखच भर गयी थी।

लेकिन बातचीत में कोई ताल-मेल नहीं। वे किसी प्रकार की कोई गम्भीर चर्चा शुरू ही न करती थीं! न पूछती थीं न जवाब देती थीं। सब कुछ हँसकर ही टाल दिया करती थीं।

'आप सब जानते हैं। मुझसे क्या पूछते हैं?

जिन दिनों मैया कोपुरी में थीं उनसे मिलने के लिए विनोबा जी भी पवनार से आये थे। उन्होंने भी अपने सदा के अत्यन्त मग्न भाव से उनसे कुछ सवाल पूछे। लेकिन उन्हें भी इसी तरह हँसकर टाल दिया।

'आप सब जानते हैं मुझसे क्या पूछते हैं ?"

बस यही था 'अच्युतम् केशवम्' ! हममें से बहुतों पर उनकी कोई छाप नहीं पड़ी।

९१ कलकत्ते जाने से पहले गांधीजी ने जमनालालजी की श्राद्ध तिथि के दिन रचनात्मक काम में लगे देश के अग्रणी कार्यकर्ताओं को वर्धा बुलाया था। प्रत्येक प्रान्त के सेवक जिनसे साथ स्वर्गीय जमनालालजी कुटुम्बी का-सा सम्बन्ध रखते थे वर्धा आये और सत्याग्रह आश्रम में उनकी एक सभा हुई। स्वर्गीय जमनालालजी की पत्नी श्रीमती जानकीदेवी बजाज भी इस शोक-सभा में आयी थीं और लम्बा-सा घूंघट निकालकर गांधीजी के पास बैठी थीं। बाद में गांधीजी के कहने पर उन्होंने अपना घूंघट थोड़ा हटाकर ऊपर कर लिया था।

गांधीजी ने कहा

अब स्त्रियों का आदर्श बदल चुका है। पहले की तरह अब स्त्रियों की पति-भक्ति की कसौटी पति के साथ सती होने में नहीं बल्कि पति द्वारा अधूरे छोड़े गए कामों को उनकी भक्ति और निष्ठा के साथ चलाने में और पूरा करने में है। इस विचार को हृदयंगम करके उसे अमल में लाना चाहिए।

इन स्त्रियों की सभा को सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने कहा था

गांधीजी के

"मुझे पैसों की जरूरत नहीं है। पैसे तो निष्ठापूर्वक किये गये काम के पीछे-पीछे आ ही जाते हैं। मुझे तो जमनालाल के समान कार्यकर्ताओं की ही जरूरत है। उनके समान शक्तिमान् और एकनिष्ठ तो मुश्किल से ही मिलेंगे। किन्तु उनसे कुछ कम भी हुए तो चलेंगे। केवल पैसों को मैं क्या करूँ? बिना आदमी के पैसा निकम्मा है—केवल बोझ-रूप है।"

गांधीजी ने कार्यकर्ताओं के साथ गो-सेवा-संघ की और जिन दूसरे रचनात्मक कामों की संस्थाओं आदि को जमनालालजी चलाया करते थे उनकी व्यवस्था के बारे में चर्चा की। गो-सेवा संघ का काम माता जानकीदेवी बजाज को सौंपा गया और दूसरे विभिन्न कामों को चलाने के लिए योग्य कार्यकर्ता पसन्द किये गये।

इस गम्भीर अवसर पर एक बहुत ही विनोदपूर्ण घटना घटी। स्वर्गीय जमनालालजी ने छोटे-से-छोटे ग्राम-सेवक और कार्यकर्ता के साथ आत्मीयता का नाता रखा था। वे सबके साथ अत्यन्त निकट का पारिवारिक सम्बन्ध रखने का प्रयत्न करते थे और उनकी घर-गृहस्थी बीमारी बच्चों की शिक्षा और लड़के-लड़कियों की सगाई शादी की व्यवस्था में गहरी रुचि लेते थे और चिन्ता रखते थे। जमनालालजी के ज्येष्ठ पुत्र कमलनयन बजाज बड़े विनोदी हैं। उन्होंने गांधीजी से कहा :

'आपने काकाजी के सब कामों की तो व्यवस्था लगा दी। लेकिन उनका एक 'पोर्टफोलियो' बच गया है।

"कौन-सा?

"शादीलाल का।

'किस तौर?

"शान्तिकुमार की।

सभासदों में से बहुतेरे अपनी हँसी रोक न सके। उन्होंने गांधीजी के इस गम्भीर वातावरण को बिलकुल हलका बना दिया। इस हँसी-विनोद के बीच शोक-सभा विसर्जित हुई।

१८. सन् १९४२ के अगस्त में जब कांग्रेस की महासभा का अधिवेशन बम्बई में हुआ था, गांधीजी बिड़ला-हाउस में ठहरे थे। आठ की दोपहर को महासभा की बैठक में जाने से पहले गांधीजी ने वर्धा की गोपुरी नामक बस्ती के बारे में चर्चा की। वहां जिस जगह जमनालालजी कुटिया बनाकर रहे थे उसी जगह एक पक्का मकान बनवाकर जानकीदेवी उसमें स्थायी रूप से रहनेवाली थीं। चूंकि मैं गो-सेवा-संघ का उपाध्यक्ष था इसलिए निर्माण-कार्य की जिम्मेदारी मुझे सौंपी गयी थी। अतएव महासभा के अधिवेशन में जाने से पहले मैंने गांधीजी को उस मकान का प्लान दिखाया। उन्होंने उसे पास किया और मैंने तदनुसार निर्माण-कार्य प्रारम्भ करने की सूचना वर्धा भेजी। बाद में जब मकान बनकर तैयार हुआ तो पता चला कि वह गांधीजी द्वारा पास किये गये प्लान के अनुसार नहीं था। माता जानकीदेवीजी के कहने से उनके भतीजे श्री राधाकृष्णजी बजाज ने उस पर एक मंज़िल और बढ़ा दी थी। बाद में जब सन् १९४४ में आगा खान-महल के जेल से छूटकर गांधीजी पहली बार सेवाग्राम पहुँचे तो उन्होंने गोपुरी में जानकीदेवी-स्मारक को देखा और मुझसे पूछा

— मंज़िल क्यों बढ़ायी

गांधीजी के

किसी भी सभा में [illegible] कोई मकान हो। वे उसके विरोधी थे। इसलिए कि वह देहाती जीवन के खिलाफ पड़ता था।

१३ मेरी स्मृति में माता जानकीदेवी बजाज का एक संस्मरण और भी बना हुआ है।

माता जानकीदेवी बजाज अपनी झोंपड़ीवाली 'जानकी-कुटीर' में रहती थीं। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर बरनी में कपड़छन की हुई महीन राख देखी। उन्होंने सोचा उनके पुत्र कमलनयन ने दन्तमञ्जन बनवाकर रखा है। अतः उन्होंने वह 'दन्तमञ्जन' बरतना शुरू कर दिया। दो-तीन दिन के बाद एक दिन कमलनयनजी ने देखा। पूछा

'माँ यह क्या करती हो?

'क्यों तेरा दन्तमञ्जन लेकर दाँत माँज रही हूँ!

'लेकिन माँ यह तो महादेवभाई की भस्म है!'

माताजी चुप रह गयी। बहुत उदास हो गयी। कमलनयनजी ने सोचा कि यह भस्म शान्तिकुमार के घर ही सुरक्षित रहेगी। और यहाँ रही तो काम में पड़ जायगी। इसलिए भस्मवाली बरनी लेकर तुरन्त ही मोटर में मेरे घर आये और भस्म मुझे सौंप गये।

माताजी के उद्वेग का तो कोई पार न था। मैंने उनको ढाढ़स बँधाते हुए कहा

'आप किसलिए नाहक व्यथा की जाती हैं? माँ का मुँह तो गंगा माना जाता है। महादेवभाई आपको माँ की दृष्टि से देखते थे। यह मानिये कि उनकी भस्म भागीरथी में न गयी तो गंगाजी में ही गयी!

माताजी का मन कुछ शान्त हुआ। ऐसा यह इतिहास है महादेवभाई की भस्मवाली उस बरनी का!

१८

'क्विट् इण्डिया'—पहला बलिदान

'आमीन !'

९४ जिन दिनों सन् १९४२ की 'क्विट् इण्डिया' लड़ाई के बादल मंडरा रहे थे, उन्हीं दिनों इस सारे प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए गांधीजी के पास एक महत्त्व की बैठक हुई थी। ब्रिटिश हुकूमत को हिन्दुस्तान छोड़कर जाने की बात कहनेवाले किसी ऐसे शब्द की खोज में गांधीजी सहित सब कोई लगे हुए थे कि जो चोकस होने पर भी आसानी से आम लोगों की जबान पर चढ़ जाय। चर्चा में अलग-अलग शब्द सुझाये गये। किसीने कहा Get out। गांधीजी बोले, इसमें अविनय भरा है। सम्भवतः राजाजी ने [illegible] अथवा Withdraw शब्द सुझाया था। गांधीजी ने कहा [illegible] Orderly Withdrawal पर पूरी तरह सन्तुष्ट [illegible] शब्द मिला नहीं। इसके कुछ दिन बाद जब गांधीजी बम्बई आये तो स्वर्गीय भाई यूसुफ मेहरअली उनसे मिलने आये। वे गांधीजी को भेंट के लिए अपने साथ एक बिल्ला बनवाकर [illegible]। उस पर लिखा था

[illegible]

[illegible] प्रयोग एकदम जंच गया। बोले

गांधीजी के

९ बम्बई के गोवालिया-टैंक पर हुई महासभा-समिति की सन् १९४२ की इस बैठक के दिनों में एक दिन अधिवेशन में जाने के लिए रवाना होने से पहले मौलाना साहब, पं. जवाहरलालजी और गांधीजी बिड़ला-हाउस में बातें कर रहे थे।

मौलाना : 'स्वराज' में कांग्रेस की पोजीशन क्या रहेगी?"

गांधीजी : कांग्रेस को तो हमेशा सरकारी तंत्र के बाहर रहकर जनता के हित के लिए सरकार पर दबाव डालते रहना चाहिए।

जवाहरलाल : "मेरे खयाल में कांग्रेस को सत्ता अपने हाथ में लेकर जनता का हित सिद्ध करना चाहिए।"

१६ महासभा-समिति की बैठक के अन्तिम दिनवाले अधिवेशन में महादेवभाई ने मुझसे पूछा था :

'कल अधिवेशन से जाने के बाद तुम शाम को बिड़ला-हाउस क्यों नहीं आये?'

देर बहुत हो चुकी थी इसीलिए नहीं आया।

'आज जरूर आना।'

लेकिन उस दिन तो महासभा-समिति में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और अधिवेशन पिछले दिन से भी ज्यादा देर में पूरा हुआ। इसलिए मैं सीधा घर ही चला गया।

गांधीजी ने महासभा-समिति के सदस्यों को दूसरे दिन सवेरे बिड़ला-हाउस बुलाया था। मैं तड़के ही उठकर बिड़ला-हाउस पहुंचा। जाकर देखा तो पता चला कि गांधीजी गिरफ्तार हो चुके थे।

महासभा-समिति के सदस्यों को नेताओं की गिरफ्तारी का पता नहीं था इसलिए पिछली रात की सूचना के अनुसार वे तो

थीं। बार-बार की टोलियां में बिड़ला-हाउस पहुँचने लग थे। किन्तु बाद में तो सबको बिड़ला-हाउस के 'पोर्च' के बाहर ही रोक दिया गया और लौट जाने को कहा गया।

मैं वहीं कुछ ही देर रुका। गांधीजी के साथ चल जाते समय महादेवभाई अपनी डायरियाँ अपने पुत्र नारायण को यह कहकर दे गये थे कि वह उन्हें मुझे सौंप दे। नारायण ने डायरियाँ मुझे दीं। उन्हें लेकर मैं लौटा।

१७ आगा खान-महल के जेल में जिस आकस्मिक रीति से महादेवभाई का अवसान हुआ, सरकार ने उसकी कोई खबर या समाचार तुरन्त किसीके पास पहुँचने नहीं दिया। सारी बातें बहुत गुप्त रखी। जब बालचन्द काका को इसका पता लगा तो महादेवभाई [illegible] गाढ़ सम्बन्ध का ध्यान रखकर उन्होंने तुरन्त [illegible] अपनी जानकारी भजवायी क्योंकि किसान उनमें कहा था [illegible] भी [illegible] कि खबर मेरे पास फौरन पहुँचा दें। [illegible] पर एक बड़ी मुश्किल रखी जाती थी। रोज [illegible] आगा खान-महल के अहाते में टहलने निकलते [illegible] की [illegible] हम उन्हें देखा करते थे। एक दिन [illegible] की बड़ी-बड़ी लपटें देखी थीं। लेकिन [illegible] अनुमान और नहीं लगा था।

किशोरलालभाई ने उन्हें यह समझाया कि यह चीज हिन्दू-संस्कार के विरुद्ध है तो उन्होंने ऐसा करना छोड़ दिया। एक पुरानी प्रथा के अनुसार हिन्दुओं में चिता-भस्म केवल उज्जैन के ज्योतिर्लिङ्ग महादेव महाकालेश्वर पर ही चढ़ती है और दर्शनार्थियों अथवा यात्रियों का प्रसादी के रूप में दी जाती है।

९९. महादेवभाई के करुण अवसान के बाद बापू के पास मंत्री का काम करनेवाला कोई न रहा। इसलिए सबसे पहले मैंने ही सरकार को सुझाया कि वह प्यारेलाल को अथवा किशोरलाल भाई को उनके पास भेज दे। बाद में तो दूसरे भी कई लोगों ने सरकार को इसी आशय के सुझाव भजे। आखिर सरकार को ये सुझाव मानने पड़े और उसने प्यारेलालजी को दूसरे जेल से बदलकर आगा खान-महल में भेज दिया। ●

९

आगा खान-महल के उपवास

'सभी मेरे सगे'

100 सरकार ने गांधीजी को अवसर ही नहीं दिया कि वे अपना पक्ष दुनिया के सामने अथवा सर्वसाधारण के सामने रख सकें। [illegible] सन् १९४२ की लड़ाई की भीषण उथल-पुथल के लिए गांधीजी को ही जिम्मेदार बनाकर ब्रिटिश हुकूमत ने देश-विदेश में सब तरह का विरोधी प्रचार शुरू कर रखा था। गांधीजी ने उसके विरोध में आगा खान महल में [illegible] में २१ दिन के उपवास शुरू किये। जैसे ही इन उपवासों की खबर मुझे 'टिकर' पर मिली वैसे ही मैंने सरकार को पत्र लिखकर गांधीजी से मिलने की अनुमति मांगी। [illegible] सरकार ने अपनी नीति के अनुसार रक्त-सम्बन्धियों और उनमें भी रामदासभाई, देवदासभाई के अलावा दूसरों को मिलने तक की अनुमति नहीं दी। लेकिन गांधीजी इसे कबूल कर नहीं [illegible] सरकार को लिखा

आश्रमवासी और अन्यवासी सभी मेरे सगे हैं। अगर वे मुझसे [illegible] मिल [illegible] तो मैं अपने [illegible] से भी नहीं मिलना है।

[illegible] उपवास [illegible] सरकार को विवश होकर सब [illegible] अनुमति देनी पड़ी।

[illegible] मिलनेवालों में [illegible] उस समय देश के अधिकतर

गांधीजी के

छोटे-बड़े नेता और कांग्रेस के कार्यकर्ता जेलों में बन्द थे। इधर बाहर समूचे देश में एक ही साथ अहिंसक अण्डरग्राउण्ड और तोड़फोड़ आदि की हलचलें चल रही थीं। इस सम्बन्ध में गांधीजी के साथ मेरी जो बातचीत हुई, उसका सार इस प्रकार है :

'कुशल-क्षेम पूछने के बाद बापू ने मुझे अधिक पास बुलाकर बड़ी क्षीण आवाज में कहा :

'इस उपवास के समय में मुझसे मिलने आनेवालों पर बातचीत-सम्बन्धी किसी तरह की पाबन्दी नहीं रहेगी। सरकार ने मेरी यह मांग अब मंजूर कर ली है। इसलिए जो भी कहना हो बेखटके कहो। हमारी इस बातचीत का सार मित्रों को भी सुना सकते हो। सिर्फ अखबारों में देने की मनाही समझो।

मैंने कहा : 'बम्बई में कांग्रेस से भिन्न कोई १ अण्डरग्राउण्ड (भूगर्भ) मण्डलियां काम कर रही हैं और उन्होंने यह एलान भी कर रखा है कि कांग्रेस के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। कांग्रेस ने भी अपने बुलेटिनों में घोषित किया है कि तोड़-फोड़ के हिंसक काम करनेवाले ऐसे मण्डलों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

गांधीजी ने कहा : 'किसीको भी मेरे नाम से कोई हिंसक काम करना ही न चाहिए। आज अहिंसा को माननेवाले चार आदमी भी हाथ ला उधर चार भी हो जायेंगे और एक दिन चालीस करोड़ होंगे।

'आप बात हो सकता है कि हमें यह लड़ाई पांच दस अथवा पच्चीस साल तक भी लड़नी पड़ जाय।

'और रेल आदि पर कब्जा करने का काम तो तीस-तीस सौ आदमियों की मदद से ही किया जा सकता है। और मैं भी यही

से यथोचित नोटिस देने के बाद ही किया जाना चाहिए। उसमें भी जान-माल का नुकसान होता हो तो वह हिंसा ही मानी जायगी इसलिए ऐसे काम खास तौर पर टालने चाहिए।

११ एक बार प्रेस में गांधीजी को थॉम्पसन की 'हाउण्ड ऑफ् हेवन (Hound of Heaven) नामक पुस्तक की जरूरत पड़ी। मेरे पास खबर आयी। बम्बई में कहीं भी मिलती न थी। गृहस्थों के निजी पुस्तकालयों में शायद किसीके पास मिल जाय इस विचार से खोज शुरू की। इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर के मंत्री श्री जयसुखलाल मेहता के पास मिली। मैंने तुरन्त गांधीजी के पास भेज दी। गांधीजी को वह बहुत पसन्द आयी। वे इस काव्य की चर्चा सबसे किया करते थे।

इस काव्य में कवि ने उसे जो ईश्वरीय साक्षात्कार हुआ था उसका और उसके परिणामस्वरूप अपने जीवन में हुए परिवर्तन का वर्णन किया है। इसलिए समझने में कठिन है। राजाजी ने इस पर एक छोटी-सी टीका लिखकर इसके अर्थ को समझना आसान कर दिया है। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो श्री जयसुखलाल भाई ने बाद में राजाजी की इस टीका के साथ उक्त काव्य की एक छोटी आवृत्ति छपवाकर मित्रों में बाँटी थी।

सहज ही जयसुखलालभाई का यह आग्रह रहा कि इस काव्य की जो प्रति गांधीजी को भेजी गयी थी जिसके 'मार्जिन' (हाशिये) पर गांधीजी ने अपने हाथों टिप्पणियां लिखी थीं एक स्मृति के रूप में संग्रहीत रखने के लिए वह उन्हें वापस मिलनी चाहिए। लेकिन जब वह प्रति नहीं मिली तो वे मुझ पर नाराज हुए थे और उनका इस तरह नाराज होना मुनासिब ही था।

गांधीजी के

मैंने भी उसके लिए बहुत पूछताछ की थी। पर अब याद नहीं पड़ता कि आखिर वह मिली भी या नहीं।

१०२. आगा खान-महल के जेल-वास के दिनों में बा, बापू, प्यारेलालजी आदि के लिए आवश्यक चीज-वस्तु भेजने के सिलसिले में सरकार के साथ लम्बा पत्र-व्यवहार करके मैंने अपना अधिकार सिद्ध कर लिया था। गांधीजी अपनी जरूरत की छोटी-मोटी हर चीज मँगवाते थे। बाद में तो यह प्रथा ही पड़ गयी कि दूसरों को भी आगा खान-महल में कोई चीज भेजनी हो तो वे उसे मेरे पास भेज दिया करते थे। माना यह जाता था कि मेरे पास पहुँचाने से सामान आगा खान-महल में पहुँच ही जायगा। सभी प्रेमलीला और स्वामी आनन्द भी सामान भेज सकते थे। क्योंकि आश्रम वासियों में से बहुतों के साथ मेरा निकट का सम्बन्ध था इसलिए इस तरह आगा खान-महल में पहुँचाने के लिए अनेकानेक चीजें मेरे पास आती रहती थीं और मैं उन्हें पहुँचाया करता था।

एक बार कस्तूरबा को इच्छा हुई कि वे ग्रामोफोन पर भजन धारती आदि सुनें। मैंने रेकार्ड भेजे। कस्तूरबा उन्हें अक्सर बजवाया करती थीं। गांधीजी भोजन में 'सूप' लेते थे इसके लिए सिल-बट्टे पर पीसकर रस निकाला जाता था। जब मुझे इसका पता चला तो मैंने बिजली की मिक्सर मशीन भेज दी। प्यारेलालजी ने उसकी बनावट को समझने के लिए उसे खोला पर बाद में वे उसे फिट नहीं कर सके इस कारण कुछ दिनों के बाद वह मेरे पास लौट आयी। मैंने उसे टीक-ठाक करके वापस भेजा। उसके साथ काँच का एक 'जग' था। वह भी टूट गया था। इसलिए उसके बदले चाँदी का बनवाकर भेजा था।

मुखिया एजेण्ट !

अक्सर मेरे द्वारा भेजी गयी चीजों को देखकर कस्तूरबा सन्ताप किया करती

"भला देखो न, यह शान्तिकुमार इतना कुछ करता है, रामदास-देवदास की बराबरी का है, पर इसके नाम के साथ 'गांधी' जुड़ा हुआ नहीं है, इसलिए मैं इसे आशीर्वाद के दो शब्द भी लिख नहीं सकती! यह भी सरकार का जुल्म ही है या कुछ और!"

गांधीजी कहते

'शान्तिकुमार सिन्धिया कम्पनी के एजेण्ट का काम करता है। उसके तो उसे पैसे मिलते हैं। पर हमारा तो यह मुखिया एजेण्ट है! इसमें उसे भाग-दौड़ के अलावा और कोई आमदनी नहीं होती!' फिर कहते, 'लेकिन इसमें तो उसे रस के घूँट पीने को मिलते हैं।'

इस प्रकार कस्तूरबा बराबर परेशान रहा करती थीं। लेकिन उनमें आशा समझदारी बहुत थी, इसलिए एक बार मनुबहन से उनके पिता के नाम एक मार्मिक पत्र लिखवाकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद भेजे थे।

१३ मीराबहन ने आगाखाँ-महल में एक छोटा-सा [illegible] मन्दिर बना लिया था। गांधीजी उसे सबको दिखाया करते थे। कस्तूरबा वहाँ नहाकर पानी देतीं और प्रतिदिन शाम को तुलसी के पास में आसन पर घी का दीया जलातीं। कस्तूरबा का यह तुलसी-वाला गमला आगाखाँ-महल से छूटते समय गांधीजी अपने साथ ले आये थे। पहले वह 'पर्णकुटी' पहुँचा, वहाँ से जुहू आया। और जब गांधीजी सेवाग्राम गये तो अन्त में मुझे सौंपा। कहते मग

गांधीजी के

'तुम्हारे सिवा इसे और कोई नहीं सँभालेगा।

मैंने इस तुलसी के कई कच्चों-बच्चों की सार-सँभाल करके उन्हें जहाँ-तहाँ बाँटा। एक को सेवाग्राम में कस्तूरबावाले घर के आँगन में लगवाया। तुलसी का यह असल गमला बराबर सुरक्षित रहे, इसके लिए आज भी यह पूजा में मेरी दादी-माँ के ठाकुर मन्दिर पर ताँबे के दोहरे गमले के बीच रखा हुआ है और वहाँ रोज शाम को घी का दीया जलता है। ●

१०

कस्तूरबा का स्वर्गवास

अन्तिम बीमारी

१४ जब से आगा खान-महल जेल में कस्तूरबा की बीमारी शुरू हुई तभी से उनके लिए दवा, डॉक्टर और वैद्य आदि की व्यवस्था करने का सारा काम लेडी प्रेमलीला के और मेरे जिम्मे आया। मैं प्रेमलीला बुआ की 'पर्णकुटी' में रहता था और सब प्रकार की व्यवस्था में मदद करता था।

डॉक्टर सुशीला और डॉक्टर गिल्डर तो आगा खान-महल में उनके साथ ही थे। सरकारी डॉक्टर भी थे। जब डॉक्टरों की दवा और उनके उपचार से कोई फायदा नहीं हुआ तो कस्तूरबा ने देसी वैद्य का इलाज करवाने का निश्चय किया। डॉक्टर गिल्डर और सुशीलाबहन का आयुर्वेद पर आस्था नहीं थी। बड़ी आना-कानी के बाद वे राजी हुए।

इस बार भारतवर्ष के प्रसिद्ध वैद्य श्री शिवशर्माजी को बुलवाया गया। उन्होंने बा की तबीयत देखी और उनका इलाज शुरू किया। शर्माजी पर्णकुटी में रहते थे और पूना शहर के किसी वैद्य के घर से प्रतिदिन ताजा औषधियाँ मँगवाकर दवा तैयार करवाते और लाते थे।

प्रायः कस्तूरबा को कष्ट बना रहता, इसलिए शिवशर्माजी का मन भी आराम पा राजी न होता। उनके लिए रात के समय

आगा खान-महल में रहने की अनुमति प्राप्त करने की दृष्टि से श्री देवदासभाई और श्री रामदासभाई ने सरकार से प्रार्थना की अपनी माँग रखी विरोध आदि भी किया बहुत मेहनत की लेकिन अनुमति नहीं मिली सो नहीं ही मिली! इस कारण अक्सर शिवशर्माजी आगा खान-महल के फाटक के बाहर मोटर में ही सो जाया करते थे।

एक बार रात में 'बा' की तबीयत ज्यादा खराब हुई। केसर की कटोरी ले फाटक तक जाकर मोटर में सोए हुए शर्माजी को जगाया और उन्हें अन्दर ले गये। कुछ दिनों के बाद जब यह लगा कि उनकी दवा भी लागू नहीं पड़ रही है तो वे चले गये।

१०५. कस्तूरबा के सबसे बड़े पुत्र हरिलालभाई का इतिहास प्रसिद्ध ही है। आगा खान-महल की अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों में कुछ दिन तक बा के मन में हरिलालभाई से मिलने की उत्कट इच्छा बनी रही। वे रोज रामदासभाई और देवदासभाई से कहती रहतीं। जब ये दोनों बाहर जाते और हमसे मिलते तो मुझसे और स्वामी आनन्द से उनका पता लगाने को कहते। आखिर स्वामी आनन्द ने बम्बई के किसी मोहल्ले में उन्हें खोज निकाला। वे दो दिन आगा खान-महल में बा के पास रहे और उनसे मिले।

१०६ कस्तूरबा की बीमारी गम्भीर होती गयी। मैंने और प्रेमलीला बहन ने उस समय के इन्स्पेक्टर-जनरल कर्नल भण्डारी से जो आगा खान-महल के उच्चाधिकारी थे और रोज वहाँ आया करते थे माँग की कि वे हमें कस्तूरबा से मिलने की मंजूरी दें।

"जब कभी गम्भीर हालत होगी तो देंगे।

"बिलकुल आखिरी घड़ी में जब रोगी बेहोशी की हालत में पहुँच जाय और फिर आप मंजूरी दें तो उससे फायदा क्या ?

इस तरह हमें अन्त तक मिलने ही नहीं दिया। उन दिनों दिल्ली से पूछे बिना आगा खान-महल के पेड़ की पत्ती भी हिल नहीं सकती थी।

१०७ डॉक्टरों ने पेनिसिलिन देने का विचार किया। उस समय पेनिसिलिन नया ही निकला था। अमेरिकन फौजों के सिपाहियों के लिए दिल्ली में रखा जाता था। हवाई जहाज द्वारा मँगवाया गया।

देवदासभाई ने कहा "दें।

गांधीजी को ऐसा रुचा नहीं।

"बा को क्यों व्यर्थ ही कष्ट पहुँचाता है ? आराम करने दे।"

नहीं दिया गया।

शिवरात्रि की शाम को कस्तूरबा ने शरीर छोड़ा।

१०८. मृत्यु हो जाने के बाद प्रेमलीला बुआ को और मुझे अन्दर जाने की अनुमति मिली।

जिस समय हम अन्दर पहुँचे कस्तूरबा को नहलाकर और उन्हें नयी साड़ी-चूड़ी पहनाकर, कपाल पर कुंकुम की बिन्दी लगाकर और फूल-माला पहनाकर सुला रखा था। घी का दीया जल रहा था। बापूजी कोने में बैठे थे और गीता-पाठ चल रहा था। कस्तूरबा ने पहले से ही कह रखा था कि अन्तिम समय में मुझे बापू के हाथ से कते सूत की साड़ी पहनाना। तदनुसार उन्हें वह साड़ी पहनायी गयी थी। प्रेमलीला बुआ ने गंगा-जल और तुलसी की माला तो अपने यहाँ से पहले ही मंगा ली थी।

१०९. दूसरे दिन सबेरे कस्तूरबा का दाह-संस्कार आगा खान-महल के अहाते में उस जगह की बगल में ही किया गया जहाँ महादेवभाई का दाह-संस्कार हुआ था। सुबह सरकार की ओर से लगभग १ व्यक्तियों को अन्दर आने की अनुमति दी गयी थी। सरकारी अधिकारियों ने नगर में इसकी सूचना कर दी थी। इस कारण सर्वश्री कर्वे रैंगलर परांजपे सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी के लोग 'केसरी'-कार्यालय के लोग आदि राजनीति में गांधीजी से भिन्न मत रखनेवाले दलों के लोग बड़ी संख्या म आये थे।

११० चिता की रचना के लिए सरकार की ओर स लकड़ी के अलावा चन्दन घी आदि सामग्री आयी थी। चिता की रचना पूना-वालों ने की। रचना कुछ ऐसी हुई कि जिससे शव जल्दी न जल सके। मुझे इसका काफी अनुभव था। इसलिए मैंने पूनावालों का ध्यान खींचा। किन्तु उन लोगों ने मेरी मानी नहीं। बोले

"यह हमारी पूना-पद्धति है।"

मैं कुछ बोला नहीं।

दस बजे पूना के एक सब ब्राह्मणों के द्वारा दाह-संस्कार हुआ। देवदासभाई ने आग दी। एक बाँस चीरकर उसकी लपच्ची की नली बनायी गयी और मन्त्रोच्चार के साथ उसकी मदद से मुँह पर घी की धार छोड़कर चिता सुलगायी गयी।

बारह बज गये। रामदासभाई की बाट जोही जा रही थी लेकिन वे अभी तक पहुँचे नहीं थे। इधर बा की देह भी चन्दन में घी की आहुति आदि खूब पड़ने पर भी और दिन के दो बज जाने पर भी जल नहीं रही थी। दिल्ली में वहाँ के उच्च सरकारी

अधिकारी फोन पर खबरों की राह देखते बैठे थे। तार-टेलीफोन जारी थे। लेकिन कस्तूरबा की देह जल नहीं रही थी!

गांधीजी एक ओर पेड़ के नीचे कुर्सी पर बैठे हुए थे। सबने कहा 'अब आप अन्दर जाइये।'

'सारा जीवन साथ में बिताया। अब इस समय आग अच्छे के लिए छोड़कर क्या जाऊँ ?'

सब चुप हो गये।

किन्तु देह अभी तक जल नहीं पायी थी!

अन्त में मैंने कहा 'मुझे चार्ज सौंपो।'"

सौंपा गया।

कहा जाता है कि कन्या, खिचड़ी और चिता इन तीन को उलटना और हिलाना नहीं चाहिए। मैंने चिता को सँवारा–ऊँचा नीचा किया। धक्-धक जलने लगी।

गांधीजी बोले "बेशक कुटुम्बी है, फिर भी चिता जलाने का हुनर नहीं जानता। तुमने कहाँ सीख लिया?

"मुझे मेरी दादी-माँ ने शुरू से ही मौत-मसान के कामों में जाने की आदत डाली। सगे-सम्बन्धियों की मौत में मुझे बिना चूके भेज ही देती थीं। श्मशान में आखिरी घड़ी तक बैठा रहना पड़ता है, इसलिए आग को जल्दी जगाना सीख लेना जरूरी हो जाता है। मैंने सीख लिया। अब यही इसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेता रहा, इसलिए इसमें निपुण हो गया हूँ।

तीन बजे मिट्टी राख हो गयी।

उसी समय रामदासभाई पहुँचे!

फिर सब लोगों को जेल से बाहर जाने के लिए कहा गया।

श्री देवदास गांधी।

सती साध्वी का प्रभाव

१११ अगले दिन सिर्फ गांधी-परिवार के लोगों को ही आगा खान-महल में जाने दिया गया। अस्थि-संचय के समय राख में से कस्तूरबा की चार चूड़ियाँ बिना जली ज्यों की त्यों निकलीं! सबको आश्चर्य हुआ। किसीने कहा: चूड़ियाँ 'फायर-प्रूफ' रही होंगी। किन्तु मनुबहन ने उन्हीं चूड़ियों में से जो उनके पास बची थी उन को आग में डालकर देखा तो वे तुरन्त जल गयीं! माना जाता है कि पति-परायणा सती साध्वी और सौभाग्यवती स्त्रियों की चूड़ी-माटी नहीं जलती। ●

११ :

गांधीजी की बीमारी और मुक्ति

मलेरिया

११२. इस प्रकार आगा खान-महल के कारावास में महादेव भाई और कस्तूरबा की मृत्यु हुई। कस्तूरबा की मृत्यु के दो महीने बाद खुद गांधीजी को मलेरिया बुखार आने लगा। शरीर बहुत दुर्बल हो गया और इस दुर्बलता का असर उनकी बोल चाल पर भी दिखाई पड़ने लगा।

११३. डॉ. गिल्डर और डॉ. सुशीला नैयर ये दोनों तो गांधीजी के साथ आगा खान-महल में ही बन्दी थे। जेलों के सर्वाधिकारी डॉ. कर्नल भण्डारी गांधीजी को प्रतिदिन देखते-भालते थे। सर्जन जनरल डॉ. कैंडी सरकार की ओर से उन्हें देखने आते थे। समाचार-पत्रों के लिए गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में निकलने वाली विज्ञप्तियां उनके हस्ताक्षर से निकलती थीं। सारे देश में चिन्ता का वातावरण बन गया था। बाद में गैर-सरकारी डॉक्टरों को भी आने की अनुमति दी गयी थी। इनमें डॉ. दीनशा मेहता मालिश के लिए आते थे। प्रसिद्ध पैथोलाजिस्ट डॉ. कासाभाई नज़र खून और पेशाब की जाँच करते थे। डॉ. विधानचन्द्र राय भी आये थे। डॉ. जीवराज मेहता जेल में थे। वे लगभग गांधीजी के साथ ही जेल से छूटे।

हुक-वर्म

शासन ने सरकारी और अर्धसरकारी तौर पर जो बहुत सारी डॉक्टरी जाँच करवायी उससे पता चला कि गांधीजी को 'मिलिग्नण्ट मलेरिया' हो गया है। इसके कारण सारे देश में और विलायत में भी बड़ी बहस चल पड़ी और अन्त में हुकूमत को उन्हें रिहा कर देने के लिए मजबूर होना पड़ा। (बाद में डॉ. कामाभाई गज्जर को गांधीजी के शरीर में 'हुक-वर्म' नामक जन्तु भी मिले थे।)

गांधीजी की इस बीमारी के दिनों में उनके स्वास्थ्य की जाँच के लिए आनेवाले गैरसरकारी डॉक्टरों का पड़ाव अधिकतर सर्वश्री प्रेमलीला ठाकरसी के 'पर्णकुटी' नामक उस बँगले पर रहता था जो यरवदा-टेकरी पर बना हुआ है। उनकी व्यवस्था आदि के काम में मदद करने के लिए प्रेमलीला बहन मुझे बुला लिया करती थीं। जब डॉ. विधानचन्द्र राय आये तो उन्हें आगा खान-महल से साथ में पहले मैं जलपान के लिए 'पर्णकुटी' ले गया। बुआजी ने नाश्ते में हलुआ और भुजिये (पकौड़ियाँ) बनवाये थे। डॉ. विधानचन्द्र बातें करते जाते थे और एक के बाद एक हलुए की कटोरियाँ खाली करते जाते थे। अगर मैं भूल नहीं रहा हूँ तो मेरा खयाल है कि उस दिन दो-तीन बार हलुआ बनाना पड़ गया था।

११५ ६ मई १९४४ की सुबह ८ बजे आगा खान-महल के कारागार से छूटकर गांधीजी 'पर्णकुटी' पहुँचे थे। गांधीजी के हमेशा के डॉक्टर जीवराज मेहता को भी सम्भवतः उसी दिन यरवदा जेल से छोड़ दिया गया था और वे उसी दिन गांधीजी को देखने 'पर्णकुटी' पहुँचे थे।

११५ चूंकि गांधीजी बीमार थे इसलिए डॉक्टरों ने उन्हें जल्दी से-जल्दी जुहू के समुद्र-तट पर ले जाने का निश्चय किया। चर्चाएँ चली कि उन्हें जुहू में कहाँ रखा जाय। बिड़लाजी का बँगला, जमनालालजी की 'जानकी-कुटीर' और हमारा उनके पुराने निवास-वाला बँगला इन तीनों में से किसी एक का चुनाव करना था। निर्णय करने की जिम्मेदारी डॉ. गिल्डर और डॉ. जीवराज की थी।

शाम को मैं पूना से बम्बई के लिए रवाना हुआ। उस समय गांधीजी ने कहा

'तीन जगहों में से एक का चुनाव करना है। डॉक्टर जो तय करें, सो कबूल कर लेना है। उनके निर्णय को बदलने की कोशिश न हो। वे जहाँ रखें वहीं मुझे पहुँचाओ।'

'वही करूँगा जो डॉक्टर कहेंगे। अपनी जगह में ले जाने का मोह नहीं रखूँगा। मेरी आँखों के सामने एक ही चीज है— आपके स्वास्थ्य की रक्षा हो और आप शीघ्र स्वस्थ हों।'

गांधीजी निश्चिन्त हुए।

बात यह थी कि उन दिनों समूचे देश के अधिकतर कांग्रेसी और गांधीवादी नेता तथा कार्यकर्ता जेलों की दीवारों के अन्दर बन्द थे और वातावरण बहुत ही तंग था।

गांधीजी छूट चुके थे लेकिन वे अमुक स्थान में रहें या न रहें इस सवाल को लेकर आम लोगों में भारी बहस खड़ी हो गयी थी और लोगों को यह पसन्द न था कि गांधीजी अमुक जगह में रहें।

●

१२ :

जुहू-वास (अन्तिम)

जहाँगीरजी का 'चौक'

१२६ डॉक्टरों को लेकर मैं जुहू पहुँचा। सबसे पहले उन्होंने बिड़लाजीवाले मकान देखे। समुद्र-किनारे का उनका मायेवाला मकान किराये पर लगा हुआ था। पीछेवाला खाली था लेकिन उसमें सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर की मंजिल पर जाना पड़ता था और वहाँ से बैठे-बैठे हर वक्त सामने समुद्र दीखता नहीं था।

यदि मैं भूलता न होऊँ, तो उस घर में रसोई-घर से धुएँ के आते रहने की भी कोई दिक्कत थी। 'जानकी-कुटीर' में हाल ही को रंग-रोगन किया गया था, उसकी गंध आ रही थी।

गांधीजी के पुराने निवासवाला हमारा बँगला एक संग्रहालय सा बन गया था। उसमें फर्नीचर और दूसरे साज-सामान का पार नहीं था। सन् १६१ से हम भी वहीं रहने लगे थे। इसलिए वहाँ रहना गांधीजी के लिए असुविधाजनक ही होता।

इन सब कारणों से डॉक्टर परेशान हुए। अन्त में मेरे अहाते में ही श्री जहाँगीर पटेलवाला बाँस और नारियल तथा खजूर के पत्तों से बना 'चौक' (झोंपड़ा) डॉक्टरों ने पसन्द किया और निश्चय हुआ कि गांधीजी को उसीमें टिकाया जाय। जहाँगीरजी ने यह 'चौक' बड़े शौक से बनवाया था और बहुत सुन्दर माना जाता था।

जहांगीरजी पटेल पहले तो गांधीजी के विरोधी थे लेकिन गांधीजी के उपवासों के बाद उनका रुख बहुत बदल गया था और वे उनके प्रशंसक बन गये थे। मैंने उनसे पूछा। वे 'शैक' में बारहों महीने रहते थे। मैंने सुझाया कि अपना 'शैक' वे गांधीजी को रहने के लिए दे दें और उतने समय के लिए मैं उनके पड़ोस का अपना 'शैक' उन्हें रहने को दे दूं। मेरा 'शैक' कुछ ही दूर था। उनके और मेरे 'शैक' के बीच न कोई खास फासला था और न कोई रुकावट थी।

जहांगीरजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। तुरन्त ही उनके 'शैक' में गांधीजी को ठहराने के लिए सब प्रकार की आवश्यक सुविधायें खड़ी की गयीं। ११ मई, '४४ के दिन गांधीजी वहां आये।

११७ पास ही के दूसरे 'शैक' में सरोजिनी देवी रहने लगीं। उन्होंने गांधीजी के चौकीदार का काम करने का जिम्मा उठाया।

कुछ समय के लिए श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित भी उनके साथ आकर रही थीं। प्राकृतिक उपचारवाले डॉ॰ दीनशा मेहता भी आये और जहांगीरजी के साथ रहने लगे। वे रोज गांधीजी की मालिश करते थे। इनके अलावा प्यारेलालजी, कनुभाई और बहनों में डॉ॰ सुशीला, अम्तुस्सलाम, मनु, आभा, लीलावती, मीराबहन आदि गांधीजी की मण्डली में थे। बाकी सब आते-जाते रहते थे।

इस प्रकार सारे देश के कार्यकर्ताओं और नेताओं का प्रवाह जुहू की ओर शुरू हुआ। सरोजिनी देवी कड़ा पहरा देती थीं। उनकी अनुमति के बिना कोई गांधीजी के पास पहुँच नहीं सकता था। सिर्फ मेरी दादी-माँ को खास इजाजत थी। वे ८८ साल की उम्र में भी रोज सुबह-शाम दोनों समय गांधीजी के कुशल-समाचार पूछने के लिए अपने बँगले से जहांगीरजी के 'शैक' तक जाती थीं।

११८ गांधीजी के छूट आने के बाद मेरी दादी-माँ ने उन्हें 'हुक-वर्म' की बीमारी पर अपने अनुभव की एक देसी दवा सुझायी। गांधीजी ने कहा

"दादी-माँ मुझसे बड़ी हैं। मेरी बड़ी बहन की जगह हैं फिर देसी वैदक में कुशल हैं इसलिए उनकी दवा मुझे लेनी चाहिए।

इसके बाद डॉ. सुशीलाबहन ने दादी-माँ से सब कुछ ब्योरेवार पूछ लिया और गांधीजी को अपनी यह राय दी कि दादी-माँ द्वारा सुझायी गयी देसी दवा निर्दोष है। उससे कोई नुकसान नहीं होगा। उसे लेने में हर्ज नहीं। ले सकते हैं।

गांधीजी ने वह दवा ली थी।

उस दवा में केसर, भरास-कपूर और इलायची ये तीन चीजें ही थीं।

अपने पेट में से निकले हुए 'हुक-वर्म' के जन्तुओं को गांधीजी खुर्दबीन से देख रहे हैं ऐसी पोज में उनकी लिया गया उनका एक फोटो बहुत प्रसिद्ध हो चुका है।

११९ जब से गांधीजी रिहा होकर आये तभी से हम सबने उनसे यह आग्रह करना शुरू किया कि वे कस्तूरबा और महादेव भाई के बारे में रोज थोड़ा-थोड़ा लिखवाया करें। गांधीजी ने कहा

'रोज रात को मेरे बिस्तर के सिरहाने नोटबुक रख दिया करो। रोज सुबह उठकर कुछ लिखता रहूँगा।'

हम नोटबुक रखने लगे। रोज सवेरे आतुरतापूर्वक देखते। पर उसमें कुछ लिखा हुआ न मिलता! पूछने पर कहते

"खूब प्रयत्न करता हूँ लेकिन अत्यन्त निकट के होने के कारण कुछ लिख ही नहीं पाता हूँ।"

१२० गांधीजी की रिहाई के कुछ ही दिन पहले बम्बई के डॉक-यार्ड में एक भारी धड़ाका हुआ था। गांधीजी ने धड़ाकेवाली जगह देखने की इच्छा प्रकट की। मैंने पोर्ट ट्रस्ट के अधिकारियों से चर्चा की और उनके साथ बैठकर कार्यक्रम निश्चित किया। बाद में निश्चित समय पर मैं वहाँ गांधीजी को ले गया। यों तो धड़ाका हुए कई दिन बीत चुके थे फिर भी गांधीजी ने जगह-जगह मलबे के और दूसरे सामान के सुलगते ढेर और धुआँ देखा। कहीं-कहीं मुर्दों के सड़ने की बदबू भी आ रही थी।

इस विस्फोट में सिन्धिया का आठ हजार टन का एक स्टीमर उछलकर और उड़कर डॉक पर चढ़ बैठा था। अगर वह न बैठता तो और भी ज्यादा नुकसान होता लेकिन इस स्टीमर ने खुद खत्म होकर धड़ाके का सारा धक्का और झटका अपने ऊपर ले लिया और इस तरह वह 'शॉक-एब्सार्बर' साबित हुआ! जिस दिन यह विस्फोट हुआ मैं बम्बई में नहीं था कराची में था। विस्फोट के कारण बम्बई के हमारे कार्यालय में मेरे और श्री मनसुखलाल मास्टर के कार्यालयवाले कमरों के बीच का 'पार्टीशन' (पट्टी) टूट गया था।

कहा जाता है कि धड़ाकेवाले स्टीमर में सोना भरा हुआ था। उसकी [illegible] उड़कर पास-पड़ोसवाले लोगों के घरों में पड़ी थी। [illegible] हमारे सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के कार्यालय में [illegible] और [illegible] जैसी कोई चीज नहीं [illegible] की एक छत ही उड़कर आ गिरी थी।

११ जिस दिन गांधीजी [illegible] के दस 'ब्लॉक' में [illegible] नियमानुसार [illegible] के समुद्र-तट पर शाम की

गांधीजी के

प्रार्थना होती रही । बेसावा, मन्तोरी पास, सान्ताक्रूज बार, बांदरा आदि सारे उपनगरों से और बम्बई से लोगों के दल-के-दल प्रार्थना के समय गांधीजी के दर्शन करने बिला नागा आते थे। सैकड़ों-हजारों बहनें और बालक सान्ताक्रूज से पैदल आते थे। उनके लिए रास्ते में चार जगहों पर पानी से भरी रांजनें (चौड़े मुँहवाली मिट्टी की पकी हुई कोठियाँ) रखवाकर प्याऊ का प्रबन्ध किया गया था। जब समुद्र में ज्वार की स्थिति होती और पानी ठेठ किनारे की हद तक आ जाता तो लोगों का समुदाय बिलकुल अहाते से सटकर आ बैठता या खड़ा रहता। लोगों की इस भीड़ से बचाने के लिए मैंने गांधीजी की बैठकवाली जगह के चारों ओर तार का एक अहाता खिंचवा दिया था।

गांधीजी को यह पसन्द नहीं आया। बोले

'अभी बस से तो चला ही आ रहा हूँ यहाँ फिर ये तार क्यों लगवाये हैं ?

लेकिन मैंने तार का घेरा हटवाया नहीं।

१२८ शाम की प्रार्थना के समय जहाँगीरजी के 'बँक' से समुद्र-तटवाली हमारे अहाते की बाड़ के अन्दर बनायी गयी इस प्रार्थना-भूमि तक गांधीजी को ले जाने का जिम्मा मैंने अपनी ओर रखा था। 'बँक' से निकलकर अपने बड़े बँगले की उत्तरवाली बगल के रास्ते से हम प्रार्थना-भूमि पर पहुँचते थे। रास्ते में मैं गांधीजी की बराबरी से चलता था और प्रार्थना की बैठकवाले स्थान पर पहुँचकर जब गांधीजी बैठ जाते तो मैं उनके पीछे अदब के साथ खड़ा रहता था। प्रार्थना के समय कभी आँखें बन्द न करता था। लोगों के समुदाय को देखता रहता था। मेरे मन में हमेशा

यह धारणा बनी रहती थी कि प्रार्थना के समय ही कोई उन्हें मार डालेगा।

रात के समय भी गांधीजी वल्लभभाईजी पटेल के 'बैरक' के चारों ओर से खुले बरामदे में ही सोते थे। इस कारण मेरे मन में खटका बना रहता था। जब तक गांधीजी गुप्त रहते तब तक के लिए सरकारी पुलिस भी दिन में सादी पोशाक में सारा समय बैंगले के अहाते के चारों ओर निगरानी किया करती थी। हुकूमत को डर रहता था कि अगर कभी कोई गांधी पर हमला करेगा तो निश्चय ही दुनिया उसके लिए ब्रिटिश सरकार को ही दोषी मानेगी।

१२६. प्रार्थना के बाद गांधीजी हर रोज हरिजन-कोष के लिए पाँच रुपये लेकर लोगों को अपने हस्ताक्षर देते थे और यदि लोग उनके लिए फल वगैरह लाते थे तो गांधीजी उन्हें बालकों में बाँट दिया करते थे। पूना में हमारे बैंगल के पीछे आसपास की जगह पर बाँस नारियल तथा खजूर के पत्तों के कई 'बैरक' (झोंपड़े) बने हुए थे। उनमें से एक में विमको (Wimco) के कारखाने में काम करनेवाला एक अंग्रेज रहता था। जब गांधीजी प्रार्थना पूरी करके लौटते तो रास्ते में उसका 'बैरक' पड़ता था। उसके कोई एक दर्जन लड़कियाँ थीं। उनमें से छह-सात साल की एक लड़की रोज रास्ते की बाजू में खड़ी रहती और वापस लौटते हुए गांधीजी को बड़ी उत्सुकता से देखती रहती। सामने न आती। एक दिन मैं उसे गांधीजी के पास ले गया। गांधीजी ने उसे फल दिये। उस दिन से लड़की का डर भाग गया और वह रोज सामने आकर फल लेने लगी।

एक दिन लड़की दीखी नहीं। गांधीजी को चिन्ता हुई। क्यों नहीं आयी? क्या बीमार पड़ गयी? मुझे पता लगाने भेजा। उसके पिता ने कहा

"इसको हमीने रोका है। रोज-रोज गांधीजी को परेशान करती होगी।

"नहीं नहीं। बिलकुल परेशान नहीं करती। उल्टे गांधीजी इसके बारे में पूछ-पूछकर हमें परेशान करते हैं।"

वे सब हँस पड़े और लड़की को भेज दिया। फिर तो जब तक गांधीजी रहे, उन्होंने उसे रोज आने दिया। मैंने गांधीजी के साथ उसका एक फोटो भी खींचा था और उसके पिता को दिया था। सारा परिवार खुश-खुश हो गया। पिता ने कहा

"आपने हमारे समूचे परिवार को खुशी बना लिया है। यह फोटो मैं सँभालकर रखूँगा। हमारे परिवार में यह एक बहुमूल्य विरासत के रूप में सुरक्षित रहेगा।

१२४ प्रार्थना के बाद गांधीजी रोज नारियल का पानी पीते थे। मैंने उनसे कहा था कि पानी गिलास में लेकर पीने से उसका स्वाद बदल जाता है, इसलिए वे सीधे नारियल को ही मुँह लगाकर पी लेते थे। इस तरह गांधीजी को नारियल का पानी पीते देखकर बच्चों को बड़ा मजा आता था।

कुछ दिनों के बाद मैंने पीने के लिए नलीदार सींकें देनी शुरू कीं।

१२५. नारियल का पानी पीने के बाद वे समुद्र-किनारे घूमने निकल पड़ते। वैसे हमारा अहाता बहुत बड़ा था लेकिन गांधीजी को वहाँ घूमने में मजा न आता था। समुद्र किनारे घूमने के बारे

मैं शुरू-शुरू में मुझे यह आशंका बनी रहती थी कि लोगों की भीड़ उनका पीछा करेगी और उन्हें परेशान करेगी। लेकिन गांधीजी नहीं माने। लोगों ने भी बहुत ही बात मान ली और अन्त तक पूरी मर्यादा का पालन किया। प्रार्थना समाप्त होते ही सब बिखर जाते। कोई पीछे न आता। सबसे ठेठ समुद्र की लहरों तक पहुँचकर पानी में छप-छप करते हुए गांधीजी के साथ हम सब चलते। हमारे पीछे कनुभाई कुर्सी लिये हुए चलते रहते। जहाँ इच्छा होती वहाँ तलुओं तक पहुँचनेवाले पानी में कुर्सी रखवाकर गांधीजी उस पर बैठा करते। एक दिन मैंने कहा

'आप तो किंग कैन्यूट के समान लग रहे हैं। वहीं उसकी तरह समुद्र की इन लहरों को यह हुक्म न दीजिये कि वे पैरों तक न आयें!'

नहीं, उल्टे मैं तो उनसे कहता हूँ कि आओ, खूब आओ!

१२३ एक बार एक बहन आयी और उसने गांधीजी के पैरों पर अपना सिर रख दिया। गांधीजी बोले

इसी तरह चौकीदारी करते हो?
काल-घटी को कैसे रोका जाय?

समुद्र किनारे टहलते समय बालू पर गांधीजी के पैरों की जो छाप पड़ती थी उस बचाव के लिए मैं बहुत मेहनत करता लेकिन मौजी लहरों में उन्हें उन पद-चिह्नों को कैसे बचाया जाय?

एक बार मैंने कहा, 'पहले हाथ-पैरों को कुमकुम में डुबोकर दीवार पर या कागज पर उनकी छाप लगवायी जाती थी। आप ऐसा क्यों नहीं करते? हाथ की रेखाओं को देखनेवाले पामिस्टों (सामुद्रिक) के लिए यह बहुत उपयोगी होगी।'

 गांधीजी के

"हाथ की छाप कागज में दे दूँ लेकिन मैं पामिस्ट्री में विश्वास नहीं करता। इसलिए नहीं देता।

"तो पैर की दीजिये।

"वह भी नहीं होगा। लोग बाद में उसकी पूजा कराने लगेंगे।

फिर बोले "हरिजनों के लिए चार मास रुपये दो तो एक छाप दूँ।

मैंने कहा "जी नहीं! इतने बड़े सौदे की गुन्जाइश नहीं!

१२७ हमारे परिवार में मेरे पितामह के समय से ज्योतिष का शौक चला आ रहा था। एक बार मैंने गांधीजी से पूछा

'आपकी जन्म-कुण्डली किसके पास मिलेगी? मुझे जरूरत है।"

थी तो नहीं। सम्भवतः श्यामलदास (गांधी) के पास होनी चाहिए क्योंकि उनके पिता लक्ष्मीदास मेरे बड़े भाई थे। पिताजी की मृत्यु के बाद वे मेरे अभिभावक-तुल्य ही थे।

: ७ :

१२८ एक बार स्वर्गीय बैरिस्टर जयकर पूना में गांधीजी से मिलने आये। वे चर्चा करके गये उसके १-२ दिन के अन्दर ही गांधीजी ने उन्हें एक पत्र लिखा और उसे उनके पास पहुँचाने का काम मुझे सौंपा। मैंने पत्र हाथों-हाथ पहुँचा दिया। बाद में वह मराठी विविध वृत्त में उलट-पलटकर और तोड़-मरोड़कर छपा। गांधीजी ने जयकर का ध्यान खींचा। जयकर ने इनकार किया और लिखा कि पत्र उनके यहाँ से अथवा उनकी तरफ से नहीं छपा है। गांधीजी ने मुझसे पूछा

"खुद मैंने उनके बँगले पर पहुँचकर उन्हें दिया था। वे दुमंजिले पर थे। उन्होंने मुझे ऊपर बुलाया। इस तरह किसी अन्य आदमी के हाथ में न देकर मैंने खुद उनसे स्वयं मिलकर उन्हीं के हाथ में दिया था।

१२९. जिन दिनों गांधीजी आगा खान-महलवाले जेल में थे उन्हीं दिनों प्यारेलालजी के छोटे भाई मोहनलाल की पत्नी शकुन्तलाबहन अपनी दस दिन की एक बच्ची को छोड़कर ही गुजर गयी थी। जिस तरह हरिलालभाई की मनु को कस्तूरबा ने पाला था उसी तरह इस 'नन्दिनी' को भी इसकी दादी-माँ ने पाल-पोसकर बड़ा किया था। माताजी सेवाग्राम में रहती थीं और उन दिनों सास-बेद धाम की इस बच्ची को खेलाने के लिए गांधीजी सहित समूचा सेवाग्राम उसे लिये-लिये फिरता था। उसे प्यार करते हुए गांधीजी का एक फोटो उनके अत्यन्त प्रसिद्ध फोटो में से एक है।

आगा खान-जेल में कस्तूरबा और गांधीजी के साथ प्यारेलाल जी की बहन डॉ. सुशीला नैयर और मनुबहन गांधी भी थीं। जब वे लोग छूटे उस समय नन्दिनी की उम्र मुनगुने से बेसन की थी।

जेल से छूटने के बाद अपने पिता के पास करांची जाते समय मनु ने नन्दिनी के लिए 'फ्रॉक' और टोपी के बदले चाँदी का एक झुनझुना और दूध पीने का एक छोटा प्याला सुशीलाबहन के पास पहुँचाने के लिए मुझे सौंपा। मैंने दोनों चीजें सुशीलाबहन को दीं। उन्होंने गांधीजी को दिखायीं। गांधीजी दुःखी हुए। उन्होंने मनु के नाम उलाहना-भरा पत्र लिखा और पत्र के साथ उक्त दोनों चीजें गांधीजी ने मुझे वापस भेजीं और ताकीद के साथ कहा कि स्टीमर

गांधीजी के

के रवाना होने से पहले मैं उन्हें मनु के पास पहुँचा दूं। मुझे वे स्टीमर पर समय रहते पहुँचानी पड़ीं।

कई साल पहले जब मेरे पिताजी जीवित थे तो वे एक बार विलायत से कुछ खिलौने लाये थे। महादेवभाई का पुत्र नारायण उन दिनों बहुत छोटा था। इस कारण उसके खेलने के लिए मैंने वे खिलौने महादेवभाई को भेज दिये, लेकिन उनके बारे में उनकी ओर से कोई जवाब नहीं मिला। मैंने पत्र लिखकर पूछा 'खिलौने पसन्द आये?'

फिर भी जवाब नहीं मिला! कुछ समय के बाद जब मैं गांधीजी से मिलने गया तो उनका एक खासा गम्भीर भाषण सुनना पड़ा 'इस तरह के खिलौने देना बालकों को बिगाड़ना है' आदि।

लेकिन वे तो मोण्टीसोरी के ढंग के हैं।

बात गांधीजी के गले उतरी ही नहीं।

१२० आगा खान-महल के कारावास के दिनों में वाइसराय के साथ गांधीजी का जो लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ था, छूट पहुँचते ही गांधीजी उसे तुरन्त छपाना चाहते थे। किसी छापाखानेवाले ने उसे छापने की हिम्मत नहीं दिखायी। आखिर गांधीजी ने सारा पत्र-व्यवहार साइक्लोस्टाइल करवाकर उसकी प्रतियाँ तैयार करवाने का काम मुझे और स्वामी आनन्द को सौंपा। हम दोनों ने मिलकर सैकड़ों पृष्ठों के उस सारे पत्र-व्यवहार को सावधानी के साथ साइक्लो-स्टाइल करवाया और उसकी जिल्द बँधवाकर प्रतियाँ तैयार करवायीं।

इस पत्र-व्यवहार में एक परिशिष्ट अमुक पत्र के बाद सुलग्न जाना था, उसे बीच में से हटाकर मेरे सुझाव पर उसके अन्त में

लगा दिया था। गांधीजी ने उसे देखा और हम दोनों को बुलाकर खूब आड़े हाथों लिया। स्वामी से बोले

'एक बार पहले भी तुमने ऐसा ही गड़बड़घोटाला किया था !'

बाद में सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार की इन साइक्लोस्टाइल प्रतियों को गांधीजी की सूचना के अनुसार हमने सब मॉडरेटों को और दूसरे सार्वजनिक नेताओं को सारे देश में भेजी थीं। इसके बाद भी लम्बे समय तक भाई देवदास और प्यारेलालजी बापू के हवाले से मुझे लिखते रहे कि साइक्लोस्टाइल पत्र-व्यवहार की प्रतियां अमुक-अमुक को भेजो। मैं भेजता रहा। इस तरह मैं गांधीजी और वाइसराय के बीच हुए इस ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार का 'डिस्ट्रिब्यूटर' (वितरण-कर्ता) बना था।

बाद में यह सारा पत्र-व्यवहार नवजीवन प्रकाशन ने पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया था।

१३१ मैं रोज सवेरे जुहू में गांधीजी से संबंध रखनेवाला सारा काम-काज करके और सारी व्यवस्था जमाकर अपने ऑफिस के काम से बम्बई चला जाता और शाम को प्रार्थना के समय से पहले लौट आता। एक दिन लौटकर देखा कि बिजली का तार लाने के लिए हमारे अहाते में बड़े-बड़े खम्भे खड़े किये जा रहे हैं। मैंने पूछताछ की

यह सब क्या हो रहा है ?

गांधीजी को एक फिल्म दिखानी है। उसके लिए बिजली का जोरदार करण्ट जरूरी है, उसीके लिए खम्भे गाड़ रहे हैं। बॉम्बे म्युनिसिपैलिटी की स्वीकृति प्राप्त की है। आज ही शाम को गांधीजी फिल्म देखेंगे।

प्रबन्ध किन्होंने किया है ? क्या गांधीजी ने देखने की स्वीकृति दी है ?

'जी हाँ ! उन्होंने स्वीकृति दी है।

शाम को फिल्म दिखायी गयी। नाम था Mission to Moscow।

फिल्म में कम कपड़े पहनी हुई लड़कियों के नाच और ऐसी ही चीजें थीं। गांधीजी अकुला उठे। उस दिन उनका मौन था। चुपचाप उठकर चले गये। दूसरे दिन सवेरे चिट्ठी में लिखा

'मुझे ऐसे नंगे नाच दिखाने की बात कैसे सूझी ?

मैं तो दंग ही रह गया। मुझे कोई पता था ही नहीं। बाद में मालूम हुआ कि एक पारसी फोटोग्राफर ने चोपसी करके मीरा बहन को पटा लिया था।

सबको बहुत खेद हुआ।

१३२. इस घटना के बाद भाई मनु देसाई ने आग्रह किया कि गांधीजी को एक देशी फिल्म दिखानी चाहिए। चूंकि 'रामराज्य' नामक फिल्म की शान-शौकत का नाम उन्होंने लिया था, इसलिए उसका नाम सुझाया गया। मैंने उसे देखा था। मुझे विश्वास था कि वह गांधीजी को नहीं जँचेगी। फिर भी सबका आग्रह रहा कि गांधीजी से पूछ ही लिया जाय। हमने पूछा। बोले

'एक विलायती फिल्म देखने की गलती कर चुका हूँ, इसलिए अब दूसरी करनी ही पड़ेगी न ?

काफी हुज्जत के बाद मनुभाई के आग्रह से 'रामराज्य' फिल्म देखी। उसमें हास्यरस ही अधिक था। गांधीजी को बिलकुल नहीं जँची।

१५३ जहांगीरजी भी गांधीजी के भक्त बन गये । सारा समय गांधीजी के साथ में रहने लगे । शाम को समुद्र-किनारे प्रार्थना होती। उसके बाद जब गांधीजी हवाखोरी से लौटकर सोने को जाते तो उनकी मच्छरदानी को व्यवस्थित करने के बाद ही वे गुमाजी (मर्गामनी पत्नी) के साथ रात का भोजन करने जाते । दोनों सामाहारी थे । इसलिए खूब पटती थी ।

मच्छर बापू को सताकर ध्यान में जहांगीरजी को डर हो जाती थी और बगाजी को बैठे-बैठे रात खोहनी पड़ती थी । गुमाजी चिढ़ जाती । कहती

"देखा इस भगत का रंग ! अगर बापू कह दें तो यह तो पारसी मिट मेहमान का भी तैयार हो जाय !"

इसके बाद सचमुच ही जहांगीरजी गांधीजी के भक्त बन गये । पक्के खादीधारी बने । जब गांधीजी ने उरुलीकांचन में प्राकृतिक उपचार के केन्द्र की स्थापना की तो उसके अध्यक्ष भी बने । चेर साहब ने पाना जिले के आदिवासियों के लिए जो काम शुरू किया उसकी भार उसे ही दूसरे कई कामों की जिम्मेवारी अपने सिर ली । उम्र के आज तक सभाल हुए हैं और सारे काम निष्ठापूर्वक करते हैं ।

१५४ यह म जहांगीरजी के घर उनके रेफ्रीजरेटर में बापू के लिए अंगूर और फल रखे जाते थे । एक दिन मीराबहन ने रेफ्रीजरेटर खोलकर देखा तो अन्दर अंगूर की बगल में मांस की एक तश्तरी रखी मिली । कुछ [illegible] (शराब) भी थी । मीराबहन जहांगीरजी पर नाराज हुईं । बोलीं

"आज बापू का बिना अंगूर के रहना पड़ेगा ।"

गांधीजी के

जहाँगीरजी भी बहुत दुःखी हुए। गांधीजी के पास पहुँचकर माफी माँगने लगे।

'मुझे बहुत खेद है कि आज आपको अंगूर के बिना नाश्ता करना पड़ेगा। मुझे मालूम नहीं था कि मेरा नौकर हमारे कुत्तों के लिए लाया खानसामा मांस रेफ्रीजरेटर में रखता था। मीराबहन ने मुझे रेफ्रीजरेटर खोलकर उसमें रखा हुआ मांस दिखाया। जो कुछ हुआ है उसके लिए मुझे बहुत खेद है।'

गांधीजी ने मीराबहन को बुलवाया और कहा

'इसमें क्या हर्ज है ? मैं अंगूर लूँगा। अंगूर मांस की तश्तरी में तो रखे नहीं थे न ?'

मीराबहन को अपने पोथी-पण्डित होने का अर्थ तब सिरे से ध्यान में आया !

१२५ जुहू में १८ दिन रहने के बाद गांधीजी १२ जून १९४४ के दिन पूना गये। विदाई के समय जहाँगीरजी ने और मैंने गांधीजी जितने दिन वे हमारे घर जुहू में रहे थे उन दिनों के प्रतिदिन के १) के हिसाब से अपनी एक छोटी भेंट उन्हें दी। गांधीजी हँसे। कहने लगे

'मुझे इसका पता होता तो मैं अधिक ठहरता।'

'आप दुबारा फिर जरूर आइये। जब भी आयेंगे तब का हम दोनों की ओर का यह सौदा आज ही से पक्का हुआ समझिये।'

१२६ इस आशा से कि गांधीजी फिर जुहू आयेंगे और अपने ही घर ठहरेंगे बाद में जहाँगीरजी ने अपनी 'नीड़' वाली वह जगह मुझसे खरीद ली और बहुत बारीकी के साथ गांधीजी की आवश्यकताओं तथा अनुकूलताओं का अध्ययन करके उनकी सब सुविधाओं

की व्यवस्थावाला एक सुन्दर सुरुचिपूर्ण दुमंजला बंगला आस-पीछे की जमीन के साथ उस 'तीर्थ' जैसे स्थान पर बनवाया। किन्तु दुर्भाग्यवश इसके बाद गांधीजी अपने शेष जीवन-काल के चार वर्षों में फिर कभी जुहू आकर रह नहीं सके। यों जहांगीरजी के मन की मन ही में रह गयी!

बम्बई में जहांगीरजी के कई बंगले और घर थे लेकिन वे खुद जुहू रहना पसन्द करते थे। मुझसे कहा करते

"मुझे निकालना मत। यहीं मरने देना।

बाद में पक्का मकान बनवा लेने पर भी अपनी स्नेहशालिनी पत्नी के साथ वे यहीं रहते रहे। उनकी स्नेहिल पत्नी भी बहुत भली थी। बड़ी पढ़ती थी। जहांगीरजी के साथ आदिवासियों की बस्तीवाले लोगों की सेवा किया करती थीं। लेकिन जुहू का जलवायु उनके लिए अनुकूल न रहा इस कारण अन्त में जहांगीरजी को वापस बम्बई रहने जाना पड़ा। ●

१३

कस्तूरबा का कोष और समाधियाँ

स्त्रियों और बालकों के लाभ के लिए

इकट्ठा करने का काम बहुत ही कठिन था। दूसरी तरफ इतना बड़ा कोष जमा करने का काम सरकार के लिए चुनौती-रूप भी था। प्रान्तीय सरकार के भीषण दमन के बावजूद इस कोष के माध्यम से यह सिद्ध किया जा सकता था कि सारा देश गांधीजी के ही साथ है।

इसलिए [illegible] माना कि यह काम उठा लेना चाहिए।

इस प्रकार सर्वसम्मति से हमने एक कोष इकट्ठा करने का निश्चय किया। यह भी तय किया गया कि कोष की रकम [illegible] पर गांधीजी को भेंट की जाए। कोष के उद्देश्य और कार्य-क्रम का ब्यौरा निश्चित करने का काम गांधीजी पर छोड़ा गया। इसके अनुसार वैकुण्ठभाई और स्वामी आनन्द की सही [illegible] बड़ी संख्या में सार्वजनिक व्यक्तियों, श्रीमन्तों, उद्योग-पतियों और कार्यकर्ताओं के नाम से कोष के लिए एक अपील प्रकाशित की गई। बम्बई के हमारे सिन्धिया-हाउस में उसका मुख्य कार्यालय खोला गया और सारे देश से रुपए इकट्ठा करने का काम शुरू हुआ।

१३/ उस समय तक पाकिस्तान बना नहीं था, फिर भी सिन्ध [illegible] में प्रभाव हो चला था। सिन्ध-सरकार के एक बड़े अधिकारी के साथ मेरा अच्छा परिचय था। वैसे भी करांची में काम के लिए अनेक सम्भावनाएं थीं। इस कारण भाई देवदास गांधी ने आग्रह किया कि मैं करांची जाऊं। मैं गया। वहां के नेताओं से [illegible] [illegible] [illegible] में प्रमुख बनकर काम [illegible] स्थानीय [illegible] के [illegible] में [illegible] लाख अधिक भी [illegible]

मुझे सहसा उस परिचित उच्चाधिकारी की याद हो आयी। मैंने कहा — वह भी तो सरकारी अधिकारी हैं। लेकिन इस कस्तूरबा कोष में इसमें कौन-सी राजनीति है? यह तो एक निपट सामाजिक ढंग का काम है। मैं क्या जाऊँ और अपील पर उनके हस्ताक्षर ले आऊँ।

जमनालालजी — 'जाओ, जाओ' इसमें कोई हर्ज नहीं।

फिर भी शाम के समय मैं उनके बँगले पर उनसे मिलने चला ही गया। दूसरे दिन सवेरे मैंने जमनालालजी मेहता को अपील पर उनके हस्ताक्षर दिखाये।

जमनालालजी को अचम्भा हुआ।

कब ले आये?

कल ही शाम को। उनके बँगले गया था।

शाम के वक्त उनके घर जाया भी जाता है? उस समय तो वे नशे में चूर रहते हैं। मेरी मानो तो अभी फोन करके पूछ लो और पुष्टि कर लो। नहीं तो वे बदल जायेंगे।

मैंने उनकी सलाह मानी और पूछकर देखा। बदले उन्हें याद था गत दिन की स्वागत में नहीं कर दी थी। मुझे याद कीजिये। Undrai कलना (याद मत) है।

११९ इसके कुछ ही समय बाद गांधीजी जेल से रिहा हुए और बाद में लगभग २५ लाख से ऊपर की राशि एकत्र कर कस्तूरबा ट्रस्ट के कामकाज में लगी। इसकी बड़ी रकम इकट्ठा करके देश की जनता ने सिद्ध कर दिया कि सरकार और सरकारी तंत्र के बीच इस देश की जनता गांधीजी के ही साथ रही थी।

२ अक्तूबर, १९४४ के दिन कोष की यह रकम श्रीमती सरोजिनी देवी के हाथों सेवाग्राम में गांधीजी को समर्पित की गयी।

उस दिन सभा में बुआजी (सरोजिनी देवी) ने मजाक में कहा

"मैं इस थैली को लेकर भाग जाऊँ तो ?

सुनकर सब हँस पड़े।

१४० इस समारोह के अवसर का एक और संस्मरण मेरे स्मृति पट पर अंकित रह गया है। वह यों है

स्वर्गीय जमनालालजी की मँझली पुत्री मदालसाबहन ने विनोबाजी के निकट रहकर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की है। वे बड़ी कला-प्रेमी और उत्साही हैं। जिस दिन थैली-समर्पण का कार्यक्रम रखा गया था उस दिन शाम को मण्डप में सुन्दर 'रांगोली' करवाकर बीच में बा का बड़ा छाया-चित्र रखवाकर और उसकी अगरबत्तियों की सुगन्ध के बीच दीपमालाएँ प्रकट करके मण्डप को जगमगा देने का एक कार्यक्रम मदालसाबहन ने सोचा था। जब गांधीजी ने ये सारी तैयारियाँ देखीं तो उन्होंने मदालसाबहन को एक छोटा भाषण सुनाया

"गाँवों में हजारों-लाखों लोगों को तेल खाने तक को नहीं मिलता और तुम यहाँ साज-शृंगार पर इतना तेल जलाओगी! इसे क्या कहा जाय ?

मिट्टी के दीये और दीपमालाएँ जल नहीं पायीं !

१४१ इस समारोह में गांधीजी ने कस्तूरबा-ट्रस्ट के उद्देश्यों का विचार करके कोष को गाँवों की स्त्रियों और बच्चों के हित में खर्च करने का निर्णय किया। ट्रस्टी-मण्डल में पूँजीपतियों की संख्या

अधिक थी अतएव उसमें उतनी ही संख्या में गांधीवादी कार्यकर्ता भाई-बहनों को बढ़ाकर इस सम्बन्ध में कार्यकर्ताओं के अन्दर जो असन्तोष था उसे दूर किया और ट्रस्ट की स्थावर सम्पत्ति की रक्षा के लिए पाँच हार्डिंग ट्रस्टी नियुक्त करके उनका मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी स्वयं उठा ली।

इस प्रकार ट्रस्टी-मण्डल की पुनर्रचना करके और पूँजीपतियों के साथ कार्यकर्ता सेवक-सेविकाओं का उतना ही बड़ा समुदाय रखकर गांधीजी ने ट्रस्ट के संचालन के लिए जो संतुलन खड़ा किया था उससे उन्हें बहुत सन्तोष हुआ। बाद में वे अक्सर कहा करते थे: "यह बहुत सुन्दर मेल हुआ है इसमें पूँजी और संचालन दोनों के हाथ-पाँव जैसे कार्यकर्ता इकट्ठा बैठकर रोज-रोज के व्यवस्था-सम्बन्धी कामों को निपटाया करेंगे। आज तक ऐसी व्यवस्था और कहीं शायद ही हुई हो।

मैं इस ट्रस्ट की कार्यकारिणी में शुरू से ही बराबर चुना जाता रहा हूँ और ट्रस्ट की साधारण सभाओं में सबसे अधिक नियमित रूप से उपस्थित रहनेवालों में शुरू से शायद एक मैं हूँ।

१५२ कस्तूरबा-ट्रस्ट का मुख्य कार्यालय लम्बे समय तक सिन्धिया-हाउस में रहा। ठक्करबापा उसके मुख्य मंत्री थे और मृदुला-बहन साराभाई सहायक मंत्री थीं। दोनों की कार्य-पद्धति में काफी फर्क था। मैंने नियुक्ति के समय ही गांधीजी से कहा था :

'यह सब काशी कैसे पहुँचेगा ?

'ठक्करबापा तुम्हारे ऊपर की मन्जिल पर बैठते हैं और मृदुला तल-घर में है।

"मृदुलाबहन इतनी जोरावर हैं कि तल-घर में बैठकर वे पूरी नौव को हिला सकती हैं। यदि ऐसा हुआ तो समूचा सिन्धिया

हाउस ही धर्मशाला हो जायगा ! या हाथियों के साथ पड़ का सर्वनाश !

गांधीजी हँसे। कहने लगे "लेकिन तुम बीच की मंजिल में हो इसलिए सब कुछ कुशल ही रहेगा।

१५३ मैंने गांधीजी को एक बार सिन्धिया-हाउस देखने के लिए आने का निमंत्रण तो कभी पहले से दे रखा था। उन्होंने लिखा था 'कभी बम्बई आऊँ तो मुझे ले चलना।' लेकिन वैसा अवसर मुझे मिला नहीं। अब चूँकि कस्तूरबा-ट्रस्ट का कार्यालय सिन्धिया-हाउस में था इसलिए हमने निश्चय किया कि ट्रस्ट की एक बैठक वहीं रखी जाय। बैठक के दिन मैं गांधीजी को लिवाने बिड़ला-हाउस पहुँचा। मैंने तो सारा कार्यक्रम खानगी ही रखा था। फिर भी गांधीजी के आगमन के समय सिन्धिया-हाउस के सामने आसपास के कार्यालयों के लोगों की भारी भीड़ इकट्ठा हो ही गयी। उन्होंने मुझे बताया था कि ऐसा होगा। बैठकवाला बोर्ड-रूम वातानुकूलित (एयरकण्डीशण्ड) था। गांधीजी को ठंड लगने लगी तो उन्होंने शाल ओढ़ ली। बैठक के बाद ऊपर की मंजिल पर कस्तूरबा-ट्रस्ट का कार्यालय देखने गये। लौटकर बापा से कहने लगे 'कस्तूरबा-ट्रस्ट का कार्यालय ऐसे महल में शोभता नहीं। खाली करो और सस्ता स्थान ले जाओ।' बापा को सिन्धिया-हाउस वाली जगह अनुकूल पड़ती थी पर उन्हें जाना पड़ा।

१५४ अपनी क्षमता की रीति के अनुसार बापा ट्रस्ट का पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में करते थे। गांधीजी को यह अच्छा न लगता था किन्तु जब तक बापा रहे यह प्रथा चली ही रही। उसके बाद दिन पर दिन अंग्रेजी का व्यवहार घटता गया यद्यपि आज भी थोड़ा

बहुत तो चलना ही है क्योंकि श्री टाटा और श्री अम्बालाल को हिन्दी नहीं आती और मुझे भी अच्छी नहीं आती। इसलिए ट्रस्ट की कार्यवाही आदि समझने में थोड़ी कठिनाई होती थी। अतएव दोनों भाषाओं में काम-काज चलाना पड़ता है।

जानकीदेवी बजाज अंग्रेजी के बिलकुल विरुद्ध हैं इसलिए वे समय-समय पर अंग्रेजी का उपयोग बन्द करने की सूचना देती रहती हैं।

१४५. ट्रस्ट के पहले अध्यक्ष गांधीजी रहे। उनके बाद सरदार पटेल फिर ठक्करबापा (काम सँभालने के पहले ही स्वर्गवासी हुए) फिर दादा मावलंकर और अब प्रेमलीला बुआ हैं जो महिला विद्यापीठ पूना की उप-कुलपति हैं।

कोष की रकम गांधीजी को सौंपने के बाद भी ठक्करबापा मुख्य मंत्री रहे और बाद में सुशीला पै रहीं। उनके बाद आन्ध्र प्रदेश की राजलक्ष्मीबहन मंत्री बनीं जो अभी काम कर रही हैं। श्री श्यामलाल ठक्करबापा के विश्वासपात्र सहायक रहे। बापा ने शुरू से ही उन्हें हरिजन-सेवक-संघ से हटाकर कस्तूरबा-ट्रस्ट में ले लिया था। उन्हें आरम्भ में अस्थायी रूप से लिया था किन्तु वे अभी तक हैं। सब ट्रस्टियों के विशेषकर हरिजन ट्रस्टियों के समान रूप से विश्वासपात्र होने के कारण सब निश्चिन्त हैं।

१४६. लड़ाई के खतम होते ही सब नेता जेल से बाहर आए। उनके बाद मैंने और प्रेमलीला बुआ ने गांधीजी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि आगा खान-महल में कस्तूरबा की और महादेवभाई की जो समाधियाँ हैं उन्हें पक्का बना दिया जाय। और कहा कि आपकी स्वीकृति हो तो हमें अनुमति दीजिये जिससे हम इस सम्बन्ध की आवश्यक कार्यवाही करें। समाधियों का सारा खर्च उठा लेने का

गांधीजी ने नामदार आगा खान की बात मान ली। माननीय आगा खान ने समाधियों के लिए काले संगमरमर का उपयोग करने की इच्छा प्रकट की और स्वीकृति मांगी।

गांधीजी ने कहा "ठीक है!"

इस प्रकार कस्तूरबा की और महादेवभाई की दोनों समाधियां काले संगमरमर की बनीं।

१८७ समाधियों पर लिखे जानेवाले लेख के सिलसिले में भी बड़ी लम्बी चर्चा चली। इस विषय का सारा पत्र-व्यवहार मैंने गांधीजी को दिखाया और उन्होंने जो थोड़े सुधार किये उनके साथ लेख तैयार करवाये।

प्रेमलीला बहन ने समाधियों के आसपास एक छोटा-सा बगीचा बनवाने और दीया-बत्ती की व्यवस्था करवाने का काम अपने जिम्मे लिया। ये दोनों काम आज भी उनकी देखरेख में उन्हींकी ओर से हो रहे हैं।

एक सिर दर्द और बचा था। इन समाधियों के पड़ोस में आगा खान-महल का स्टोर-घर और पाखाने थे। दर्शन के लिए आने वाले सब लोगों को यह चीज खटकती थी, इसलिए इन्हें हटाने के बारे में कोशिशें की गयीं। अन्त में सरकार ने समाधियों के आस पास की थोड़ी जमीन एक्वायर की। (अब सोसायटी ने महल का अधिक हिस्सा एक्वायर करा लिया है।) इसके लिए एक मेमोरियल सोसायटी स्थापित करनी पड़ी जिसका सन् १९५२ से मैं एक ट्रस्टी हूं।

इन समाधियों की सुरक्षा और मरम्मत आदि का खर्च गांधी-निधि की तरफ से होता था। कुछ समय के बाद निधिवालों

ने कस्तूरबा-ट्रस्ट के सामने प्रस्ताव रखा कि या तो कस्तूरबा-ट्रस्ट पुस्तकालय आदि के लिए दस लाख रुपये निकाले और निधि उसकी जिम्मेदारी सँभाले अथवा निधि कस्तूरबा-ट्रस्ट को उतनी रकम दे और कस्तूरबा-ट्रस्ट समाधियों को सँभाले। इस सिलसिले में कुछ पत्र-व्यवहार चलता रहा। अन्त में कस्तूरबा-ट्रस्ट ने यह काम अपने जिम्मे लिया।

इन समाधियों के बारे में लोगों की एक माँग यह भी थी कि समाधियाँ धूप में हैं इसलिए उन पर छतरी गुम्बद अथवा ऐसी ही कोई चीज बननी चाहिए। इस लोक-भावना का सम्मान करके बम्बई-सरकार ने चारों तरफ चार खम्भे खड़े करवाये। मैंने बम्बई के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री खेरसाहब का और बाद में श्री मोरारजीभाई[*] का ध्यान इस ओर खींचा था कि गांधीजी ने कहा था कि इन समाधियों पर और कुछ न बनवाया जाय, ऊपर खुला आकाश ही रहने दिया जाय।

लिखा हुआ हो तो दिखाओ! वैसा कुछ होता तो गांधीजी के पत्र-व्यवहार में कहीं-न-कहीं उसका उल्लेख अवश्य हुआ होता।

लेकिन लिखित तो कुछ था नहीं।

अन्त में समाधियों के ऊपर कुछ बनवाने की बात खतम हो गयी। चारों खम्भे खड़े रहे और समाधियाँ खुली रहीं।

लोगों का आना-जाना जारी है। ●

१४

गांधी-जिन्ना-वार्तालाप

किफायतसारी

१४८ जुहू से विदा होकर गांधीजी पूना पहुंचे। वहां पहुंचते ही पत्र लिखा "मेरे पेट और सिर पर रात वाली मिट्टी की जो पट्टियां बंधती हैं उनके कपड़े जुहू में रह गये हैं। उन्हें भेज दो। मैंने घर में पूछताछ करवायी पर मिले नहीं इसलिए मैंने नयी खादी के फड़वाकर भेज दिये। गांधीजी ने फिर सन्देशा भेजा "मुझे नयों की जरूरत नहीं थी मेरे पुराने ही भेजो। पुराने अब मैं कहां से भेजूं? नौकरों ने चीथड़े समझकर उन्हें फेंक दिया था। जिन फटे हुए कपड़ों को हम उतार फेंकते हैं, गांधीजी उन्हीं में से फड़वाकर अपने उपयोग के लिए पट्टियां बनवा लेते थे।

बाद में जब मैं उनसे मिला तो इस सिलसिले में उलाहना भरा एक खासा भाषण दिया

नयी खादी फड़वाकर पट्टियां क्या भेजीं यह बड़ा पाप किया गया कि पुरानी पट्टियां फेंक ही देनी थीं? तुम्हें किफायतसारी की बात किस तरह समझाऊं?

मैंने नहीं फेंकी। नौकरों ने ही फेंक दी थीं।

तब तो नौकर तुमसे बढ़ गये!

१४९. गांधीजी के पास पत्र-व्यवहार, हरिजन-सेवा का सम्पादन और मेहमानों, संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं के साथ की चर्चाओं के

प्रमावा दल-शिक्ष के मुलाकातियों की मुलाकात-सम्बन्धी मांगों की संख्या इतनी बड़ी रहती थी कि पिछले १०-१२ वर्षों से प्रायः पिछली रात के ३ बजे से ही उनका दिन शुरू हो जाता था, फिर भी काम निपटता न था। ऐसी दशा में घर के और दफ्तर के साथी सहायकों और आश्रमवासियों को उनसे दिन-प्रतिदिन के काम-काज के सिलसिले में कुछ आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करनी होतीं। उनके लिए भी मिनट-दो मिनट का समय निकालना प्रायः कठिन हो जाता था।

महादेवभाई के जीवन-काल में तो मैं सारे काम उन्हींके द्वारा करता रहा था। शायद ही कभी गांधीजी का समय लेता था। बाद के वर्षों में मैं गो-सेवा-संघ, महादेवभाई-ट्रस्ट, कस्तूरबा-ट्रस्ट आदि के काम करता था। अतएव इन कामों के सिलसिले में मुझे कुछ पूछना करना होता था, तभी मैं विवश होकर गांधीजी से उनके बीच मिनट मांगता और यथासम्भव दो मिनट में अपनी बात पूरी करता। गांधीजी इसकी बड़ी कद्र करते थे।

१७ सन् गांधीजी के साथ तीसरे दर्जे के डिब्बे में कई बार यात्रा की थी। स्टेशनों पर गाड़ी के रुकते ही लोगों की भीड़ दर्शनों के लिए शोर मचाती। हम खिड़कियों और दरवाजों के सब ओर से भीतर बन्द कर देते, लेकिन लोग उन्हें ठोक-ठोककर दर्शन के लिए पुकार मचाते। कभी-कभी खिड़कियों के बाहर से भी आवाज आती। हम उनसे आजिजी के साथ कहते:

महात्माजी थक गए हैं। बड़ी मुश्किल से थोड़ी देर के लिए सो पाए हैं। मेहरबानी कीजिये और उन्हें सोने दीजिये।

दूसरे स्टेशन में कभी हमें ऐसे सज्जन भी मिलते कि

गांधीजी के

"हम दूर-दूर के गाँवों से महात्मा के दर्शन के लिए आये हैं। आप हमारा विचार क्यों नहीं करते? महात्माजी एक दिन न सोयेंगे तो क्या बिगड़ जायगा? महात्मा पुरुष के लिए तो सोना-न सोना सब बराबर ही है।

कभी-कभी कहीं-कहीं ऐसे लोगों की भीड़ भी मिल जाती जो हमारी बात सुनकर तुरन्त लौट जाती। पर ऐसे समझदारों की संख्या कम ही रहती।

१५१ सन् १९४४ के सितम्बर में जिन्नासाहब के साथ २१ दिन तक गांधीजी का मिलन वार्तालाप चला। जब वे इसके लिए सेवाग्राम से बम्बई रवाना हुए, तो ट्रेन में मैं उन्हींके डिब्बे में उनके साथ था। बम्बई के पास थाना स्टेशन पर इतनी भीड़ मिली कि गाड़ी को रुकना पड़ा। स्टेशन पर खाकसारों के दल-के-दल हाथ में बेलचे (छोटे फावड़े) लिये कतार-बन्द खड़े थे। 'हमारे सरदार अल्लामासाहब ने हमें गांधीजी की हिफाजत के लिए भेजा है' यों कहकर उनमें से कुछ गांधीजी के डिब्बे में चढ़ने लगे। मैंने उन्हें रोका और समझाना शुरू किया

'गांधीजी का अपना एक 'अपॉइण्टमेंट' है। ट्रेन के बम्बई पहुँचते ही उन्हें जिन्नासाहब से मिलने पहुँचना है। आप ट्रेन को रोकेंगे तो गांधीजी देर से पहुँचेंगे। मैं आपको डिब्बे में आने नहीं दूँगा। मेहरबानी करके आप सब लोग इसी प्लेटफार्म पर से नीचे उतर जाइये। चाहते हैं कि मैं [illegible]?

सब उतर गये। केवल एक खाकसार था मुसलमान [illegible] डटा रहा। मैंने उसे समझाया-समझाया पर वह न माना। गाड़ी चल दी।

"उतरते हो या नहीं ? उतरो। नहीं तो अभी धक्का दिये देता हूँ।

'महात्माजी की मौजूदगी में मुझे धक्का मारने की धमकी देते हो ? इतनी जुर्रत ?

"धक्का तो क्या घूँसा मारकर भी उतार सकता हूँ।

इतना कहकर मैंने सचमुच ही उसे घूँसा मारा और गाड़ी के दरवाजे की तरफ से उसका पंजा छुड़वा दिया। वह उतर गया।

१५२. इस प्रकार गांधीजी की आँखों के सामने किसीको पीटने की एक और घटना भी मुझे याद है। एक बार गांधीजी बम्बई के बिड़ला-हाउस में ठहरे थे। उन दिनों वे शाम की प्रार्थना के लिए नेपियन-सी रोड से कुछ नीचे की तरफ बने 'वेंगटा-हाउस' के अहाते में जाया करते थे। उस समय मैं भी उनके साथ जाता था लेकिन मैंने माना था कि वहाँ उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी मेरी नहीं थी। इस कारण एक दिन किसी निमित्त से मैं प्रार्थना के समय अनुपस्थित रहा। दूसरे दिन मुझे पता चला कि प्रार्थना के समय गांधीजी मुझे खोज रहे थे। उन्होंने तो मान ही रखा था कि प्रार्थना के समय उनके पास रहना मेरा कर्तव्य था।

इसके बाद वहाँ भी गांधीजी का बिड़ला-भवन से वेंगटा-हाउस न जाने का काम मैंने अपनी तरफ रखा।

प्रार्थना के बाद गांधीजी वेंगटा-हाउस में हरिजन-फण्ड इकट्ठा करते थे और पाँच रुपये लेकर अपने हस्ताक्षर देते थे। पैसे मुझ सौंपते थे। एक दिन प्रार्थना समाप्त होने के बाद मैंने पैसों की पोटली अपने रूमाल में बाँध ली और मैं गांधीजी के साथ रवाना हुआ। लोगों की भीड़ का पार न था। भीड़ ने गांधीजी को घर

लिया और आगे बढ़ने से रोक दिया। मैं भीड़ के अन्दर गांधीजी की बगल में रहकर उनके लिए रास्ता बनाने की कोशिश कर रहा था इतने में एक बदमाश ने मेरे हाथ की पैसोंवाली पोटली का रूमाल छीन भगने के लिए झटका दिया।

मने रूमाल नहीं छोड़ा और गांधीजी की आंखों के सामने ही उस सिरफिरे को पीटा।

मैंने बाद म इस घटना पर अधिक विचार नहीं किया। लेकिन दूसरे दिन प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने इसका उल्लेख किया और मेरी 'बहादुरी' की प्रशंसा की। किन्तु साथ में यह भी कहा

'अगर रुपए चले जाते तो मैं शान्तिकुमार से वसूल कर लेता क्योंकि वे गरीब हरिजनों के थे।

१९५१ बम्बई में पूरे २१ दिन तक जो गांधी-जिन्ना-वार्तालाप चला उस समय गांधीजी प्रतिदिन बिड़ला-भवन से रवाना होकर माउण्ट प्लेजेण्ट रोड पर बने जिन्नासाहब के बंगले तक पैदल जाते थे। उस वक्त मैं भी हर रोज समय पर पहुँच जाता था और उनके साथ अन्त तक रहता था।

जब पहले दिन गांधीजी जिन्नासाहब के मुकाम पर पहुँचे और वे उनकी अगवानी के लिए दरवाजे तक आये तो अखबारवालों ने फोटो खींचना शुरू किये! बापू ने जिन्नासाहब को पीठ पर से हाथ डालकर अपनी छाती से लगा लिया।

जिन्ना क्या मुझे गिरा देंगे!

गांधीजी के अन्दर चले जाने के बाद मैं लौट आता था। कभी रुक भी जाता और अखबारवालों के साथ कम्पाउण्ड के लॉन पर बैठकर गपशप में शरीक होता। तब गांधीजी के आने की

राह देखा करते। अक्सर बहुत देर हो जाती और गांधीजी का शाम का भोजन जिन्नासाहब के घर से आना पड़ता ! कारण यह था कि गांधीजी सूर्यास्त के पहले ही शाम का भोजन कर लेते थे।

१५४ गांधीजी जिन्नासाहब से कुदरती इलाजों की हिमायत करते और उन्हें मालिश के फायदे भी समझाते। इसके लिए उन्होंने अपना मालिश करनेवाले को कीनभाजी को भी जिन्नासाहब के घर भेजा था। इसके अलावा गांधीजी ने एक अथवा एक से अधिक बार जिन्नासाहब के लिए 'खाखरे' (खस्ता रोटी) भी तैयार करवाकर भेजे थे!

उन दिनों जिन्नासाहब के बँगले के अहाते में होनेवाली इन सारी बातों और घटनाओं पर किसी संवाददाता ने एक सुन्दर लेख लिखा था जिसमें जिन्नासाहब की तुलना ताड़ के साथ और गांधीजी की आम के पेड़ के साथ की थी। जिन्नासाहब के बँगले के अहाते में एक ताड़ का और एक आम का यों दो पेड़ थे!

१५५. २१ दिन तक चलनेवाली इन चर्चाओं के चलते रोज रोज की बातचीत का ब्योरा कागज पर लिखा जाता और बाद को पुष्टि के लिए जिन्नासाहब के पास भेजा जाता।

ऐसा एक विवरण श्री अमृतलाल सेठ ने अपनी 'जन्मभूमि' पत्र में छापकर प्रकाशित कर दिया!

जिन्नासाहब ने शिकायत की :

'गांधीजी अपने यहाँ खुला दरबार रखते हैं और गोपनीय कागज-पत्रों की बातें फूटकर छपती हैं।

मैं कोई आश्रमवासी नहीं हूँ।

गांधीजी गंभीर हो गये। ठक्करबापा ने अमृतलाल सेठ को बुलाकर कहा, "ऐसी गम्भीर चर्चाओं के समय इन तरीकों से काम लेना कितना शोभनीय माना जायगा?"

"लेकिन मैंने कागज गांधीजी के पास से प्राप्त नहीं किया है। मित्रा के घर से मिला है!"

"लेकिन मित्रासाहब ऐसी बात पर विश्वास कैसे करेंगे?"

"सो मैं देख लूँगा। आपको तो मैं वचन देता हूँ कि आपके (गांधीजी के) यहाँ से मैं कुछ भी नहीं लूँगा। और क्या चाहिए?"

"आप चाहे प्रतिपक्षी के यहाँ ही हाथ-चालाकी से काम करवाते हों, लेकिन आपके जैसे व्यक्ति को तो इस तरह की होशियारी भी नहीं दिखानी चाहिए! क्योंकि आखिर चुरा-छिपाकर इससे देश की हानि ही होती है।"

"बापा, गुस्ताखी माफ हो! लेकिन मैं एक पत्रकार हूँ। किसी भी उपाय से महत्त्व के समाचार प्राप्त करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस तरह अपनी समझ के अनुसार देश और समाज की सेवा करना हमारा काम है। मैं कोई 'आश्रमवासी' नहीं हूँ। हम तो चाहे जिस तरह, ताला तोड़कर भी खबरें इकट्ठा करते और छापते हैं।"

इस मामले में मुझे कुछ इसलिए मज़ा आया था कि मेरा लिखा हुआ एक टाइपिस्ट गांधीजी के पास था। वह हाल ही 'जन्मभूमि' से मुक्त होकर आया था और मैंने उसे गांधीजी के पास भेजा था। हमारे मन में शायद ही यह शक पैदा हुआ कि शायद अमृतलाल सेठ के इस षड्यन्त्र में यह टाइपिस्ट भी सम्मिलित होगा। दूसरी तरफ गांधीजी सहित सब लोगों को उस टाइपिस्ट पर पूरा-पूरा विश्वास था।

खिसियाहट !

सौभाग्यवश बात ऐसी हुई कि इस घटना के बाद एक-दो दिन के अन्दर ही जिन्नासाहब द्वारा तैयार कराया गया लेकिन गांधीजी को न भेजा गया दूसरा एक पत्र अमृतलाल सेठ ने 'जन्मभूमि' में छापा और जिन्नासाहब ने गांधीजी के 'खुले दरवाजे' पर जो कटाक्ष किया था उसे मिथ्या सिद्ध करके उल्टे उन्हीं का 'दरवाजा' फटा है इसे साबित कर दिखाया।

जिन्नासाहब की खिसियाहट का पार न रहा।

श्री अमृतलाल सेठ ने यह दूसरा पत्र छापकर ठक्करबापा को और अन्य सब लोगों को विश्वास न करा दिया होता तो सबके मन में उस टाइपिस्ट के लिए थोड़ी-बहुत शंका अवश्य ही बनी रहती।

१५६ यों तो गांधीजी के यहाँ हम कुछ लोगों को अनेक महत्व की बातें सुनने और महत्व के पत्र-व्यवहार की फाइलें पढ़ने को मिला करती थीं लेकिन इस गांधी-जिन्ना-वार्तालाप से सम्बन्ध रखने वाला पत्र-व्यवहार हमें अन्त तक बिलकुल देखने को नहीं मिला। एकदम अन्त में जब गांधीजी की अनुमति मिली तभी हम उसे देख पाये।

इन चर्चाओं के दौरान शुरू के मसविदे लगभग हमेशा ही राजाजी तैयार करते थे। गांधीजी उन्हें देख लेते थे। फिर खुद तैयार करते थे और राजाजी के साथ चर्चा कर लेते थे। अक्सर सारी चीज नये सिरे से भी लिखते थे।

जब ये मसविदे हमें पढ़ने को मिले तो हममें से बहुतों को और खासकर मेरे समान अल्प बुद्धिवालों को गांधीजी के मसविदे

बहुत बढ़िया भले थे। राजाजी थे डिप्लोमेटिक, गांधीजी थे बिलकुल सीधे-सच्चे—straightforward।

लेकिन राजाजी और गांधीजी के लेखों पर सम्मति प्रकट करने का मेरा अधिकार ही कितना? इसलिए मैं तो सब कुछ पढ़कर ही मन में सन्ताप का अनुभव करता था।

१७ ऐसी ही एक दूसरी घटना और है। दिल्ली में हुई गांधी-जिन्ना-चर्चा के दिनों में 'शंकर्स वीकली' वालों ने जिन्नासाहब के बारे में एक व्यंग्य चित्र छापा था। गांधीजी ने उन्हें बुलाकर अपनी आन्तरिक वेदना व्यक्त करते हुए कहा था

कहना होगा कि आपके इन कार्टूनों-जैसी कार्रवाइयों के कारण ही जिन्नासाहब के साथ की चर्चा भंग हो गयी। ०

: १५ :

महाबलेश्वर—पंचगनी

हिरोशिमा !

१५८ सन् १९४५ की गर्मियों में गांधीजी महाबलेश्वर गये थे और वहां २१ अप्रैल से ११ मई तक मेरे चचेरे भाई सेठ रतनसी धरमसी के 'मोरारजी कैसल' में रहे थे। मैं भी उनके साथ था।

दक्षिण अफ्रीका से श्री मणिलाल गांधी आये थे। वे थे। राजाजी भी थे ही। दूसरा विश्व-युद्ध अभी चल ही रहा था।

१५९ उन्हीं दिनों अमरिका ने जापान के दो समृद्ध नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर, एटम बम फेंककर लाखों निर्दोष नागरिकों को स्त्रियों-पुरुषों और बालकों को भून डाला और सारे संसार को चकित किया! इसके बाद कुछ ही दिनों के अन्दर जापान को शरणागति माँगनी पड़ी और विश्व-युद्ध समाप्त हुआ।

लड़ाई की समाप्ति के साथ ही विजयी मित्र राष्ट्रों में सर्वत्र विजय की दुन्दुभि बजने लगी। इस विचार से कि दुनिया के लोग इस विजय के बारे में गांधीजी की प्रतिक्रिया जान सकें मैंने उनके सामने अपना यह प्रस्ताव रखा कि वे इस विषय पर समाचार पत्रों के लिए अपना एक वक्तव्य दें।

गांधीजी ने चार-पांच पंक्तियों का एक संक्षिप्त वक्तव्य लिखा। लेकिन उसे समाचार-पत्रों में प्रकाशन के लिए देने का राजाजी ने तीव्र विरोध किया।

मेरी तरह भी मणिलालभाई इस पक्ष में थे कि उसे समाचार-पत्रों में भेजा जाय। प्यारेलालजी इसके विरुद्ध थे और राजाजी के साथ थे। दोनों हमसे कहने लगे

"इस प्रकार का वक्तव्य देने से क्या होगा ? गांधीजी के ऐसे वक्तव्य से तो उनको सरकार वर्किंग कमेटी के सदस्यों को छोड़ना चाहती होगी तो भी नहीं छोड़ेगी।

मैंने कहा "यूरोप-अमेरिका के गांवों में रहनेवाले लोग भी गांधीजी का सन्देश पाने और सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। अब चूंकि लड़ाई खत्म हो चुकी है इसलिए वहां के लोग यह जानने को बहुत ही उत्सुक होंगे कि इस बारे में गांधीजी के अपने विचार क्या हैं। इसलिए अगर गांधीजी युद्ध की समाप्ति के बारे में अपने विचार व्यक्त करेंगे तो वहां की जनता उसका स्वागत ही करेगी और सारे संसार पर उसका प्रभाव भी पड़ेगा।

गांधीजी राजाजी को समझा सको तो समझाओ। सब कुछ अपने बीच तय कर लेना। अगर राजाजी की स्वीकृति पा सको तो मुझे समाचार-पत्रों को देने में मुझे आपत्ति नहीं।

दूसरे दिन गांधीजी ने हमसे पूछा तो मैंने और मणिलालभाई ने अपनी हार कबूल की। हम दोनों राजाजी को समझाने में विफल रहे थे !

अपने सन्देश में गांधीजी ने नीचे लिखे आशय की बात कही थी

मित्र राष्ट्रों के विजयोत्सव के बारे में मैं सन्देश क्या दूं ! उनसे मैं तो सवाल ही पूछूंगा कि यह विजय असत्य पर सत्य की है अथवा असत्य पर सत्य की और तानाशाही के विरुद्ध लोकशाही की ? क्या अब वैर का बदला लेनेवाली शक्तियां ही सब कहीं

मालूम करेंगी ! मेरे दिल में तो इसी तरह के सवाल उठ रहे हैं और शायद हरएक के दिल में ये ही चक्कर काट रहे होंगे !

इस प्रकार यह सन्देश समाचार-पत्रों को तो नहीं भेजा गया पर बापूजी की अनुमति से मैंने इसे नोट कर लिया और अन्त में इस विचार से कि कहीं यह खो न जाय इसे अपनी ऑटोग्राफ बुक में भी उतार लिया। यह आज भी ज्यों-का-त्यों मौजूद है और मौजूं लगनेवाला है।

१६ गांधीजी के मामलेपुर-वास के दिनों में आश्रम के रिवाज के अनुसार रोज शाम को ५ बजे ही शाम का भोजन निपटा लिया जाता था। उसके बाद गांधीजी जब टहलने निकलते तो राजाजी साथ होते। कमलनयनजी, जहांगीरजी, मणिलालभाई गांधी और मैं हम सब पीछे चलते। हवाखोरी से लौटने के बाद प्रार्थना होती और फिर सब बिखर जाते।

रात हमें भूख लगा करती। इसलिए जहांगीरजी चने मुरमुरे और मूंगफली के दाने आदि लाकर उनकी ढेरियां लगा देते। हम सब उनके चारों ओर बैठ जाते और खाते-खाते देश-दुनिया की बातें गपशप के रूप में करते रहते। इनमें सबसे बड़े अपराधी दो थे— मैं और कमलनयनजी। राजाजी का कमरा बगल ही में था। लेकिन उनको अपने में शरीक होने के लिए बुलाने की हिम्मत हम कैसे करते

शायद उन्होंने हमारी खुसफुसाहट सुन भी होगी इसलिए दूसरे दिन वे खुद ही हमारे बीच आकर बैठ गये और गपशप में शरीक हुए। फिर तो हमारी इस खुसफुसाहट की भनक गांधीजी तक पहुँची ! वे रात आये और शरम गए

गांधीजी के

'इतनी देर तक जागते हो ? क्या चर्चा चलती है ?'

"यह हमारा 'गपशप क्लब' है !'

'तुम्हारे क्लब के मुखिया कौन हैं ? मुझे उनसे कहकर मनाही हुक्म जारी करवाना पड़ेगा !"

हमने राजाजी को आगे किया। कहा 'ये बैठे हैं हमारे प्रेसिडेण्ट !'

गांधीजी को आश्चर्य हुआ। उनको इस बात की शंका भी कैसे होती कि राजाजी के समान बुजुर्ग हमारे 'गपशप-क्लब' में आकर बैठते होंगे !

१६६ शाम का टहलते समय गांधीजी किसीके साथ भी बात क्यों न करते हों उनका ध्यान बराबर सब ओर बना रहता था जो उनके सुनने जैसा होता उसे बिना चूके सुनते और टोकते। एक दिन की बात है, हम अंग्रेजी में बातचीत कर रहे थे गांधीजी ने सुना और हमें फौरन टोका :

'अंग्रेजी में बात क्यों करते हो ?'

एक दिन जयपुर के महाराजा पधारनेवाले थे। वे टहलते समय साथ हो गये। कुमारी (सरोजिनी देवी) ने गांधीजी के साथ उनका परिचय कराया और कहा "आप ही महाराजा ने सर मिर्जा इस्माइल के समान एक लिबरल (उदार विचारोंवाला) मुसलमान को अपनी रियासत का दीवान बनाया है।

गांधीजी 'अच्छी बात है। लेकिन राज के मालिक बनकर नहीं अपने को राज का ट्रस्टी समझकर राज चलाइये।

वे लोग गांधीजी के साथ बातचीत करते हुए चल रहे थे। मैं वहाँ सुशीला के साथ था। हम दोनों पीछे रहकर धीमी आवाज

में बातचीत करते हुए चल रहे थे । सुशीलाबहन ने मुझसे पूछा 'आप रसोई में क्या-क्या बनाना जानते हैं ?'

मैंने कहा : 'एक रोटी बेलना छोड़कर बाकी सब जानता हूँ।'

गांधीजी जयपुर के महाराजा से बातचीत कर रहे थे फिर भी उन्होंने हमारी बात बराबर सुन ली। पीछे को मुड़े और हमसे कहने लगे

'दक्षिण अफ्रीका में मैं भी बेलना नहीं जानता था। बाद में मैंने युक्तिपूर्वक एक नयी तरकीब खोज निकाली। जिस तरह बेलना जानता था उस तरह बेलकर उसे कटोरे की कोर से दबा देता इससे रोटी गोल बन जाती।'

एक बार मैंने गांधीजी से कहा : 'आप एक ऐसे [illegible] हैं कि आपकी मेज पर रहनेवाले उन तीन बन्दर-गुरुओं को बदलकर उन्हें नए सिरे से बनवाना चाहिए। उनमें एक ऐसा हो जो दुर्बीन की मदद से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु को देख लेता हो, दूसरा कानों में मशीनें लगाकर धीमी-से-धीमी आवाज को भी सुन लेता हो और तीसरा मुँह पर पट्टी बाँधने के बदले लाउडस्पीकर के आगे मुँह डालकर इतनी जोर से चिल्लाता हो कि दूर दूर तक सुनाई पड़ जाए।'

गांधीजी ठहाका मारकर हँसे।

१६ उन्हीं दिनों एक बार भारत में 'अपनी राय' नामक [illegible] पत्र के संपादक हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल हिमायती और उसके लिए उर्दू भाषा के प्रचार की आवश्यकता के समर्थक [illegible] गांधीजी से मिलने के लिए [illegible] आये। [illegible] क्या था [illegible] मुझे याद नहीं रहा

 गांधीजी के

अक्सर बातचीत में या सुन्दरलालजी के अपने मिलन-जमाव की प्रति उत्साह को लेकर या ऐसी ही किसी बात पर गांधीजी बहुत संतप्त हो उठते थे। उन्हें इतने उग्र स्वरूप में देखने का यही एक प्रसंग मुझे याद है। एकदम लाल-पीले हो गये थे।

१६३ गांधीजी मामलेदार से पंचगनी पहुँचे। कहने लगे "यहाँ तो पैसेवाले ही रह सकते हैं। साधारण स्थितिवाले पंचगनी में रहें?"

राजाजी यहाँ भी साथ थे। उन्होंने पंचगनी से एक बहुत लम्बा निजी तार जिन्नासाहब को किया था। प्यारेलालजी के अलावा और किसीको इसकी जानकारी नहीं थी। जब दूसरे दिन मैं डाक लेने डाकघर गया तो डाकबाबू ने कहा "कल जिन्नासाहब के नाम भेजे गये राजाजी के तार के दाम गिनने में थोड़ी भूल हो गयी है। क्या आप बाकीवाली रकम चुका सकेंगे?"

एकाध रुपये की ही भूल थी। पैसे मैंने डाकबाबू को चुका दिये और घर आकर राजाजी से इसकी चर्चा की। राजाजी का मुँह एकदम उतर गया! बोले तो कुछ नहीं पर उनकी मुख-मुद्रा से मैं समझ गया कि तार बहुत ही गोपनीय था और उन्हें डर था कि थोड़ी भी फैली तो भारी नुकसान होगा।

मैंने उन्हें आश्वस्त किया।

१६४ वैसे पंचगनी में वर्षा मामलेदार की तुलना में कम ही होती है फिर भी यहाँ पानी खूब बरसता है। रास्ते हमेशा कीचड़ लथपथ बने रहते हैं। एक दिन मैंने देखा कि राजाजी अपनी चप्पलों का मांड साफ कर रहे थे। मैंने चप्पलें उनसे छीन लीं और लगा हुआ कीचड़ घुसकर और घिसकर साफ कर दी। उनके चेहरे पर भरपूर वात्सल्य उमड़ आया।

चुनौती स्वीकार की

मैं गांधीजी की चप्पलें भी प्रायः साफ किया करता था। लेकिन उनके साथ की बहनें उनके कपड़े किसीको धोने नहीं देती थीं। एक बार मैंने मांगे।

"आपसे यह काम नहीं होगा। दूध की तरह सफेद निकलने चाहिए।

मैंने चुनौती स्वीकार की। भलीभांति धोकर बगुले के पंख जैसे कर दिये।

१६ :

खादी और उद्योग

सूर्य और ग्रह-मण्डल

१९५. चरखे पर गांधीजी की आस्था अटल थी। इस आस्था की तुलना उनकी राम-नाम अथवा गीताविषयक आस्था के साथ की जा सकती है। अपने देश की अर्थनीति में वे चरखे को सदा सूर्य की ओर बाकी के गृहोद्योगों को उसके ग्रह-मण्डल की जगह दिया करते थे।

१९६. मैं भी लगभग शुरू से ही अर्थात् सन् १९२ में विलायत से लौटने के बाद से ही खादी में दिलचस्पी लेने लगा था। सन् १९२१ से सम्पूर्ण खादीधारी बना। खादी-ग्रामोद्योग-भण्डारों में हमेशा ही जाया करता था और भण्डारों के संचालकों से मिलकर उनके साथ खादी की किस्म (प्रकार) उसकी बुनाई, रँगाई, छपाई आदि से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक प्रश्नों के बारे में चर्चा करता और सुझाव देता था।

खादी का 'होल्डॉल' सबसे पहले मैंने बनवाया और जिन दिनों गांधीजी मैसूर के नन्दी-हिल पर थे वहाँ उन्हें दिखाया था। मेरा यह 'होल्डॉल' वर्षों तक काम देने और हजारों मीलों की यात्रा करने के बाद भी अब तक वैसा का वैसा बना हुआ है!

अपने कार्यालय के कर्मचारियों को दी जानेवाली पोशाक में खादी का और दफ्तर में बरते जानेवाले कागजों में हाथ के बने कागजों

का ताना उपयोग शुरू करने की पहल भी मैंने ही की थी। इस पर एक टिप्पणी लिखकर गांधीजी ने अपने 'नवजीवन' साप्ताहिकों में दूसरी व्यापारी-पेढ़ियों से इसकी सिफारिश भी की थी।

खादी में नयी-नयी नक्शी और डिजाइनें तैयार करवाने का भी मुझे बड़ा शौक था। उन दिनों हमारी सोमापुर-मिल के रंगीन चेकों की डिजाइनें मशहूर थीं। खादी में उस तरह के चेक तैयार करवाने में और रंग दिये गये रेशम के कचरे से बाफ्ता-खादी तैयार करवाने में मेरा हाथ रहा था।

१६७ कांग्रेस के अधिवेशनों के अवसर पर होनेवाली खादी-ग्रामोद्योग-प्रदर्शनियों में भी मैं सम्मिलित होता रहता था। खादी की नेकटाई, कमरपट्टे 'होल्डॉल' और ऐसी दूसरी अनेक चीजें मैं पहल करके तैयार करवाता और उनकी सम्भावनाओं को मित्रों की दृष्टि में लाता—पैठाता। आन्ध्र के हाथ-कते सूत को दूसरे हाथ-कते सूत से मिलाकर मैंने लखनऊ में जामदानी के जो थान तैयार करवाये थे उन्हें सेवाग्राम की ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी में गांधीजी ने सभा में आये लोगों को दिखाया था।

जिस समय गांधीजी न प्रदर्शनी की सभा में जामदानियों की यह बात कही थी उस समय मैं वहाँ हाजिर नहीं था। थोड़ी दूर पर एक दूसरे काम में उलझा हुआ था। पं जवाहरलालजी मेरे पास दौड़ आये और मुझसे कहा "अपनी उन जामदानियों को लेकर चलो। बापू तुम्हें प्रदर्शनी की सभा में बुला रहे हैं।

मैं तुरन्त ही अपने मुकाम पर पहुँचा और जामदानियाँ लेकर सभा म गया। गांधीजी ने बड़े ही उत्साह के साथ उन्हें सभा को दिखाया और मेरे खादी प्रेम की प्रशंसा की।

रक्षक ही भक्षक !

इस अवसर पर पं. जवाहरलालजी ने मुझसे पूछा था
"तुम इन जामदानियों का क्या उपयोग करोगे ?
"मैं इनकी शेरवानियाँ बनवाऊँगा।"
जामदानी के कपड़े की शेरवानी अच्छी नहीं।"
इन जामदानियों के कुछ थान आज भी मेरे पास पड़े हैं।

११८ चूँकि गांधीजी जैसे एक अभिभावक और समर्थक अपने आप इस धन्धे की मदद के लिए खड़े हो गये थे इसलिए बुनाई काम के कारीगरों और मामूली बुनकरों ने भी बड़े उत्साह के साथ बाप-दादों के जमाने की तरह-तरह की पुरानी डिज़ाइनों को फिर ज़िन्दा किया और उन्हें खादी में चलाया था।

कुछ समय के बाद यह कारण देकर कि इस प्रकार की बुनावट के कारण खादी महँगी हो जाती है, खादी-भण्डारों ने उन डिज़ाइनों को छपवाकर चलाना शुरू किया ! उस समय इनके विरुद्ध अदालत में बुनकरों के इस केस को गांधीजी तक ले गया था।

मेरी दलील यह थी कि ऐसा करने से वैसी पुरानी डिज़ाइनों को सजीवन करके बुननेवाले बुनकरों की रोजी की खानीबान छीन लेंगे और उनके पेट पर लात मारकर रक्षक बनने के लिए निकले हुए लोग ही भक्षक बन जायेंगे ! मतलब यह कि खादी ही खादी को मारेगी Khadi will kill khadi. खादी प्रचारकों का धर्म बुनकरों की रक्षा करने का है उन्हें मार डालना अथवा उनका शोषण करने का नहीं ! मोमापुर-मिल की व्यवस्था के समय का मेरा अपना अनुभव यह था कि जब हमारी मिल कोई भी नयी किस्म या नया नमूना अथवा डिज़ाइन तैयार करती कि तुरन्त ही दूसरी मिलें उसी नमूने की लेकिन हमारी

पोत की डिजाइनें तैयार करके बाजार में लातीं। फलस्वरूप वैसी डिजाइनें हमेशा के लिए नष्ट हो जातीं।

मेरी एक और भी शिकायत थी। और वह यह थी कि खादी की रँगाई-छपाई आदि का सारा काम बम्बई में ही होता था! फिर वह दिन पर दिन बढ़ता भी जा रहा था। यह बात भी वांछनीय तो नहीं ही थी क्योंकि गांधीजी के सिद्धान्त के अनुसार तो ये सारे काम गाँवों में ही चलने चाहिए। यदि इसका आग्रह न रखा गया तो खादी-भण्डार गाँवों में बस दरिद्रनारायणों के और बुनकरों-कारीगरों के न रहकर शहरों के ही एजेण्ट बन जायेंगे।

१६९. खादीधारी (Habitual Khadi wearer) किसे कहा जाय ? जो भाई अथवा बहन पहनने के कपड़ों तक ही खादीधारी हों लेकिन चादर, तकिया गिलाफ वगैरह आदि घरेलू उपयोग की दूसरी चीजों के बारे में खादी का आग्रह न रखते हों उन्हें खादीधारी माना जाय या नहीं आदि बातों की चर्चा भी उन दिनों मैंने छेड़ी थी और गांधीजी से इसकी व्याख्या निश्चित करवायी थी। उन्होंने निर्णय दिया था कि जो भाई अथवा बहन अपने पहनने के कपड़ों में (wearing apparel) हाथ-कती हाथ-बुनी शुद्ध खादी का ही सदा उपयोग करें उन्हें खादीधारी माना जाय फिर चाहे दूसरे सब उपयोगों के लिए उन्होंने खादी शुरू न भी की हो।

इसके अलावा विदेश-यात्रा के दिनों में जहाँ खादी के सिवा दूसरी बनावट के कपड़े पहनना या बरतना अनिवार्य हो वहाँ उन्हें पहनने और बरतने की छूट मानी जाय। इसके सिवा जेल में या अस्पताल में भी मिल के कपड़ों का यूनीफार्म वैसी अथवा रोगी के

जाते पहनने में खादीधारी का व्रत टूटा हुआ न माना जाय क्योंकि उसमें अनुशासन-पालन के साथ ही सत्याग्रही का विनय भी है। ऐसी अवस्था रोगी का वह एक धर्म बन जाता है।

१७० हमारी शोलापुर-मिल में खादी नाम के एक कारकुन थे। वे खादी स्वदेशी आदि विषयों में बहुत रुचि रखते थे। उनसे मैं खादी के और देश के मिल-उद्योग आदि सम्बन्धी जानकारी इकट्ठा करवाता था। मैं इस सम्बन्ध के आँकड़े कोष्ठक चार्ट और ऐसी ही अन्य सामग्री तैयार करवाकर गांधीजी को भेजा करता था और इस सम्बन्ध में उनके साथ पत्र-व्यवहार करता रहता था। मेरे द्वारा भेजी गयी इस प्रकार की सामग्री की चर्चा गांधीजी अपने 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' पत्रों में किया करते थे।

१७१ प्रान्तों का शासन जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में आने के बाद सन् १९४ में गांधीजी ने खादी के काम को समूचे देश में फैलाने और बढ़ाने के लिए देश के सामने २५ लाख रुपयों की एक माँग रखी थी और इसके लिए सार्वजनिक रूप से एक अपील भी निकाली थी। इस अपील के सिलसिले में बम्बई शहर की वसूली का काम गांधीजी ने मुझे और श्री डाह्याभाई वल्लभभाई पटेल को सौंपा था और उसे हम दोनों ने लक्ष्य-पूर्ति तक सँभाला था।

इस अपील की हस्तलिखित प्रति के अन्त में मो. क. गांधी वल्लभभाई पटेल और जमनालाल बजाज के तीन हस्ताक्षर हैं और नीली स्याही से किये हुए हैं। नीचे २४-८-'४ सेवाग्राम लिखा हुआ है। इस अपील की गांधीजी द्वारा पेंसिल से लिखी गयी मूल पाण्डुलिपि को मैंने अपने संग्रह में यत्नपूर्वक रखा है।

१३२. सन् १९२७-२८ में विदेशी कपड़े के बहिष्कार के सिलसिले में मैंने गांधीजी के साथ बहुत पत्र-व्यवहार किया था। मेरे पत्रों के मुद्दों को उद्धृत करके गांधीजी अपने साप्ताहिकों में उनकी चर्चा किया करते थे। ऐसा एक लेख २९ मार्च १९२८ के 'नवजीवन' में छपा था।

इन चर्चाओं में गांधीजी क्रम क्रम से यह सुझाते रहते थे कि किस तरह कपड़ा-मिलों के मालिक और उनके संचालक भी खादी के आन्दोलन में और उसके प्रचार में सहायक हो सकते हैं। साथ ही खादी के विरुद्ध जो आपत्तियाँ की जाती थीं उनका निराकरण भी करते थे और प्रत्येक प्रामाणिक देशप्रेमी तथा गाँवों में रहनेवाली अखिलभारतव्यापी करोड़ों-करोड़ जनता के प्रति सहानुभूति रखनेवाले मिल-मालिकों और उद्योगपतियों से वे किस प्रकार की सहायता और सहयोग की अपेक्षा रखते हैं एवं अपने हितों को अधिक आँच न आने देकर भी उद्योगपति देश की विशाल आम जनता के हित के लिए क्या-क्या कर सकते हैं और किस हद तक जा सकते हैं इस बातें को समझाते रहते थे और वैसे मार्ग सुझाया करते थे।

अक्सर इस सबके लिए मैं और गांधीजी को लिखे गये मेरे चर्चा-पत्र निमित्त बनते थे।

१३३. सन् १९३१ की कराची-कांग्रेस में जाने के लिए गांधीजी बम्बई आये थे। उस समय मिल के कपड़े पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटा देने की मिलों की माँग के सिलसिले में कुछ मुख्य मिल-मालिकों ने गांधीजी से समय माँगा था और वे उन्हें अपनी बात समझाने के लिए उनसे मिले थे। मिलवालों की इच्छा यह थी कि इस चर्चा के बाद गांधीजी अपने 'यंग इण्डिया' साप्ताहिक में मिलों के पक्ष में लिखें।

गांधीजी के साथ मेरा जो सम्बन्ध रहा उसे वे भली भाँति जानते थे। उन्होंने सोचा कि मैं गांधीजी को समझाऊँगा तो उनका काम सरल हो जायगा।

"मिलें बहुत ही नुकसान उठा रही हैं इसे सिद्ध करनेवाला एक 'कम्पाइल्ड बैलेन्सशीट' गांधीजी को दिखाओ और समझाओ।

गांधीजी ने उनकी सारी बातें सुनीं। 'यंग इण्डिया' में लेख भी लिखा। साथ ही यह भी लिखा कि वे स्वयं मिल-मालिकों से क्या क्या आशा रखते हैं।

इस लेख के सम्बन्ध में गांधीजी की महत्ता का उल्लेख किये बिना मैं रह नहीं सकता। उन्होंने वर्णित मुद्दों को मुझसे समझ लेने के बाद लेख लिखा था। फिर भी उसे छपने के लिए देने से पहले उन्होंने उसको मेरी 'मंजूरी' के लिए भेजा था।

१७४ सर होमी मोदी बरसों तक बम्बई के मिल-मालिक-मण्डल के प्रमुख रहे। एक बार मुझसे कहने लगे:

'गांधीजी मिलों के इतने खिलाफ क्यों हैं?'

'आप गलती कर रहे हैं। गांधीजी यह कभी नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान की कपड़ा-मिलों का नाश हो।

अगर बात वैसी आप कहते हैं वैसी ही है तो बड़ी धारा-सभा में मिलों के उत्पादन पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटाने का जो प्रस्ताव आनेवाला है यदि गांधीजी अपने पत्र में लेख लिखकर उसका समर्थन करें, तो सरकार पर उसका बहुत असर पड़े और देश की मिलों को बड़ी राहत मिले। क्योंकि ब्रिटिश सरकार तो देश-विदेश को और सारी दुनिया को यही समझाना चाहती है कि हिन्दुस्तान की मिलों पर लगी एक्साइज ड्यूटी न हट जाने के

१३२. सन् १९२७-२८ में विदेशी कपड़े के बहिष्कार के सिलसिले में मैंने गांधीजी के साथ बहुत पत्र-व्यवहार किया था। मेरे पत्रों के मुद्दों को उद्धृत करके गांधीजी अपने साप्ताहिकों में उनकी चर्चा किया करते थे। ऐसा एक लेख २९ मार्च १९२८ के 'नवजीवन' में छपा था।

इन चर्चाओं में गांधीजी क्रम-क्रम से यह सुझाते रहते थे कि किस तरह कपड़ा-मिलों के मालिक और उनके सभासद भी खादी के आन्दोलन में और उसके प्रचार में सहायक हो सकते हैं। साथ ही खादी के विरुद्ध जो आपत्तियां की जाती थीं उनका विश्लेषण भी करते थे और प्रत्येक प्रामाणिक देशप्रेमी तथा गांवों में रहनेवाली दरिद्रतागयकस्वरूप करोड़ों-करोड़ जनता के प्रति सहानुभूति रखनेवाले मिल-मालिकों और उद्योगपतियों से वे किस प्रकार की सहायता और सहयोग की अपेक्षा रखते हैं एवं अपने हितों को अधिक आंच न आने देकर भी उद्योगपति देश की विशाल ग्राम जनता के हित के लिए क्या-क्या कर सकते हैं और किस हद तक जा सकते हैं इन बातों को समझाते रहते थे और वैसे मार्ग सुझाया करते थे।

अक्सर इन सबके लिए मैं और गांधीजी को लिखे गये मेरे चर्चा-पत्र निमित्त बनते थे।

१३३ सन् १९३१ की कराची-कांग्रेस में जाने के लिए गांधीजी बम्बई आये थे। उस समय मिल के कपड़े पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटा लेने की मिलों की मांग के सिलसिले में कुछ मुख्य मिल-मालिकों ने गांधीजी से समय मांगा था और वे उन्हें अपनी बात समझाने के लिए उनसे मिले थे। मिलवालों की इच्छा यह थी कि इस चर्चा के बाद गांधीजी अपने 'यंग इण्डिया' साप्ताहिक में मिलों के पक्ष में लिखें।

भी इसका प्रस्ताव आया तो मैंने उसका कड़ा विरोध किया। मैंने गांधीजी को भी लिखा कि जिस तरह खादी भण्डारों और उत्पत्ति केन्द्रों का खादी बुननेवाले जुलाहों के हितों की रक्षा करनी चाहिए, उसी तरह मिलों का भी हाथ-करघे के बुनकरों की रोजी पर लात नहीं मारना चाहिए।

इस प्रकार की कार्रवाइयों और गलत तरीकों को रोकने के लिए मैं बार-बार गांधीजी के साथ चिट्ठी-पत्री करता रहता था। गांधीजी भी इसके बारे में अपने साप्ताहिकों में बहुत कुछ लिखकर इन प्रश्नों की छानबीन सब पहलुओं से किया करते थे। उन्हींकी प्रेरणा से इस दिशा में प. मोतीलालजी ने दिल्ली की बड़ी धारा-सभा में एक ऐसे कानून का बिल पेश किया था जिससे इस ढंग की बनावटी-मिल मोटा कपड़ा तैयार करके उसे खादी के नाम से बेच न सकें।

१३६ इसी प्रकार मैंने ब्रह्मदेश और लंका के 'इमिग्रेशन' आदि विषयों में दिलचस्पी लेने के लिए गांधीजी को प्रेरित किया था। इन विषयों पर भी लिखने के पहले वे मुझसे सब कुछ पूछ लिया करते थे और लिख चुकने पर फिर मुझे दिखाते थे। ऐसा करते थे। शान्तिकुमार पूरी छानबीन के बाद ही मुझे जानकारी देते हैं। उनके कहने में मुझे कोई संदेह नहीं होता।

१३७ चरखा खादी और ग्रामोद्योगों के जबरदस्त हिमायती और प्रचारक होते हुए भी गांधीजी मिलों के और बड़े उद्योगों के मित्र ही थे। इस देश की विशाल जनता के हितों में बाधक बने बिना देश की सर्वांगीण है और उनके आर्थिक विचार में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से उनका स्थान नहीं है और जिनका समावेश

खादी शुरू नहीं हाय। इसलिए कि उससे मिल का कपड़ा सस्ता होगा और उसकी तुलना में खादी ज्यादा महँगी दिखाई पड़ती।

मैं गांधीजी का रुख जान लेने की कोशिश करूँगा। वैसे मुझ तो विश्वास है ही।

मैंने गांधीजी से सम्पर्क किया। मेरी बात सच ही थी। मिलों पर से एक्साइज-ड्यूटी के हटने पर गांधीजी को कोई आपत्ति नहीं थी। मुझसे सब पहलुओं से सारी वस्तु-स्थिति भलीभांति समझ लेने के बाद उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने अंग्रेजी साप्ताहिक हरिजन में एक सुन्दर लेख लिखा।

जैसा कि उनका तरीका था उन्होंने अपना यह लेख प्रकाशित करने से पहले मेरे पास देखने को भेजा था। मेरी अनुमति के बाद ही वह प्रकाशित हुआ।

मिल-मालिक खुश-खुश हो गये।

हर कोई जानता है कि इसके कुछ समय के बाद ही मिलों पर लगी एक्साइज-ड्यूटी हट गयी।

१७ जैसे-जैसे खादी का प्रचार और उपयोग लोकप्रिय होता गया वैसे-वैसे मिलों ने भी मोटा कपड़ा बुनकर खादी के नाम से बेचना शुरू किया। मिल के सूत की हाथ-करघे पर बनी साड़ियाँ उन दिनों दक्षिण में सब जगह बहुत चलती थी और उनकी बड़ी तारीफ थी। जहाँ देखो वहाँ लोग हाथ-करघे की बनी चीजें ही माँगते थे। इन साड़ियों की बड़ी मिल की साड़ियों से अलग छाप पर की जाती थी।

इस लोकप्रियता का ध्यान में रखकर मिलों ने भी वैसी ही बटी करनी शुरू कर दी। अब हमारी शोलापुर-मिल की ओर से

चलानेवाली ब्रिटिश नीति के बारे में उन्होंने लिखा था : The Indian shipping had to perish so that British shipping might flourish. इसके बाद तो वर्षों तक यह वाक्य और दैत्य के रूप में जॉनबुल तथा वामन के रूप में हिन्दुस्तान के पुतले प्रत्येक राष्ट्रीय प्रदर्शनी में रखे जाते रहे। इस विषय पर गांधीजी की 'कलात्मक' रचनाएँ भारतीय जहाजरानी के इतिहास में चिरस्थायी स्थान पा चुकी हैं।

भारत के जहाजी व्यापार को पुनः जाग्रत करने की यह बात उन्हें इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण मालूम हुई थी कि जब वे गोलमेज परिषद् में गए तो वहाँ विशेष रूप से की जानेवाली चर्चाओं की सूची में भारत की जहाजरानी के मुद्दे को उन्होंने खास तौर से लिख रखा था।

१३९ जब सिन्धिया के विशाखापट्टनमवाले शिप-यार्ड का शिलान्यास राजेन्द्रबाबू के हाथों हुआ, उस समय गांधीजी को छोड़कर देश के अधिकांश कांग्रेसी नेता जेल में थे। वालचन्द भाई ने आशीर्वाद माँगे। गांधीजी ने लिखा :

भाई वालचन्द
सेवाग्राम ११-६-४१

आपका पत्र मिला। यहाँ राजेन्द्रबाबू पहुँच रहे हों वहाँ मेरे पत्र की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। लेकिन चूँकि नरोत्तम सेठ के साथ मेरा पुराना सम्बन्ध रहा है इसलिए आप मेरे आशीर्वाद की आशा रखते हैं सो मैं समझता हूँ। आपका साहस सफल सिद्ध हो और सारे देश के लिए लाभप्रद हो।

आपका
मो० क० गांधी

है इस बात को वे असीम धैर्य के साथ क्रम-क्रम से समझाते रहते थे। उद्योगपति भी गांधीजी को अपने हितैषी और तत्त्व सलाहकार के रूप में मानते थे और मिल-उद्योग विनिमय तथा भारतीय जहाजरानी आदि विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली सरकारी नीति के विरुद्ध अपनी रक्षा करने के प्रयत्नों में गांधीजी की सलाह और सहानुभूति प्राप्त करने की दृष्टि से वे मूल्य एक कड़ी समझते थे। मैं ऐसे अनेक प्रसंगों का वर्णन कर सकता हूँ।

●

१७८ गांधीजी भारत की जहाजरानी के उद्योग में भी बहुत दिलचस्पी लेते थे। बुनाई की तरह ही जहाजरानी का उद्योग भी भारत में प्राचीन समय से ही बहुत विकसित हुआ था और ब्रिटिश हुकूमत ने कपड़े की बुनाई की तरह ही जहाजरानी का भी अपने हितों के पक्ष में व्यवस्थित रीति से नाश किया था। ये उद्योग फिर से चैतन्य हो और इनका विकास हो तथा इस क्षेत्र में लगभग शत प्रतिशत चक्रवर्ती की-सी सत्ता रखनेवाली प्रभावप ब्रिटिश कम्पनियों का एकाधिकार समाप्त हो इसके लिए समय समय पर अपने साप्ताहिकों में अपने विचार प्रकट करके गांधीजी भारतीय जहाजी कम्पनियों को प्रोत्साहित करते और हिम्मत बँधाते थे। वे सरकारी नीति की हमेशा कड़ी टीका करते।

गांधीजी ने भारत की जहाजरानी पर 'यंग इण्डिया' में जो लेख लिखा था उसमें उन्होंने ब्रिटिश जहाजरानी को giant (दैत्य) और भारतीय जहाजरानी को dwarf (वामन) कहा था। भारत के जहाजी व्यापार को मिटाकर ब्रिटिश जहाजरानी को समृद्ध

 गांधीजी के

कुमारप्पाजी का सन्तोष !

ता० ३० जनवरी के दिन गांधीजी की हत्या हुई। उसी दिन दोपहर को जब मैं गांधीजी से मिला तो मैंने फिर इस विषय की चर्चा चलायी थी और उन्होंने मनुबहन से कहा था कि वे मेरा यह पत्र और इस प्रकरण से सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पत्र उनके डेस्क पर रख दें। लेकिन दैव को यह मंजूर न था कि वह पत्र पूरा पढ़ा जाय, क्योंकि उसी शाम गांधीजी की हत्या हो गयी। बाद में मनुबहन ने मुझसे कहा था कि गांधीजी उस पत्र को आधा ही पढ़ सके थे। इसके बाद अपने उक्त पत्र की प्रतिलिपि मैंने कुमारप्पाजी को भेजी और उन्हें लिखा कि अगर वे स्वयं सिन्धिया कम्पनी के रेकार्ड देखना चाहें तो खुशी से देख सकते हैं।

मेरा उक्त पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने मुझे लिखा कि मेरे पत्र में दिये गये स्पष्टीकरण से उन्हें सन्तोष हुआ है और इस सम्बन्ध में उन्हें कम्पनी के रेकार्ड आदि अधिक कुछ देखना नहीं है।

●

१८१ सन् १९२४-२५ की बात है। सरकार ने विनिमय की दर बदलने का बिल बड़ी धारा-सभा में पेश किया और उस पर देश में भारी चर्चा चली। ब्रिटिश व्यापारी भारतीय व्यापारियों को नुकसान पहुँचाकर रुपये की कीमत १ शिलिंग ६ पेंस कराना चाहते थे। बम्बई के धनकुबेर एफ० ई० दीनशाजी इसके विरोध में चलाये गये आन्दोलन के अगुआ थे। उन्होंने मेरे पिताजी से कहा:

"इसके सम्बन्ध में गांधीजी का स्टेटमेण्ट (वक्तव्य) निकलवाया जा सके तो बड़ा काम हो। आप 'शान्ति' को साबरमती भेजिये।

१८० मलाबार, बम्बई आदि जहाजी कम्पनियों का प्रबन्ध बम्बई के सेठ सूरजी वल्लभदास करते थे। स्व॰ श्री वी॰ सी॰ कुमारप्पा उनके मित्र थे। वे सूरजीभाई के साथ शिमला की शिपिंग-कान्फ्रेंस में गये थे। वहाँ से लौटने पर उन्होंने 'हरिजन' में हमारी सिन्धिया कम्पनी के विरुद्ध यह आक्षेप किया था कि सिन्धिया कम्पनी बड़ी होने के कारण वह भारत की छोटी जहाज-रानी को अपनी जेब में रखना चाहती है। लेकिन असल में हकीकत यह थी कि सिन्धिया कम्पनी के संचालक स्व॰ वालचन्द सेठ छोटी जहाजी कम्पनियों का पक्ष लेकर भारत-सरकार से बराबर झगड़ते रहते थे। उनका यह कार्य इस हद तक चला कि उस समय की भारत-सरकार के व्यापार-मंत्री सर जोसेफ भोर को जिनके अधीन जहाजरानी का विभाग भी था इस मामले का फैसला देना पड़ गया था कि जिसके अनुसार हिन्दुस्तान के पश्चिमी तट पर चलनेवाली छोटी जहाजी कम्पनियों को जहाजी काम का ५ फी सदी और ब्रिटिश इण्डिया मोगल लाइन तथा सिन्धिया को केवल २ फी सदी हिस्सा मिला था।

कुमारप्पाजी के हमले के विरोध में मैंने गांधीजी से शिकायत की। लिखा: 'हम तो छोटी जहाजी कम्पनियों को हमेशा सँभालते रहे हैं। फिर भी हमारे पक्ष को बिना देखे-समझे कुमारप्पाजी इस तरह कहते और लिखते हैं, इससे हमारे साथ अन्याय होता है। आवश्यक समझें तो आप भी नरहरिभाई के समान किसीको सिन्धिया के काम का सारा इतिहास देख जाने के लिए कहिये और उनसे इस विषय की रिपोर्ट माँगिये।

गांधीजी ने मेरा पत्र कुमारप्पाजी को भेजा और उनका जो जवाब आया सो मुझे भेजा। मैंने फिर उसका जवाब लिखा।

अपने हाथ में रखकर बैठी हुई अनगिनत विदेशी कम्पनियाँ (अधिकतर ब्रिटिश) अपने नाम के साथ 'इण्डिया लिमिटेड' शब्द जोड़कर बड़ी मुस्तैदी के साथ अपने को देशी (भारतीय) कम्पनियों के रूप में पेश करने लगीं। मैं गांधीजी का ध्यान इन सब कार्यवाहियों के विरुद्ध भी खींचता रहता था और उनसे पत्र-व्यवहार करके उन्हें ऐसी कम्पनियों के नामों की सूचियाँ भेजा करता था। इस सम्बन्ध में भी गांधीजी ने और महादेवभाई, कुमारप्पा आदि ने 'हरिजन' पत्रों में लेख लिखे थे।

१८३ पिछले विश्व-युद्ध में ब्रिटिश-हुकूमत ने हिन्दुस्तान को उससे पूछे बिना ही युद्ध में फाँस लिया। गांधीजी ने इसके विरोध में हाथ ही प्राप्त प्रान्तीय सत्ता और मंत्रि-पद को ठुकराकर सविनय अवज्ञा-आन्दोलन शुरू करने की हिमायत की फलत सन् १९४२-४४ का 'भारत छोड़ो' और 'करेंगे या मरेंगे' आन्दोलन सारे देश में भड़क उठा। हुकूमत ने भी गांधीजी को कांग्रेस-वर्किंग कमेटी के उनके साथियों को और सारे देश के हजारों-लाखों कांग्रेसियों को ताबड़तोड़ गिरफ्तार करके जेलों में बन्द कर दिया साथ ही गांधी जी को और कांग्रेस को देश-विदेश में और सारी दुनिया में बदनाम करने के लिए जबरदस्त प्रचार किया। किसी मामले में पीछे मुड़ कर देखा ही नहीं!

हुकूमत लाखों भाँति लोगों को युद्ध-प्रयत्न में लगाकर लड़ाई को तो बराबर आगे चलाती रही लेकिन हिन्दुस्तान के समझदार तबको और उद्योगपतियों का पूरा सहयोग उसे प्राप्त है, यह दिखाने के लिए वाइसराय लिनलिथगो ने भारतीय उद्योगपतियों के एक 'प्रातिनिधीय' शिष्ट-मण्डल को इंग्लैण्ड-अमेरिका भेजने की व्यवस्था की।

मैंने कहा : मैं समझा नहीं सकूँगा और गांधीजी बिना समझे स्टेटमेण्ट नहीं देंगे।

स्वर्गीय बालचन्द काका उन दिनों इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर के अध्यक्ष थे। वे मेरे साथ चलने को तैयार हुए। चेम्बर के मंत्री स्व. जमसुख मेहता भी साथ थे। हम अहमदाबाद पहुँचे। सेठ अम्बालाल साराभाई के घर ठहरे। अम्बालाल सेठ भी हमारे साथ आश्रम तक चलने को तैयार हुए। बोले :

"हम शंकरलालभाई (बैंकर) और अनसूयाबहन को भी अपने साथ ले चलें।

इस तरह एक बड़ा-सा काफिला गांधीजी के पास पहुँचा।

गांधीजी ने शान्तिपूर्वक उनकी बातें सुनीं। फिर बोले :

जिस तरह तीन धूर्तों ने मिलकर ब्राह्मण से उसकी बछिया छीन ली थी मुझे तो आपका यह मामला भी कुछ वैसा ही मालूम होता है। लेकिन कागज-पत्र छोड़ जाइये। सब कुछ पढ़-समझकर बाद में स्टेटमेण्ट दूँगा।

दिया तो सही लेकिन देर से दिया। इस बीच बड़ी धारा-सभा में सरकारी बिल पास हो चुका था।

१८२. विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, स्वदेशी मिल-उद्योग आदि के आन्दोलनोंवाले उन पुराने वर्षों में बम्बई में 'स्वदेशी लीग' नाम का एक संगठन बना हुआ था। उसके कार्य-क्षेत्र और उसकी प्रवृत्तियों के बारे में भी मैं प्रायः गांधीजी के साथ पत्र-व्यवहार द्वारा चर्चा किया करता था। इसके अतिरिक्त उन बाद के वर्षों में इस बात के चिह्न प्रकट होने लगे कि राज-सत्ता की बागडोर भारतीय जनता के हाथ में आयगी तो इस देश के व्यापार-उद्योग का पूरा ठीका

इस सिलसिले में भारतीय व्यापारी-संघ को अथवा दूसरे चम्बरों और मण्डलों में से किसीको कुछ पूछा नहीं गया ! शिष्ट मण्डल में जानेवालों का चुनाव भी सरकार ने ही कौमी आधार पर किया। सरकार की पसंदगी के बाहर का एक भी सदस्य उसमें नहीं था। शिष्ट-मण्डल के मंत्री के रूप में भी एक सरकारी अधिकारी को ही पसन्द किया गया था लेकिन किसी कारणवश बिलकुल आखिरी वक्त पर उसे बदलकर बिड़लाजी के 'ईस्टर्न इकॉनामिस्ट' नामक पत्र के सम्पादक डॉ लोकनाथन् को सम्मिलित किया था।

इस प्रकार यद्यपि यह शिष्ट-मण्डल पूरी तरह सरकारी छाप (छाप) का था फिर भी दिखाया कुछ ऐसा गया था मानो इसमें जानेवाले उद्योगपति ब्रिटेन-अमेरिका के उद्योगपतियों के साथ सहयोग बढ़ाने के लिए अपनी ही इच्छा और प्रेरणा से स्वयं जा रहे हों।

इस शिष्ट-मण्डल मे गांधीजी के प्रसिद्ध प्रशंसक और मशहूर उद्योगपति बिड़लाजी भी थे ही। सबसे अधिक संताप करनेवाली बात तो यह थी कि जिस समय देश के सारे राष्ट्रीय नेता और हजारों-हजार कार्यकर्ता जेलों में बन्द थे ऐसे समय 'स्वेच्छा से जानेवाले एक 'प्रजासत्ताक' शिष्ट-मण्डल को इस देश के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करके ब्रिटिश हुकूमत दुनिया की आंखों में धूल झोंकना चाहती थी।

शिष्ट-मण्डल के सदस्यों न भी अपनी पत्रकार-परिषदा में और वक्तव्यों आदि में इस बात का दावा किया कि वे स्वयं अपने खर्च से और 'प्रजासत्ताक' रूप से जा रहे हैं। और बिड़लाजी ने तो इग्लैण्ड म रायटर वालों को दी गयी अपनी एक मुलाकात में यह

गांधीजी के

इस सारे षड्यन्त्र की पोल खोलने की दृष्टि से मैंने समाचार पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित करवाया। उसमें मैंने इस शिष्ट मण्डल की प्रेरणा और रचना के मूल में निहित सरकार की पूरी कार्रवाई का पर्दाफाश किया और वाइसराय तथा उद्योग-मंत्री आदि के अपने ही समय-समय पर दिये गये वक्तव्यों को उद्धृत करके किया। और लिखा कि जिस समय सारे देश की जनता अपनी स्वतन्त्रता के लिए अपने जीवन-मरण की अन्तिम लड़ाई लड़ रही थी उस समय विदेशी हुकूमत का हस्तक अथवा पिट्ठू बनकर गया हुआ इस प्रकार का शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड-अमेरिका के साथ जो कुछ भी सौदे और समझौते करेगा उन्हें स्वतन्त्र भारत कभी मंजूर नहीं कर सकेगा!

मैंने गांधीजी के 'आशीर्वाद' वाली बात को भी चुनौती दी और कहा कि वे 'आशीर्वाद' व्यक्तिगत रूप से बिड़लाजी की यात्रा की सफलता की कामना करनेवाले ही हो सकते हैं उनके मिशन की सफलता के लिए नहीं। गांधीजी के आशीर्वाद हिन्दुस्तान के नंगों-भूखों के हितों की रक्षा के लिए होंगे या उन्हें हानि पहुँचाने के लिए?

मेरे इस वक्तव्य का देश-विदेश में सब कहीं अच्छा प्रभाव पड़ा। मेरे नाम इस आशय के पत्र भी आये। बाद में शिष्ट मण्डल के एक सदस्य ने मुझसे कहा था कि मेरा वक्तव्य विलायत में उन लोगों के लिए काफी बाधक बना था। उन लोगों के बीच अन्दर-ही-अन्दर आपस की खींच-तान भी थी ही। प्रत्येक व्यक्ति ने जिसका काम जो उद्योग था उन्हींके लिए जोर लगाया!

कुल मिलाकर इस मिशन को कोई खास सफलता नहीं मिली। वर्किंग कमेटी रिहा की गयी और उसके सारे सदस्य गांधीजी

गांधीजी के

का काफी मिल सकती। एक बार जिस आश्रम में इस प्रकार के तेल बन सकते थे उसमें तेल का नहीं रहा था तो गांधीजी खुद ही उस धन्धा करने बैठ गये थे। उस समय मैं वहीं था।

१८९. गांधीजी की आँखों के सामने गाँवों में रहनेवाले गरीब दरिद्रनारायण ही सदा बने रहते थे। इन गाँवों को ध्यान में रख कर ही उनका सारा आयोजन और उनकी अर्थ-नीति बना करती थी। बिजली, सेप्टिक टैंक आदि के उपयोग के विरुद्ध उन्हें सिद्धान्त की दृष्टि से कोई आपत्ति नहीं थी। उनके ध्यान में मुख्य बात यही रहती थी कि गाँवों के लोग इनका उपयोग सहज ही कर सकें और उनके लिए ये चीजें सरल और सस्ती हों। भाँति भाँति के गृह उद्योगों और दस्तकारियों का, जो गरीब-अमीर सबके दैनिक जीवन को सरल बनाने में और उनकी सुख-सुविधा तथा आरोग्य को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हों, आयोजन-सँवारने और सजीव करने में उनकी रुचि असीम थी।

गांधीजी उन छोटे यंत्रों, मशीनों अथवा कल-कारखानों के विरोधी नहीं थे जो रोजगारी (दैनिक मजदूरी) से मजदूरी करनेवाले मनुष्य की मेहनत को कम करके उसके उत्पादन का सरल-सीधा साधनमात्र हो और रोज-रोज उसके हाथ-पैरों और दिल-दिमाग को भी भार रूप उस बेकार होनेवाले मजदूर के शरीर और शरीर से लगातार काम में सहायक होते हों और जिनके कारण उसकी बुद्धि के और शिल्प-कौशल के बढ़ने तथा विकसित होने की पूरी-पूरी गुंजाइश हो। वे हमेशा कहा करते थे कि सिलाई की सिंगर मशीन की खोज करनेवाले ने मनुष्य को सदा के लिए कठिन श्रम से बचाकर समाज का महान् उपकार किया है।

१८४ मैं खादी की तरह ही ग्रामोद्योगों को पुनरुज्जीवित करने के काम में भी जी-जान से दिलचस्पी लेता था। हाथ-कागज का उपयोग करता था यही नहीं बल्कि कम्पनी के सरकारी पत्र-व्यवहार में भी यथासम्भव उसीका आग्रह रखता था।

बिजली के बीटर के आने के बाद हाथ-कागज को बनाने में लगनेवाले श्रम में सुधार हुआ लेकिन इसके कारण कागज को सहज ही पहचानना सम्भव न रहा। मैंने गांधीजी से पूछा

'आप बिजली के उपयोग में विश्वास नहीं करते। लेकिन आश्रम के कुएँ पर बिजली से पम्प चलता है और हाथ-कागज में लुगदी की कुटाई (बीटिंग) भी बिजली से होती है। ऐसा क्यों?'

'हाथ की कुटाई में मनुष्य को हद से ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। हाथ के उद्योग का मतलब यह नहीं है कि श्रम-दान उत्पन्न करने में शरीर-श्रम की बचत करनेवाले साधनों की खोज न की जाय। जब मैसूर की तरह देश के हर गाँव और हर झोंपड़े में बिजली पहुँचेगी तब घरेलू धन्धों में अथवा खेती में उसका उपयोग करने के विरुद्ध मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।'

१८५ गांधीजी एक मिकैनिक का दिमाग भी रखते थे। सन् १९२२ के कारावास के दिनों में उन्होंने यरवदा-चक्र की खोज की थी। सिलाई की सिंगर मशीन में और अधिक सुधार किस प्रकार हो इसके लिए तैयार नक्शों के साथ उन्होंने अपने सुझाव सिंगर कम्पनी को भेजे थे। सिंगर कम्पनी के बम्बई-कार्यालय के मैनेजर ने मुझसे यह बात कही थी।

गांधीजी कहा करते थे कि विदेशी वासलेट की अपेक्षा देश के अखाद्य वनस्पति-तेलों का उपयोग किया जाय तो इससे गरीबों

वे किंडरगार्टन-बालकों की तरह ही यहाँ के भी लोगों पट्टियों का अथवा डबल रोटी का चलन बढ़ाया जाय। आश्रमों में डबल रोटी बनवाने के साधन जुटाने में और आश्रमवासियों को भठियारे (बेकर) का काम व्यवस्थित और वैज्ञानिक रीति से सिखाने में भी वे उतनी ही दिलचस्पी रखते थे। इसके लिए वे कुशल भठियारों का पता लगाकर उन्हें आश्रम में बुलाते थे और उन्हें सुविधाएँ वहीं करते थे जिससे आश्रमवासी इस काम को भलीभाँति सीख सकें। वे बहुत चाहते थे कि घरों में भी दूध और मक्खन की तरह ही ऐसी कोई व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कोई भी गृहिणी साफ करके रखे हुए ताजा मुट्ठी तिलहन से साग-सब्जी छौंकने के लिए तोला-दो तोला अथवा छटांक-आधी छटांक ताजा तेल अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने हाथों उसी तरह निकाल सके जिस तरह वह चटनी अथवा अदरक और हरी धनिया अपने हाथों पीस लेती है। यदि कोई ऐसा छोटा सस्ता (घरेलू यन्त्र) आज निकाल और बनाये तो आज का मिलावटवाला तेल आप से घर-घर में पैसेवाली लोगों की बीमारी आशीर्वाद हट जाय। इसी तरह की दिलचस्पी उन्हें विस्तृत पैमाने में मधुमक्खियों का पालन करने में और शहद व छत्तों को निचोड़कर शहद निकालने की अद्यतन शुद्ध रीतियों का और उनके लिए आवश्यक यंत्रों आदि का अध्ययन करने-कराने में भी थी। इसी तरह आरोग्य आहार-शास्त्र खान-पान के प्रयोग मालिश मिट्टी के प्रयोग प्राकृतिक उपचार होमियोपैथी विविध और आदि-आदि विविध विषयों में उनकी गहरी रुचि और लगन थी।

इन्दौर में गांधीजी की बड़ी राष्ट्रीय आयोजन (प्लानिंग) अथवा सर्व-नीति स्वीकार को लिखना हिन्दुस्तान के १५ साल

उनका विरोध उन यन्त्र-संत्रों और आयोजनों से था जो मनुष्य को उसके स्थान से हटा देते हैं, सैकड़ों-हजारों को बेकार बनाकर उन्हें मशीन के रूप की हालत में डाल देते हैं और जो बहुत बड़े पैमाने पर केन्द्रीकृत उत्पादन को बढ़ावा देते हैं। वे यह मानते और कहा करते थे कि इस प्रकार के आयोजन ४ करोड़ की घन संख्यावाले और उस दिशा में बड़ी तेजी से बढ़ते रहनेवाले राष्ट्र के लिए आत्मनाश की सामग्री है। आम लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए उनके करोड़ों हाथ करोड़ों भुजाएँ और चरखों में मुक्तियाँ काफी हैं इसलिए रेलवे जहाज आदि जैसे कुछ बड़े राष्ट्रीय उद्योगों के अलावा बाकी का सारा उत्पादन जापान अथवा स्विट्जरलैण्ड की तरह सारे देश में चारों ओर स्वतन्त्र मन बुद्धिवाले स्वाधीन मनुष्यों के हाथों उनके घर-आँगन में होना चाहिए।

१८७ इस प्रकार रोज रोज के घरेलू उपयोग की चीजों और साधनों की मरम्मत के काम में अथवा उनकी खोज और उनके संशोधन के विषय में और ऐसी अन्य बातों को सोचने-समझने में उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। यह तो एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्य है कि गांधीजी ने जेल में यरवदा-चक्र नामक चरखे की खोज की थी अथवा उसे सम्पूर्णता प्रदान की थी। दीया-बत्ती और लालटेन के मुँह अथवा उसकी बत्ती के सुधार पर या उसकी खोज-बीन पर, उसमें पानी जानेवाली हवा गैस अथवा गरम होने की व्यवस्था और निर्माण के मूल में विद्यमान वैज्ञानिक नियमों को समझने में वे घण्टों अपना समय बिताया करते थे। हमारे देश की स्त्रियों का जितना समय और जितनी शक्ति रोटियाँ बेलने में बरबाद होती है उसे वे बिलकुल बेरजरूरी मानते थे और इस बात की हिमायत करते

१७

सेवाग्राम (आखिर के वर्ष)

आतिथ्य प्रियता

सन् १९४४ में गांधीजी के जेल-वास के बाद जब कभी गांधीजी सेवाग्राम में होते तो अक्सर श्री [illegible] अपने और मैं कुछ दिन उनके पास रहने के लिए जाते। हम दोनों सेवाग्राम के मेहमान-घर में एक ही कमरे में एक साथ रहते। एक बार वहाँ [illegible] को मलेरिया बुखार आ गया। उनकी हमेशा की रीति के अनुसार गांधीजी रोज सुबह शाम उन्हें देखने आया करते। रात में मसहरी लगाई गयी है या नहीं आदि बातों की पूछताछ करते और [illegible] में सेवा-शुश्रूषा के लिए जो कोई भी [illegible] उसका [illegible] किया करते।

मेहमान चाहे छोटा आया हो या बड़ा, गांधीजी उसकी रहन-सहन का ध्यान बराबर रखते ही रहते थे

चाय दी

मसहरी लगायी

कम्बल दिया ?

सेवाग्राम में रहने के नाते में आश्रमवासियों का [illegible] और मेहमानों का [illegible] [illegible] [illegible] गये थे। सन् १९४४ में दो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए सेवाग्राम गया था। गांधीजी के उन्हें [illegible] में [illegible] था।

गाँवों में रहनेवाले गरीब लोग और उनकी घर-गृहस्थी आज जिस तरह अपनी जन्म-भूमि से उखड़कर शहरों में रहनेवाले बुद्धिजीवी वर्गों के शोषण का शिकार बनती है और चूर-चूर होती जा रही है, उससे उसे बचाया जा सके, जिससे लोगों की सारी प्राथमिक आवश्यकताएँ विकेन्द्रित रीति से घर-घर के उद्योग और उत्पादन द्वारा पूरी हो सकें, देश स्वयंपूर्ण बन सके, समूचे देश में घर-घर सम्पत्ति पैदा हो और वह देश के हर घर में बराबर बँटती रहे। ●

गांवों में रहनेवाले गरीब लोग और उनकी घर-गृहस्थी आज जिस तरह अपनी जन्म-भूमि से उजड़कर शहरों में रहनेवाले बुद्धिजीवी वर्गों के शोषण का शिकार बनती है और चूर चूर होती जा रही है उससे उसे बचाया जा सके जिससे लोगों की सारी प्राथमिक आवश्यकताएँ विकेन्द्रित रीति से घर-घर के उद्योग और उत्पादन द्वारा पूरी हो सकें देश स्वयंपूर्ण बन सके समूचे देश में घर-घर सम्पत्ति पैदा हो और वह देश के हर घर में बराबर बँटती रहे। ●

भारत में चलाया जाने लगा। अतएव दादी-माँ ने यह बची हुई रकम सचमुच में जन अस्पताल को दी। गांधीजी ने स्वयं पत्र लिखकर उसकी पहुँच भेजी और लिखा कि इस रकम का उपयोग मेरे अस्पताल के लिए आश्रम भुगान में किया जायगा।

मेरी दादी-माँ ने अपनी मृत्यु से पहले एक और दान कस्तूरबा-ट्रस्ट को दिया था। इस दान में सोमनाथ के निकट यात्रियों के उपयोग के लिए पोरबन्दरी में बनी एक पुरानी धर्मशाला उससे लगी हुई जमीन और उससे सम्बन्ध रखनेवाली लगभग १२ हजार रुपयों की नकद रकम थी।

असल में यह दान जूनागढ़ में प्रभास-सोमनाथ आनेवाले उन यात्रियों के लिए दिया गया था जो रात सोमनाथ में ठहरते थे, खासकर साधुओं के लिए। अब चारों ओर मोटर-बसों की व्यवस्था हो जाने से यात्रियों की दृष्टि से उसका कोई खास उपयोग नहीं रहा। इसलिए दादी-माँ ने यह ट्रस्ट कस्तूरबा-ट्रस्ट को उसकी प्रवृत्तियों के लिए सौंप दिया।

१५३ सन् १९४८ के जनवरी महीने में गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता के काम से [illegible] को और डॉ. [illegible] मेहता को पाकिस्तान भेजा था। ३० जनवरी के दिन जब गांधीजी की हत्या हुई तब दोनों कराची ही थे। लेकिन समाचार मिलने पर स्मशान-यात्रा के समय दिल्ली आ पहुँचे थे।

१५४ प्रभात फिल्म कम्पनी के श्री शान्तारामजी के साथ मालचन्द काका की गाढ़ी मित्रता थी। शान्तारामजी की एक उत्कट इच्छा यह थी कि किसी भी तरह गांधीजी किसी फिल्म में भाग लें। घूम-फिरकर बात मुझ तक पहुँची।

डॉक्टर ने उनके लिए मांसाहार की जरूरत बतायी। गांधीजी ने उसकी व्यवस्था करवा दी।

१९० मैं जब भी सेवाग्राम जाता अपने साथ पुस्तकें मौसमी फल और इसी तरह की कुछ चीजें ले जाया करता था। एक बार वहीं से प्राप्त ताजा स्ट्रॉबेरी ले गया था। भोजन के समय गांधीजी कहने लगे 'दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के बाद आज इन्हें पहली ही बार देख रहा हूँ'।

१९१ हम दोनों जहांगीरजी और मैं लगभग हर महीने एक साथ सेवाग्राम जाते थे। हमने सेवाग्राम में अपने लिए एक छोटा घर बनाने की बात भी सोची थी। योजना यह थी कि जब हम सेवाग्राम जायें तो उसमें रहें और जब हम न हों तब जिन मेहमानों के लिए गांधीजी चाहें उसका उपयोग हो। आश्रम की सीमा के बाहर सोबुगाधजी मेहमान-घर था। तय हुआ कि उसकी बगल में हमारा घर बने। गांधीजी ने स्वीकृति भी दी लेकिन वह जमीन जिनके हाथ में थी उनकी स्वीकृति नहीं मिली। फिर तो गांधीजी दुबारा कभी सेवाग्राम गये ही नहीं इसलिए यह मानकर कि जो हुआ ठीक ही हुआ हमने ईश्वर का आभार माना। हमने यह भी सोचा था कि जिन्होंने हमें जमीन देने से इनकार किया था उन्हें हम आभारसूचक पत्र लिखें।

१९ मेरी दादी-माँ ने बरसों पहले नासिक के एक अस्पताल को दान दिया था। उसकी कुछ रकम बच गयी थी जो औषधो-पचार के काम के लिए अलग होकर पड़ी हुई थी। समय बीतने पर वह रकम ब्याज-सहित लगभग पाँच हजार तक पहुँची थी। इस बीच नासिक का अस्पताल सरकारी बन गया इसलिए वह सरकार की

"तारीख नहीं लिखी जा सकती। उसके पहले भी मैं जाऊँ तो यह पूरी साबित हो!

तारीख उन्होंने नहीं ही लिखी!

१९६ बम्बई नगर में एक-दूसरे से सटी हुई विभिन्न जातियों की मिली-जुली आबादी वर्षों से बसी आ रही है। वहाँ अपने-अपने रोजगार-धन्धों में लगी हुई हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि भिन्न-भिन्न जातियों ने अपने नित्य प्रति के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवहार जातिगत भावना से प्रेरित हुए बिना भाई-चारे के साथ मुहब्बत से और हिल-मिलकर चलाने की अनेक प्रथाएँ कायम रखी थीं। इनमें से एक प्रथा यह थी कि नगर की अनेक सार्वजनिक संस्थाओं और मण्डलों में पद अधिकार के स्थानों की पूर्ति बिना किसी प्रतिस्पर्धा के बारी-बारी से जाति-वार की जाय। नागरिकों के 'कॉस्मोपॉलिटन' स्वभाव की साक्षी-रूप यह प्रथा बम्बई नगर के म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन में और दूसरे कई सार्वजनिक तथा व्यापारी संस्थाओं में वर्षों से चली आ रही थी। बम्बई के नागरिक भी इसी रंग में घुल गये थे।

लेकिन जैसे-जैसे समय बीता, बम्बई में क्रिकेट के मैच जातीय आधार पर हिन्दू, मुसलमान, अथवा पारसी आदि के नामों से टीमें तैयार करके खेले जाने लगे। लेकिन इसके कारण भारी जातीय घृणा और उत्तेजना उत्पन्न होने लगी, इसलिए बम्बई में इस प्रथा को बन्द करने का एक आन्दोलन चल पड़ा। इस पर हिन्दू जीमखाना के एक मुखिया ने मुझसे कहा कि वे इस मामले में गांधीजी से मिलना चाहते हैं। वे स्वयं इस आन्दोलन के विरोधी थे। मैंने उनसे कहा :

"इस मामले में आपको गांधीजी का समर्थन नहीं मिलेगा।

चरखे की कोई बात हो तो वह गांधीजी को अच्छी लगे और वे उसके लिए समझायें।

महादेवभाई की भी अनुकूलता थी। मैंने गांधीजी से कहा :

अगर आप एक बार चरखे की सब क्रियाओं का प्रदर्शन अपनी कमेण्टरी के साथ दें तो शान्तारामजी उसकी फिल्म मुफ्त में तैयार कर देंगे और उसे गांव-गांव में दिखायेंगे।

यह प्रस्ताव तुम्हारा नहीं है। लेकिन इसे लेकर आये हो तो इस बहाने कुछ सुन लो। मैं कौन सारे हिन्दुस्तान के एक-एक गांव में घूमा हूं? फिर भी लोग मुझे पहचानते हैं और लाखों लोगों ने चरखा चलाने के मेरे सन्देश को बिना मुझे देखे या सुने ही अपना लिया है। मैं तो दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि हूं। विलायत में मुझसे एक जबरदस्त भूल यह हो गयी कि मैंने वहां अपना एक रेकार्ड उतरवाने दिया। इस पाप का पूरा प्रायश्चित्त मैं कभी नहीं कर पाऊंगा। दूसरों ने मुझे उसमें फंसा लिया था। इसी तरह इस मामले में भी मेरे आसपास के लोगों ने ही तुमको आगे किया है।

१९४५ बम्बई में सरदार वल्लभभाई पटेल का ७० वां जन्म-दिन मनाया जानेवाला था। उससे कुछ दिन पहले मैं सेवाग्राम गया था। अपने साथ गांधीजी का एक बड़ा-सा फोटोग्राफ ले गया था। मैंने उसे उनके सामने रखा और प्रार्थना की कि वे उस पर सरदार का नाम लिखकर अपना आशीर्वाद भी लिख दें। खुलासे के तौर पर कहा : मैं इसे सरदार को उनकी जन्म-तिथि के दिन सुबह भेंट करना चाहता हूं। गांधीजी ने सरदार के नाम के साथ आशीर्वाद लिख दिया।

मगर नीचे सरदार के जन्म-दिन की तारीख भी लिख दीजिये।

भिगा जाय और उस भूसे का वही आटा बनाकर खाया जाय। सब जानते हैं कि गांधीजी आहार-सम्बन्धी प्रयोगों में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने आश्रम में सोयाबीन के प्रयोग शुरू करवाये। अनुभव से पता चला कि उनमें प्रोटीन इतना अधिक है कि उसे पचाना कठिन हो जाता है। फिर उसकी गन्ध भी उग्र होती है। इस कारण खानेवाले के मन में उसके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

इस प्रकार थोड़े ही समय में सोयाबीन का यह प्रयोग अपने आप बन्द हो गया।

१९९ सेवाग्राम में गांधीजी का शौचालय और दूसरी टट्टियाँ बहुत ही साफ रहती थीं लेकिन वे देहाती ढंग की थीं। उन पर उपयोग के बाद हर बार सूखी मिट्टी हमेशा भरपूर डाली जाती थी जिससे बदबू, मक्खी या मच्छर बिलकुल पैदा नहीं हो सकती थी। एक बार मैंने गांधीजी को सुझाया कि आश्रम में सब जगह सेप्टिक टैंकवाली टट्टियाँ बनवा देनी चाहिए। मेरी दलील यह थी कि सर्वोत्कृष्ट सम्पूर्ण वैज्ञानिक और आधुनिक रीति यही है। गांधीजी को ऐसा करने में आपत्ति नहीं थी। लेकिन उन्होंने कहा

"अगर कोई ऐसी सादी और सस्ती टट्टियाँ बनाकर दे कि जिन्हें बिलकुल गरीब ग्रामवासी लोग भी गाँवों में अपने घरों के अन्दर बनवा सकें तो उनके उपयोग के विरुद्ध मैं बिलकुल आपत्ति नहीं करूँगा।

ये चर्चाएँ कुछ समय तक चलती रहीं। बाद में मैसूर के एक इन्जीनियर पोलैण्ड-निवासी श्री मॉरिस फ्रिडमन (भारतानन्द) ने जो सेवा-निवृत्त होने के बाद सेवाग्राम में रहने लगे थे वैसा एक सेप्टिक टैंक तैयार कर दिया। गांधीजी ने उसे बिना किसी आना-कानी के बनवाया और स्वयं उसका उपयोग करने लगे।

१

फिर भी वे गांधीजी के पास पहुँच ही गये।

गांधीजी ने बड़े शिष्टाचार के साथ उनका स्वागत किया। उनकी सारी बातें और दलीलें बड़े ध्यान के साथ धैर्यपूर्वक सुन लीं। लेकिन अन्त में दृढ़तापूर्वक अपनी यही राय प्रकट की कि इस तरह साम्प्रदायिक आधार पर खेले जानेवाले मैच बन्द होने चाहिए।

१९७. उन्हीं दिनों बम्बई के इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर के उपाध्यक्ष श्री हातम प्रेमजी नामक एक मुसलमान व्यापारी थे। चेम्बर की अपनी परम्परा के अनुसार जो उपाध्यक्ष होता था वही अगले साल अध्यक्ष बनता था। लेकिन चूँकि उस समय हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच खिंचाव चल रहा था इसलिए कुछ हिन्दू सदस्यों ने श्री हातम प्रेमजी को चेम्बर का अध्यक्ष चुनने के विरुद्ध एक हलचल शुरू की। एक कारण उनकी छोटी उम्र का भी दिया गया।

गांधीजी इस चेम्बर के एक पैट्रन (संरक्षक) थे। कोई एक सदस्य उनके पास पहुँच गये और उन्होंने इस सम्बन्ध में गांधीजी की राय जाननी चाही। गांधीजी इस कार्रवाई की जड़ में निहित भाव को तुरन्त ही ताड़ गये और उन्होंने अपनी यह राय दी "चेम्बर में जो परम्परा चली आ रही है उसे बन्द करने का कोई कारण नहीं परम्परा के अनुसार श्री प्रेमजी को ही अध्यक्ष के रूप में चुनना चाहिए।

१९८ उन दिनों इन्हीं वर्षों में हमारे देश में सोयाबीन का प्रचार शुरू हुआ था। सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा अधिक है। सिफा- रिश की जाती थी कि सोयाबीन को भिगोकर उसका दूध तैयार

गांधीजी के

लिया जाय और उस भूसे का सही खाद बनाकर खाया जाय। सब जानते हैं कि गांधीजी आहार-सम्बन्धी प्रयोगों में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने आश्रम में सोयाबीन के प्रयोग शुरू करवाये। अनुभव से पता चला कि उसमें प्रोटीन इतना अधिक है कि उसे पचाना कठिन हो जाता है। फिर उसकी गन्ध भी उग्र होती है। इस कारण खानेवाले के मन में उसके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

इस प्रकार थोड़े ही समय में सोयाबीन का यह प्रयोग अपने आप बन्द हो गया।

१९९ सेवाग्राम में गांधीजी का शौचालय और दूसरी टट्टियां बहुत ही साफ रहती थीं लेकिन वे देहाती ढंग की थीं। उन पर उपयोग के बाद हर बार सूखी मिट्टी हमेशा भरपूर डाली जाती थी जिससे बदबू, गन्दगी या मक्खी बिलकुल पैदा नहीं हो सकती थी। एक बार मैंने गांधीजी को सुझाया कि आश्रम में सब जगह सेप्टिक टैंकवाली टट्टियां बनवा लेनी चाहिए। मेरी दलील यह थी कि सर्वाधिक सम्पूर्ण वैज्ञानिक और आधुनिक रीति यही है। गांधीजी को ऐसा करने में आपत्ति नहीं थी। लेकिन उन्होंने कहा

"अगर कोई ऐसी सादी और सस्ती टट्टियां बनाकर दे कि जिन्हें बिलकुल गरीब ग्रामवासी लोग भी गांवों में अपने घरों के अन्दर बनवा सकें तो उनके उपयोग के विरुद्ध मैं बिलकुल आपत्ति नहीं करूंगा।

ये चर्चाएँ कुछ समय तक चलती रहीं। बाद में मैसूर के एक इन्जीनियर पोलैण्ड-निवासी श्री मॉरिस फ्रिडमन (भारतानन्द) ने जो सेवा-निवृत्त होने के बाद सेवाग्राम में रहने लगे थे वैसा एक सेप्टिक टैंक तैयार कर दिया। गांधीजी ने उसे जिस किसी खाली जगह में बनवाया और स्वयं उसका उपयोग करने लगे।

'सैण्ड पेपर'!

२०० एक बार कोई एक बड़े भारतीय अधिकारी अपने परिवार और मित्रों के साथ गांधीजी के पास सेवाग्राम पहुँचने के लिए वर्धा से चले। रास्ते में मोटर बिगड़ गयी इसलिए उनका पूरा दल पैदल चलकर सेवाग्राम पहुँचा। पहले तो उक्त अधिकारी ने इस बात के लिए क्षमा माँगी कि मोटर के बिगड़ जाने से वे निश्चित समय पर पहुँच नहीं पाये।

गांधीजी 'मोटर को क्या हो गया था? क्यों रुक गयी?'

'मशीन में मोर्चा लग गया है। उसे छुड़ाने के लिए रेगमाल (सैण्ड पेपर) की जरूरत थी ड्राइवर के पास वह था नहीं। और यहाँ इस जंगल के बीच कहाँ मिलता? इसलिए हम पैदल चलकर आये।

गांधीजी ने अपनी छोटी-सी मेज में से रेगमाल का एक छोटा टुकड़ा निकालकर अधिकारी के हाथ में रखा! उन सज्जन के आश्चर्य का पार न रहा। पूछा

'आप यह 'सैण्ड पेपर' किसलिए रखते हैं?

'तकुआ घिसने के लिए।

अधिकारी महोदय ने उस टुकड़े को संभालकर अपने बटुवे में रखा। जब मुलाकात पूरी करके बाहर निकले तो कहने लगे

मैं रेगमाल के इस टुकड़े का उपयोग नहीं करूँगा। महात्माजी के साथ की इस मुलाकात की याद में हमेशा के लिए संभालकर रखूँगा और अपने बच्चों के लिए विरासत में छोड़ता जाऊँगा।

२०१ एक बार हाल ही निकले अखबार के एक गुजराती संवाददाता गांधीजी से मिलने आये। प्रेमाबहन के परिचितों में से थे। उन्होंने मुझसे उनका परिचय करा दिया। उन्होंने अभी

"ये भाई बापू से इण्टरव्यू करने आये हैं। आश्रम किस चिड़िया का नाम है, सो कुछ जानते नहीं। आप ही इन्हें सँभालिये।

उस भाई ने मुझसे पूछा : क्या गांधी सेवाग्राम में ही जनमे थे ? जमनालाल बजाज उनके बेटे होते हैं ?

बेचारे को आगा-पीछा कुछ मालूम ही न था।

गांधीजी ने उन्हें गुजराती में इण्टरव्यू देना शुरू किया। वे घबरा उठे। सुशीलाबहन हाजिर थीं। बोलीं :

"ये गुजराती नहीं जानते !

बाद में गांधीजी ने अंग्रेजी में चर्चा की।

संवाददाता ने अन्तर्जातीय मिश्र-विवाह अथवा ऐसे ही किसी विषय पर इण्टरव्यू ली थी।

२०२. श्री परचुरे शास्त्री नाम के एक कुष्ठरोगी सेवाग्राम आये थे। प्रसिद्ध बात है कि गांधीजी ने अपने यहाँ उनका स्वागत किया था और अपनी कुटिया के पीछे ही एक दूसरी कुटिया बनवाकर उन्हें उसमें रखा था। अक्सर उनके घाव धोने और पट्टी आदि बाँधने का काम गांधीजी खुद करते थे और उनके इलाज तथा उनकी सार-सँभाल आदि की फ़िक्र [illegible] बड़ी बारीकी से रखते थे। सुबह-शाम बिला नागा उनके समाचार पूछा करते।

उन्हें धूप में सुलाते। उनकी मालिश करते और उनसे बातचीत तथा हँसी-मजाक करके उन्हें प्रसन्न रखते।

एक बार टहलकर आने के बाद गांधीजी आखिर में शास्त्रीजी की कुटिया पर गये। शास्त्रीजी बिलकुल दिगम्बर दशा में धूप में लेटे हुए थे। मेरे गले में कैमेरा था। गांधीजी को लगा कि मैं शास्त्रीजी का फोटो लेने की कोशिश में हूँ। बोले :

"इसको कहीं फोटो न ले बैठना। विसम्बर स्थिति का नहीं किया सकता। जानते हो न?

'मेरा कैमरा बन्द है। फोटो खींचने का मेरा कोई इरादा न था।

सेवाग्राम में रहते हुए गांधीजी सुबह-शाम हवाखोरी को जाते तो आते-जाते बीमारों की खोज-खबर लिया करते थे। बीमारों के उपचार तथा सार-सँभाल की बातें तफ्सील से पूछते और सुझाते। तरह-तरह की सलाह देते इसमें कुदरती इलाज की बात मुख्य होती। एक से अधिक बीमारों पर गांधीजी के उपचार-सम्बन्धी प्रयोग चलते ही रहते! तरह-तरह के अनुभव प्रयोगों में परिवर्तन भी होते रहते। कुछ प्रयोग छोड़ भी दिये जाते। एक दिन हम सेवाग्राम में घूमने निकले। स्वर्गीय महादेवभाई हमारे साथ थे। उन्होंने २ साल की उम्र के एक नौजवान की ओर इशारा करते हुए हमसे कहा "बापू ने इसके सब दांत निकलवा दिये हैं। आजकल यही सलाह सबको देते हैं!

बंगाल के एक कार्यकर्ता श्री अमृतलाल चटर्जी की लड़की छोटी उम्र में ही सेवाग्राम में गांधीजी के पास रहकर बड़ी हुई थी। जब सन् १९४४ में उसकी सगाई अनुभाई गांधी के साथ हुई तो मैंने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि अगर लड़की के पिता राजी हो जायें तो मैं अपने हाथों उसका कन्यादान करूँ। गांधीजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। सम्भावना यह थी कि विवाह दिसम्बर में होगा। लेकिन उन्हीं दिनों गांधीजी के उपवास की चर्चा जारी हो गयी थी। इसलिए गांधीजी ने मुझे लिखा

गांधीजी के

'आभा के विवाह को दिसम्बर तक रोकने में कई कठिनाइयाँ देख रहा हूँ। उपवास मेरे नसीब में लिखा ही हो तो यही अच्छा है कि उससे पहले यह कार्य निपट जाय। तुम दोनों के और माँ-जी के भी प्रेम को मैं समझ सकता हूँ किन्तु तुम सब इस कठिनाई को समझ सकोगे। यदि आभा के पिता न आये अथवा आने पर भी उन्होंने आग्रह न किया तो तुम और सुमति सहर्ष कन्यादान करना। लेकिन चूँकि तुम इतने निकट के बन गये हो इसलिए यह याद रखना कि तुम्हें आभा और कनु की सादगी का अनुकरण करना है। नहीं तो वे दोनों खो जायेंगे। हम तो यही चाहते हैं न कि यह अन्तर्प्रान्तीय और विजातीय विवाह हर तरह आदर्श सिद्ध हो!

दूसरे ही दिन एक और पत्र लिखा

"तुम्हें तार किया है मिला होगा? भाई अमृतलाल अपनी लड़की और छोटे लड़के के साथ आये हैं। सारा परिवार सहमत हो चुका है। अमृतलाल कहते हैं कि तुम कन्यादान खुशी से दे सकते हो। इसलिए सब कुछ सरल बन गया है। तुमको जहाँगीर जी को और जिन्हें लाओगे उनको यहीं ठहरा दूँगा। माँजी को कष्ट नहीं देना है। उनके तो आशीर्वाद ही पर्याप्त हैं।

असल में मेरी इच्छा यह थी कि यह विवाह गांधी-जिन्ना वार्तालाप के दिनों में बम्बई में ही हो जिससे मेरी दादी-माँ और दूसरे सगे-सम्बन्धी उपस्थित रह सकें। मेरे अन्तर्मन में एक लोभ यह भी था कि अगर इस विवाह में जिन्नासाहब को ला सकें तो लाऊँ। लेकिन उपर्युक्त परिस्थिति में विवाह आखिर सेवाग्राम में ही हुआ। हम दोनों और मेरी बहन मधुरी ही उसमें सम्मिलित हो पाये।

बस यही एक मेरा पहला और अन्तिम कन्यादान था। विवाह विधि पूज्य रविशंकर महाराज ने करवायी। कन्यादान में गांधीजी ने कन्या को केवल मंगलसूत्र एक जोड़ी खड़ाऊ चूड़ियाँ और एक जोड़ कपड़े ही मुश्किल से देने दिये। माथे में फूलों की वेणी भी बड़ी मुश्किल से लगाने दी। यह कहकर कि 'इसे बिगाड़ना नहीं है' उन्होंने मुझसे यह वचन लिया कि मैं विवाह के बाद भी उसे कुछ दूँगा नहीं। गांधीजी की इस आज्ञा को मैं आज तक पालता चला आ रहा हूँ और बहन आभा जब कभी मेरे घर आती-जाती है तो उसे एक खादी चप्पल-जोड़ और रेल के टिकट के अलावा और कोई चीज कभी देता नहीं हूँ।

९० एक और मौके पर मैंने सेवाग्राम में गांधीजी से पूछा था बहुतों का यह ख्याल है कि आपका यह आश्रम तरह-तरह के मनुष्यों के नमूनों का अजायबघर अथवा 'मैड-हाउस' (पागलखाना) है। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

इस मैड-हाउस का सरदार कौन है? मैं ही या दूसरा कोई? तुम्हीं बताओ कि सेवाग्राम-आश्रम में सयाने लोग कितने हैं?

जितने विवाहित हैं। जैसे महादेवभाई, किशोरलालभाई, नरहरिभाई और बा।

अच्छा वही सही लेकिन इन सबका भी सरदार तो मैं ही हूँ न? उस हालत में मैं सयानों का भी सरदार तो हुआ न? लेकिन मुझे तो ये दोनों उपाधियाँ समान रूप से प्रिय हैं।

इसके बाद बहुत गम्भीर होकर कहने लगे

तुम्हारी बात सच है। यह आश्रम पागलों की प्रयोगशाला के रूप में पहचाना जाय तो इसमें मुझे छोटेपन का अनुभव नहीं

होता। सचमुच ही मैं यहाँ भाँति-भाँति के प्रयोग करके जीवन के सत्यों का अन्दाज लगाता हूँ। तुमने जिन तरह-तरह के नमूनों की बात कही है, उनके साथ मुझे दिन-रात अपने दिल-दिमाग को ठंडा रखकर व्यवहार करना पड़ता है, बस जाना होता है, ये सब मेरे प्रयोग ही हैं।

ऐसे तरह-तरह के नमूनों में से एक ही का वर्णन यहाँ करता हूँ। किसी एक धनी वैष्णव-परिवार की लड़की को उसके पिता पसन्द जगह ब्याहना चाहते थे, इसलिए वह गांधीजी के पास आकर रहने लगी थी। गांधीजी की कुटिया के पीछे रहती थी। सवेरे जल्दी उठकर नहाने-धोने के बाद फूलों के ढेर इकट्ठा करके पूजा किया करती। सारा दिन बार-बार गांधीजी के पास आकर उन्हें किसी-न-किसी बहाने परेशान किया करती। इसलिए सब कोई उसे एक बड़ी आफत समझते थे। एक दिन वह पूजा कर रही थी, तभी मैंने उसके दरवाजे में झाँककर देखा

'क्या कर रही हो?'

'कृष्ण भगवान् की पूजा कर रही हूँ।'

मुझे मजाक सूझा।

'मुझको पाट पर बैठाकर क्यों नहीं पूजती? मैं भी तो मधुबन का हूँ।'

उसने मुँह फुलाकर कहा

'आपके समान नास्तिक की पूजा नहीं हो सकती!'

ऐसी लड़की गांधीजी के भोजन की थाली लेकर आती। जब तक गांधीजी भोजन करते, उनके सामने बैठी रहती। फिर थाली उठाकर कुटिया के बाहर रख देती। मौज उसकी बला! पक्की

जूठी थाली ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती। अन्त में कस्तूरबा देखतीं उठाकर ले जातीं और मांजतीं!

ऐसी तो न जाने कितनी बहनें आया करतीं। महादेवभाई ने यह सब मुझे कहा था। बोले "ये लड़कियां बापू के सामने दिन-भर हजार तरह की ढेर मनकी बातें किया करती हैं पर यह एक थाली मांजने की परवाह इनमें से किसीको नहीं है! बेचारी बा को ही मांजनी होगी। इन सबको अजायबघर का नमूना न कहा जाय तो और क्या कहा जाय?

दूसरे प्रकार के नमूने भी थे। ऐसी एक बहन किसीके द्वारा भेजी गयी आश्रम में गांधीजी के पास आयी थी। बेचारी बिलकुल बचपन ही में विधवा हो गयी थी। उसे पढ़ा-लिखाकर डॉक्टर बनाने की जिम्मेदारी गांधीजी ने मुझ पर डाली थी। ठीक परीक्षा के दिन ही बेचारी के भाई गुजर गये। तिस पर भी परीक्षा देने गयी। फेल हो गयी। कहने लगी

अब नहीं पढ़ूँगी।

'गांधीजी ने तुमको डॉक्टर बनाने की जवाबदारी मुझ पर डाली है इसलिए अब तू सात बार भी फेल होगी तो भी मुझे पढ़ाना है और तुझे पढ़ना है। दूसरा कोई चारा नहीं।

आखिर वह पास हुई और डॉक्टर के नाते अपना काम अच्छी भांति चलाने भी लग गयी।

एक और भी खानदानी मुस्लिम-परिवार की बहन थी। गांधीजी की अनन्य भक्त। लेकिन जिस तरह पागल मां अपने अतिशयतापूर्ण लाड़-प्यार से अपने बालक को आकुल-व्याकुल कर देती है, उसी तरह वह गांधीजी को अक्सर परेशान किया करती थी। गांधीजी की सेवा-टहल करने में जितनी बेजोड़ उतनी ही हठ और उपवास

करने में थी! सेवाग्राम की ११६–१८ डिग्री की गरमी में भी दिनभर या रातभर बिना पलक मारे हमेशा गांधीजी पर पंखा झला करती थी। आज भी उत्तर हिन्दुस्तान में गांधीजी द्वारा निर्देशित रचनात्मक कार्यक्रमों को चलानेवालों में उसका पहला नम्बर आ सकता है।

ऐसी बहुतरी सेवा-परायण बहनें न जाने क्या गांधीजी के पास हमेशा इकट्ठा होती रहती थीं। कारण शायद यह था कि उन्हें और कहीं उतनी विश्रान्ति नहीं मिलती थी जितनी यहाँ मिल जाती थी। मैंने तो ऊपर केवल दो-तीन नमूनों का ही वर्णन किया है। ●

। १८ ।

विशेषताएँ और दिनचर्या

रोगियों से रोज मिला करते !

२०६ काम का कितना भी बोझ क्यों न हो गांधीजी बीमारों के कुशल-समाचार पूछने में और मृत्यु के अवसर पर शोक-समवेदना के लिए जाने में कभी चूकते न थे। मेरी दादी-माँ मोटर की दुर्घटना में घायल हुई मेरे पिताजी की प्रोस्टेट गाँठ का और मेरा हर्निया का ऑपरेशन हुआ मेरी पत्नी सुमतिबाई को नाथद्वारा की यात्रा से लौटने के बाद चेचक निकली इसमें से प्रत्येक अवसर पर स्वास्थ्य समाचार के बारे में पत्र लिखकर अथवा स्वयं पूछ-परछ करके उन्होंने हमारी चिन्ता की थी। वैसे भी जब-जब मुझे किसी भी काम से अथवा राजी-खुशी के ही पत्र लिखते-लिखवाते तो भी नियमानुसार मेरी दादी-माँ के और मेरी गोंदी बुआ के कुशल-समाचार हमेशा पूछा करते।

विवाह जन्म-दिन आदि के अवसरों पर भी बहुतों को आशीर्वाद के पत्र भेजा करते। मेरी बहन मधुरी के विवाह के अवसर पर उनका आशीर्वादात्मक पत्र आया था और मेरी वर्षगाँठ के दिन पर भी उनके आशीर्वाद के पत्र समाचार वर्षों तक बराबर मिलते रहे।

०७ यह तो प्रसिद्ध ही है कि बोलने और लिखने में गांधीजी कम-से-कम शब्दों का उपयोग करते थे और हमेशा नपा-तुला बोलते

गांधीजी के

मौनवार 'रिजर्व' !

लिफाफे पर पता खुद ही लिखते थे। मेरा पूरा पता अथवा पोस्ट-ऑफिस के उपयोग के लिए पर्याप्त अंग्रेजी पता भी लिखते थे। मेरे पत्रों पर 'सिन्धिया कम्पनी बम्बई' लिखा करते थे। एक बार मेरा नाम और बम्बई लिखने के बाद बाकी लिखना भूल गये और पत्र डाक में छोड़ दिया। ऐसा पत्र शायद ही मिलता है। बाद में जब मैं मिला तो मैंने पूछा

"मेरे उस पत्र का जवाब मुझे नहीं मिला।"

"मैंने जवाब जरूर लिखा है।"

यह वही पत्र था जिस पर, जैसा कि ऊपर कहा है, पूरा पता लिखना रह गया था।

बाद में देर से ही क्यों न हो, लेकिन वह पत्र मुझे मिल गया था।

गांधीजी के नाम सारी दुनिया से पत्र आते थे। उनके जवाब लिखने होते थे। इसके अलावा दूसरे कामों का ढेर तो लगा ही रहता था। फिर भी निजी सम्बन्ध रखनेवाले लोगों के पत्रों के उत्तर तो वे तावडतोब यथासम्भव लौटती डाक से ही भेजते थे। उनका समूचा मौनवार (सोमवार) इस प्रकार के पत्रों के जवाब देने के लिए और 'हरिजन' पत्रों के निमित्त लेख लिखने के हेतु ही लगभग रिजर्व रहता था। हमारे देश में शायद [illegible] प्रतिशत लोग ऐसे निकलेंगे जो पत्रों का उत्तर देने में कई-कई दिन लगा देते हैं और बहुत व्यस्तता का तथा समय की कमी का कारण देते हैं। गांधीजी के निजी पत्र-व्यवहार में ऐसा क्वचित् ही होता था। मृत्यु के सिलसिले में समवेदना के अथवा ढाढ़स बँधानेवाले पत्र वे तुरन्त लिखते थे। किसीके बीमार पड़ने पर उसकी बीमारी की

और गांधीजी कभी किफायत की वजह से ऐसे पत्रों की पीठ पर ही दूसरों के नाम पत्र लिख डालते। 'बाम्बे क्रॉनिकल' के सम्पादक श्री ब्रेलवीजी के विरुद्ध किसीने तीखी शिकायत और आक्षेपों से भरा एक पत्र गांधीजी को भेजा था। ध्यान न रहने से गांधीजी ने उसीकी पीठ पर ब्रेलवीजी को पत्र लिख भेजा !

कहा जाता है कि इसी कारण सरदार पटेल बाद के वर्षों में गांधीजी को लिखे गये अपने महत्त्व के पत्र वापस मँगवा लिया करते थे।

पैकेटों और पार्सलों के आने पर उनके धागे और सुतली आदि को बिना काटे प्यारपूर्वक ज्यों-का-त्यों खोल लिया करते और उन्हें मोटे कागज या गत्ते के टुकड़े पर लपेटकर पुनः काम में लेने के लिए अपनी कलम रखने की छोटी पेटी में सँभालकर रखे रहते।

किफायतशारी की यह आदत उनमें इस हद तक पहुँच चुकी थी कि भोजन करने अथवा सोकर उठने के बाद पीकदानी में कुल्ला करके हाथ-होंठ धोने में अथवा नाक साफ करने में आधे लोटे से अधिक पानी शायद ही कभी खर्च करते थे। कहीं भी नुकसान होता देखते अथवा किसी भी चीज को बरबाद होते देखते तो उनसे वह सहा नहीं जाता था।

७८. गांधीजी दोनों हाथों से लिखते थे। दाहिना लिखते-लिखते थक जाता तो बायें से लिखते। बायें हाथ के अक्षर अधिक साफ होते थे और आसानी से पढ़े जा सकते थे।

गांधीजी गुजराती, नागरी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, तमिल, तेलुगु आदि अनेक लिपियाँ जानते थे। हरिजनों के लिए पाँच रुपये लेकर माँगता था अपने हस्ताक्षर को देते थे तो अक्सर उसी लिपि में देते थे जो माँगनेवाले की होती थी।

36 ચિ. શાલિકુમાર,

આજે તમે ચાર વાર
આવો છો ઘણા દિવસથી
તમારો કાગળ નથી
સપ્ટેમ્બરના છેલ્લા
જઇ ડીસામાંયે ન હતો
તમે બધા કેમ છો? મોટુ
કેમ છે? ગાર્ગી બહેન કેમ છે
તમે નિચિંત થયા?
નવું વર્ષ સુખમાં જાય

૨ ૧૧ ૩૨ બાપુના
આશીર્વાદ

4

पृष्ठभाग तत्काल कराते थे और बीमारी के सिलसिले में मार्गदर्शक सूचनाएँ भी देते थे।

२०९. गांधीजी फाउण्टेनपेन का उपयोग करते थे। एक के बिगड़ने पर मुझसे दूसरा लाकर देने को कहते। मैंने सूचन किया कि नये के बदले में वे मुझे पुराना दे दिया करें। कहने लगे

तुम्हारी तरह व्यापार करनेवाला तो दीवाला ही निकालेगा।

जी नहीं। जिन दिनों आठवें एडवर्ड स्कूल में पढ़ते थे उन्होंने अपने पिता पाँचवें जार्ज को एक पत्र लिखा 'मुझे कुछ पौण्ड की जरूरत है भेजिये।' पिता ने इनकार किया और फिजूलखर्ची के विरोध में एक सिद्धान्तभरा जवाब लिखा। लड़के ने 'इंग्लैण्ड के राजा का अपने युवराज के नाम लिखा पत्र' के नाम से उस पत्र को बेचकर खासी रकम जमा की! फिर अपने पिता को लिखा 'मैंने तो आपसे कुछ ही पौण्ड माँगे थे लेकिन आपने नहीं दिये। अब तो मैंने आपका पत्र बेचकर एक खासी बड़ी रकम खड़ी कर ली है। इसलिए अब कुछ समय तक मुझे पैसों की कमी नहीं रहेगी।'

गांधीजी के ऐसे पुराने पेनों में से कई तो लोग मुझसे उनकी स्मृति के रूप में ले गये। केवल एक बचा है।

फाउण्टेनपेन के खराब होने पर लोग उसे संग्रह की दृष्टि से ले जाते इसलिए कुछ समय तक उन्होंने बर्रू की कलमों का भी उपयोग शुरू किया था। होल्डर का उपयोग भी करते थे। होल्डर की निब के घिस जाने पर उसके पिछले हिस्से की लकड़ी को छीलकर उसकी कलम बना लेते और उससे लिखा करते थे।

बीच-बीच में ये सारे प्रयोग चलते रहते थे फिर भी चूंकि गांधीजी को दिन-रात लिखने से निस्बत रहती थी इसलिए अन्त में उन्हें फिर फाउण्टेनपेन पर ही आना पड़ता था।

२१० गांधीजी सबके साथ एक ही पंगत में भोजन करने बैठते लेकिन बहुत ही धीमे-धीमे खाते। सब खाकर उठ जाते बर्तन मांजकर थक जाते पर स्वयं अकेले बैठे खाते रहते। चाहे अपनी कुटिया में हों चाहे दूसरे गांव में हों अथवा यात्रा में हों चाहे वाइसराय के महल में बैठे हों कहीं भी हों हर जगह अपनी उसी धीमी गति से और हमेशा की रीति से खाते थे और बातचीत करते रहते थे।

२११ यों तो गांधीजी स्त्री-पुरुष के बीच किसी तरह के भेद का व्यवहार नहीं करते थे लेकिन भोजन के समय और प्रार्थना के समय दोनों को अलग बैठाते थे। एक बार किसीने पूछा

"क्या पति-पत्नी भी यहां एक साथ नहीं बैठ सकते जैसे अंग्रेजों के भोज में बैठते हैं ?"

"नहीं।"

लेकिन उन्होंने इसके कारण का खुलासा नहीं किया।

२१२ प्राकृतिक उपचारवाले सोडा-बाय-कार्ब (खाने का सोडा) को बहुत हानिकारक मानते हैं लेकिन गांधीजी उसे बहुत चाहते थे और हमेशा उसका उपयोग किया करते थे। मैं अक्सर इस ओर उनका ध्यान खींचा करता था। उत्तर में वे कहते

"मैं जानता हूं कि प्राकृतिक उपचारवाले सोडे को पसन्द नहीं करते। जो कुछ भी हो मेरी प्रकृति को तो यह बहुत अनुकूल पड़ता है।

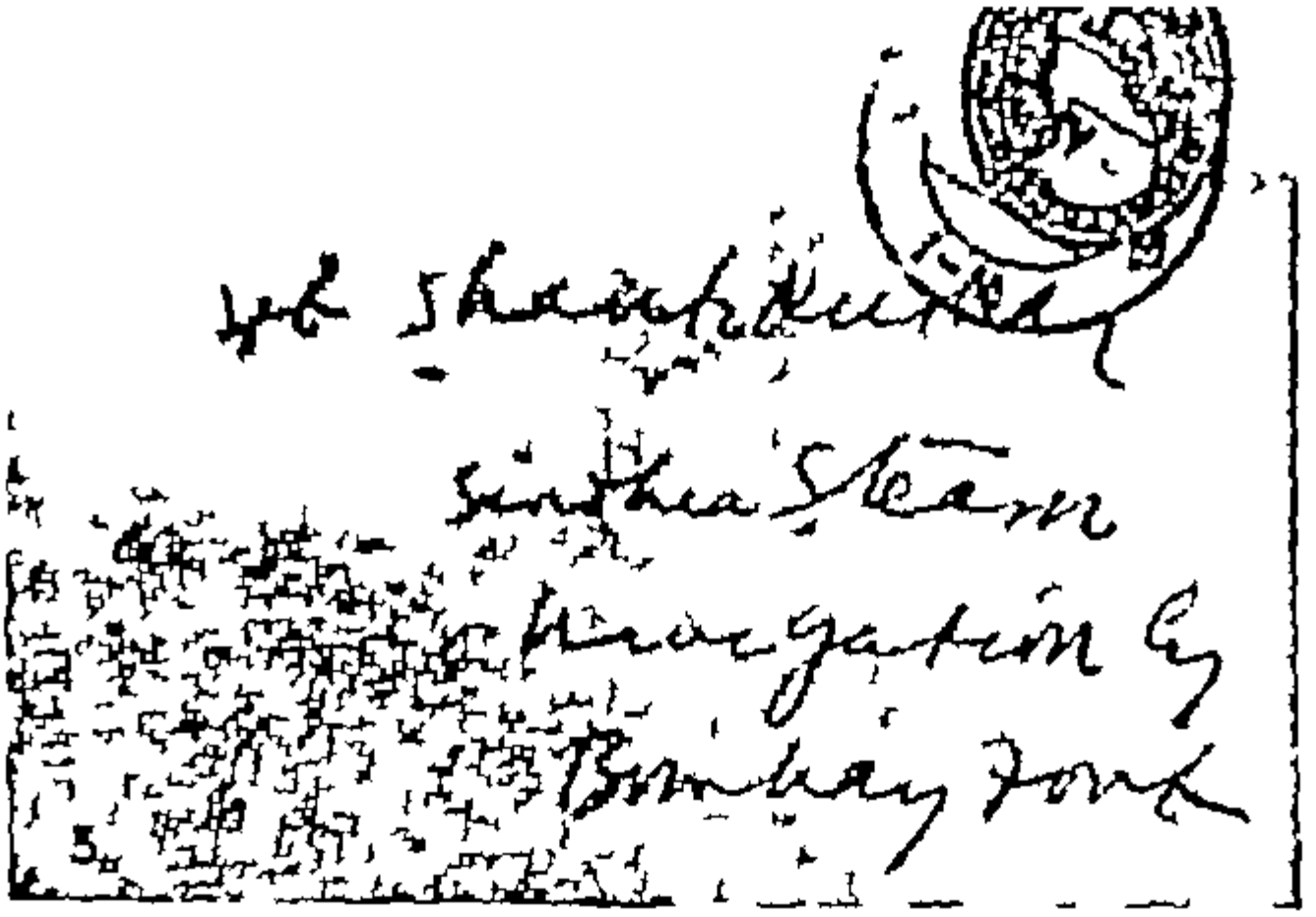

२ दाहिने हाथ की लिखावट

बीच-बीच में ये सारे प्रयोग चलते रहते थे फिर भी चूंकि गांधीजी को दिन-रात लिखने से फुरसत रहती थी इसलिए अन्त में उन्हें फिर फाउण्टेनपेन पर ही आना पड़ता था।

२१० गांधीजी सबके साथ एक ही पंगत में भोजन करने बैठते लेकिन बहुत ही धीमे-धीमे खाते। सब खाकर उठ जाते बर्तन मांजकर चले जाते पर स्वयं अकेले बैठे खाते रहते। चाहे अपनी कुटिया में हों चाहे दूसरे गांव में हों अथवा यात्रा में हों चाहे वाइसराय के महल में बैठे हों कहीं भी हों हर जगह अपनी उसी धीमी गति से और हमेशा की रीति से खाते थे और बातचीत करते रहते थे।

२११ यों तो गांधीजी स्त्री-पुरुष के बीच किसी तरह के भेद का व्यवहार नहीं करते थे लेकिन भोजन के समय और प्रार्थना के समय दोनों को अलग बैठाते थे। एक बार किसीने पूछा

'क्या पति-पत्नी भी यहां एक साथ नहीं बैठ सकते जैसे अंग्रेजों के भोज में बैठते हैं ?'

'नहीं।'

लेकिन उन्होंने इसके कारण का खुलासा नहीं किया।

२१२ प्राकृतिक उपचारवाले सोडा-बाय-कार्ब (खाने का सोडा) को बहुत हानिकारक मानते हैं लेकिन गांधीजी उसे बहुत चाहते थे और हमेशा उसका उपयोग किया करते थे। मैं अक्सर इस ओर उनका ध्यान खींचा करता था। उत्तर में वे कहते

"मैं जानता हूं कि प्राकृतिक उपचारवाले सोडे को पसन्द नहीं करते। सो कुछ भी हो मेरी प्रकृति को तो यह बहुत अनुकूल पड़ता है।"

उन्हें शहद भी पसन्द था और पाली हुई मधुमक्खियों के शहद का उपयोग वे हमेशा करते थे। नये आये हुए शहद की जांच करनी होती तो उसे थोड़ा चम्मच में लेकर चखते। फिर चम्मच को चाटकर और बिलकुल साफ करके ही धोने को देते।

१३ आहार के प्रयोग, रोगों की चिकित्सा वगैरह अथवा कुदरती इलाज, गृह-उद्योग, चरखे का सुधार आदि-आदि कई मामलों में गांधीजी की गहरी दिलचस्पी थी। इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाली जानकारी प्राप्त करने और पुस्तकों आदि का पता लगाकर उन्हें प्राप्त करने और भेजने के लिए वे मुझे हमेशा लिखते रहते। मैं तदनुसार सारी व्यवस्था करता।

पुस्तकों में भी 'साइन्स एण्ड आर्ट ऑफ लिविंग', 'ब्रेड-मेकिंग', 'बी-कीपिंग' आदि पुस्तकें भेजने की बात मेरे ध्यान में रही है। एक बार बम्बई में रहनेवाली किसी अमरीकन अथवा पारसी महिला को, जो डबल रोटी बनाने में निपुण थीं, उन्होंने आश्रम में भेजने के लिए मुझे लिखा था। जब वे न आ सकीं, तो गांधीजी ने मुझे लिखा कि मैं उनसे मिलकर इस बात की जानकारी लूं कि बिना मोयन डाले भी डबल रोटी हलकी किस तरह बनती है अथवा इस विषय की पुस्तकों की सूची उनसे प्राप्त करूं और भेजूं।

१४ खाने-पीने के नियमों, व्रतों और उपचार आदि में उनकी बड़ी रुचि थी। कैसे भी काम में क्यों न डूबे हों, बड़े-से-बड़े राज-धुरन्धर के साथ बातचीत क्यों न कर रहे हों अथवा आश्रम की वर्किंग कमेटी के मुखियाओं के साथ चर्चा करने में लगे हों, अगर इसी बीच कोई छोटा आश्रमवासी बालक अथवा बालिका अंदर आए और पूछे

सिक्का उछालते !

'बापूजी ! आज मैं गुलाब लूँ या एनिमा लूँ ?'

तो गांधीजी असली चर्चा के बीच उसे तुरन्त उत्तर देते, पूछ-ताछ करते और ब्योरेवार सूचनाएँ देते।

खिलौनों से खेलने की उम्रवाले बालक भी गांधीजी के व्यस्त काम-काज के बीच उनके पास उनसे कुछ पूछने या शिकायत करने पहुँच जाते थे। अथवा यदि वे कोई टूटा-फूटा खिलौना लाये हों तो गांधीजी तुरन्त उसकी मरम्मत करने बैठ जाते और उसे ठीक करके दे भी देते!

२२१ चाहे बम्बई में हों, चाहे बाहर किसी गाँव में हों या यात्रा कर रहे हों, जहाँ कहीं भी होते, हर जगह गांधीजी शाम को प्रार्थना के बाद हरिजन-कोष और हस्ताक्षर आदि से जितनी भी रकम इकट्ठा होती, उसका हिसाब और ब्योरा पूछा करते। प्रार्थना में आये हुए पैसों में गरीब का एक-एक पैसा कितनी संख्या में आया है, इसके बारे में तो शाम को बिना चूके पूछा करते थे। कहा करते कि गरीब का दिया हुआ एक-एक पैसा हजार रुपयों से ज्यादा कीमती है!

२२२ जब किसी काम के सिलसिले में दोनों पक्ष समान महत्व के मालूम होते और निर्णय करने में परेशानी खड़ी होती, तो वे अक्सर सिक्का उछालकर देखते और सिक्का जो बात कहता, वैसा निर्णय देकर तदनुसार निश्चिन्त होकर आचरण करते। बहुतों को यह अच्छा न मालूम होता। वे गांधीजी से कहते कि इस तरह धातु के एक टुकड़े को अथवा किसी जड़ वस्तु को मनुष्य अपना काजी बनाये, इसमें उसकी बुद्धि का दीवालियापन है। लेकिन गांधीजी अपनी इस नीति पर डटे रहते। वे कहते, "मनुष्य स्खलनशील (fallible) है। वह अपनी ही अक्ल या होशियारी पर मुनहसर

एक इसमें उसका मिथ्याभिमान, गर्व और राग-द्वेष भरा रहता है। इसलिए उसके हाथों गलत निर्णय होने की अधिक सम्भावना रहती है। इसकी तुलना में सिक्का उछालकर निर्णय प्राप्त करने में वह अपनी बात का फैसला भगवान् पर छोड़ देता है और इस प्रकार अपनी नम्रता और ईश्वर-श्रद्धा का इकरार करता है। ऐसा करके वह अपनी बात भगवान् को ही सौंप देता है। सिक्के ने जो फैसला दिया उसे भगवान् का ही आदेश मानकर मनुष्य बिना किसी बोझ भार या पछतावे के निश्चिन्त भाव से अपना काम करने के लिए आगे बढ़ता है।

२१७ गांधीजी कस्तूरबा और महादेवभाई ने अपने जीवन काल में जिन वस्तुओं का निजी तौर पर उपयोग किया था अथवा जो उनके बाद उनके पवित्र अवशेष या स्मृति के रूप में संग्रह करने योग्य थीं ऐसी नीचे लिखी चीजें मेरे पास समय-समय पर इकट्ठी हुई हैं और आज वे मेरे संग्रह में हैं।

(१) गांधीजी अपने कच्छ (लंगोटीनुमा छोटी धोती) पर सूत की एक डोरी कमर में बांधा करते थे। उसमें की एक डोरी।

( ) प्रार्थना में पहले मिनट की शान्ति के समय जो माला फेरते थे उसमें की एक तुलसी की माला।

( ) [illegible] के दिनों में [illegible] गांधीजी ने अपने हस्ताक्षर के साथ दी हुई उनकी 'अनासक्तियोग' नामक पुस्तक।

( ) गांधीजी के हाथ [illegible] सूत का [illegible] द्वारा बनवाया हुआ वस्त्र।

[illegible] गांधीजी का [illegible] लिखा गया था [illegible]

(६) मेरे नाम लिखे गये गांधीजी के कोई ८ पत्र जिनमें अधिकतर उन्हींके हाथों लिखे हुए हैं। कुछ ही टाइप किये हुए हैं

(७) गांधीजी के उपयोग की एक शाल जिसे वे आगा खान महल के जेल में किये गये उपवासों के दिनों में ओढ़ते थे। मैंने यह शाल उनसे मांग ली थी। उपवास के बाद जब कनुभाई गांधी को आगा खान-महल से छुट्टी दी गयी तो गांधीजी ने यह शाल उनके साथ मेरे लिए भेजी थी। उन्होंने कनुभाई को ताकीद की थी कि शाल को एक-दो बार अच्छी तरह धोकर और साफ करके ही मुझे दें

(८) कस्तूरबा का आगा खान-महल के जेलखाना तुलसी का गमला जिसे गांधीजी ने मुझे सौंपा था। जब समय पाकर इस गमले का असल तुलसी का पौधा सूख गया तो उसकी जगह मैंने दूसरा लगवाया था और सूखे हुए पौधे की लकड़ी के मनके तैयार करवाकर उसकी तुलसी की माला बनवायी थी। बाद में एक दिन वह माला मैंने गांधीजी को पहनने के लिए दी और फिर संग्रह के विचार से वापस ले ली।

इसके अतिरिक्त नीचे लिखी वस्तुएँ मेरे संग्रह में और हैं।

(१) गांधीजी के अग्नि-संस्कार के समय का बाना चन्दन बच गया था। फलस्वरूप जानकीदेवी बजाज द्वारा उससे बनवायी गयी छोटी-छोटी मालाओं में से एक माला

(२) स्वर्गीय देवदासभाई से प्राप्त गांधीजी की भस्म

(३) मनुबहन से प्राप्त आगा खान-महल में हुए कस्तूरबा के अग्नि-दाह की भस्म

(४) ऐसी ही महादेवभाई की भस्म जो मुझे श्री कमलनयन बजाज की ओर से मिली थी

(२) महादेवभाई की मृत्यु के बाद उनकी देह की नहलाते समय सुशीलाबहन नैयर ने जिस रूमाल से उनका मुँह पोंछा था वह रूमाल।

या तो स्वयं गांधीजी द्वारा बरते गये तरह-तरह की बनावटों वाले चरखे आदि भी मैंने इकट्ठा किए थे लेकिन वे अब रहे नहीं। किन्तु मेरी दादी-माँ हर साल पवित्रा एकादशी के लिए हाथ-कते सूत का पवित्रा बनवाने के निमित्त पुराने समय से ही जिस चरखे पर काता करती थीं वह चरखा आज तक मेरे संग्रह में मौजूद है।

गांधीजी की दिनचर्या

२१८. [गांधीजी की रहन-सहन दिनचर्या और नित्य की प्रवृत्तियों के विषय में स्वाभाविक रीति से ही बहुत-कुछ लिखा गया है। अनेक लोगों ने अपनी-अपनी मुलाकातों के समय अथवा मुकाम के वक्त जो कुछ देखा सो लिखा है। जिन दिनों गांधीजी खुद मैं हमारे घर आकर रहते थे उन दिनों की उनकी दिनचर्या की थोड़ी-बहुत जानकारी ऊपर दी जा चुकी है। फिर भी उनके नित्य के कार्यक्रम की सिलसिलेवार जानकारी यहाँ एक ही जगह देने का प्रयत्न किया है। उनकी दिनचर्या का यह क्रम वे वर्धा के निकट सेगाव उर्फ सेवाग्राम में आकर बसे उसके बाद का और खासकर सन १९४४ से १९४८ के बीच का है।]

गांधीजी खुल आसमान के नीचे अथवा बारिश के दिनों में छत आसारे में समडूरी पत्ती हुई लकड़ी की चौकी पर अथवा पलंग पर सोया करते थे। चौकी अथवा पलंग सिरहाने की तरफ ९ इंच ऊँचा रखा जाता था क्योंकि गांधीजी का रक्तचाप ऊँचा रहता था।

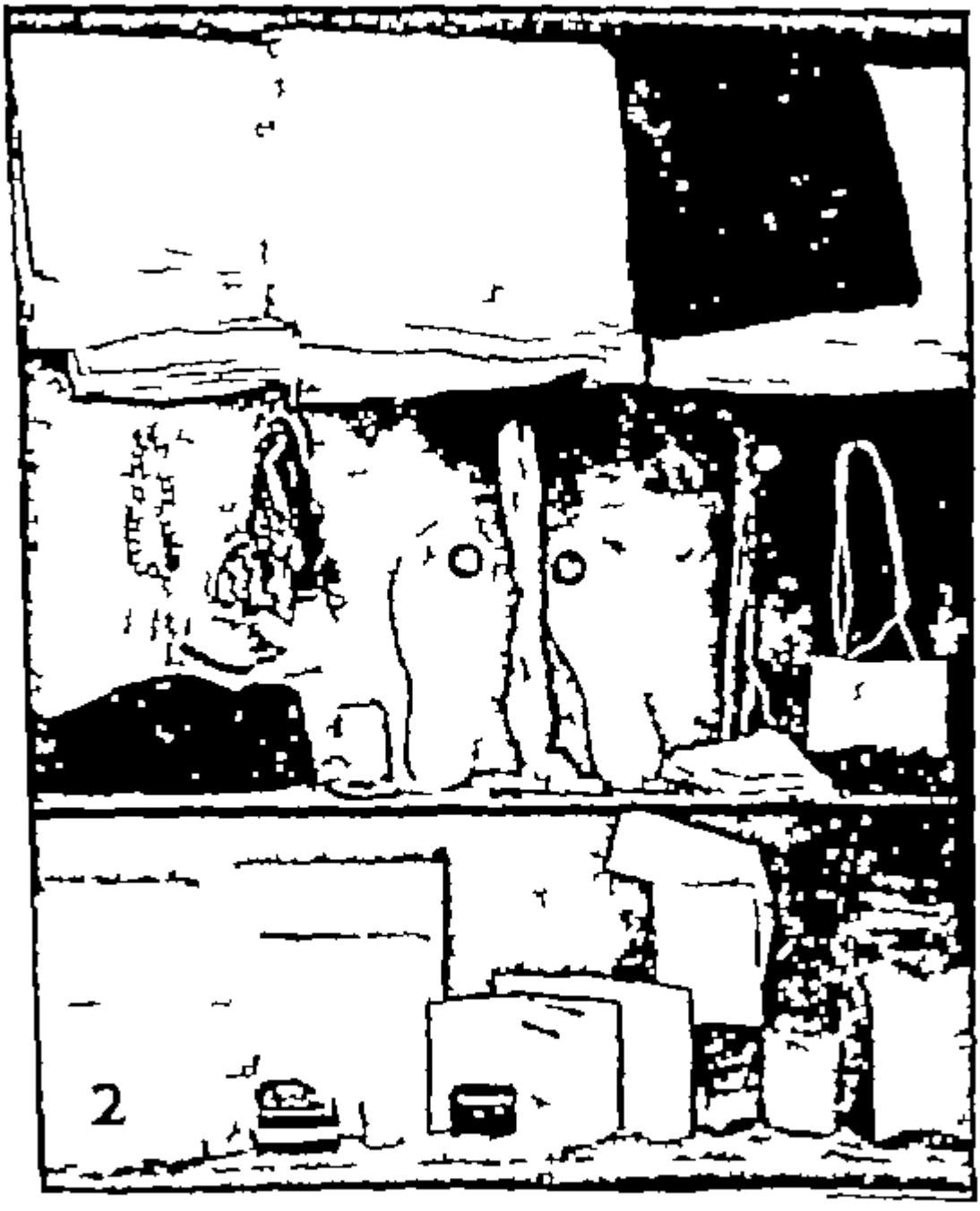

२ गांधीजी के उपयोग की चीज

[[illegible] दूर में]

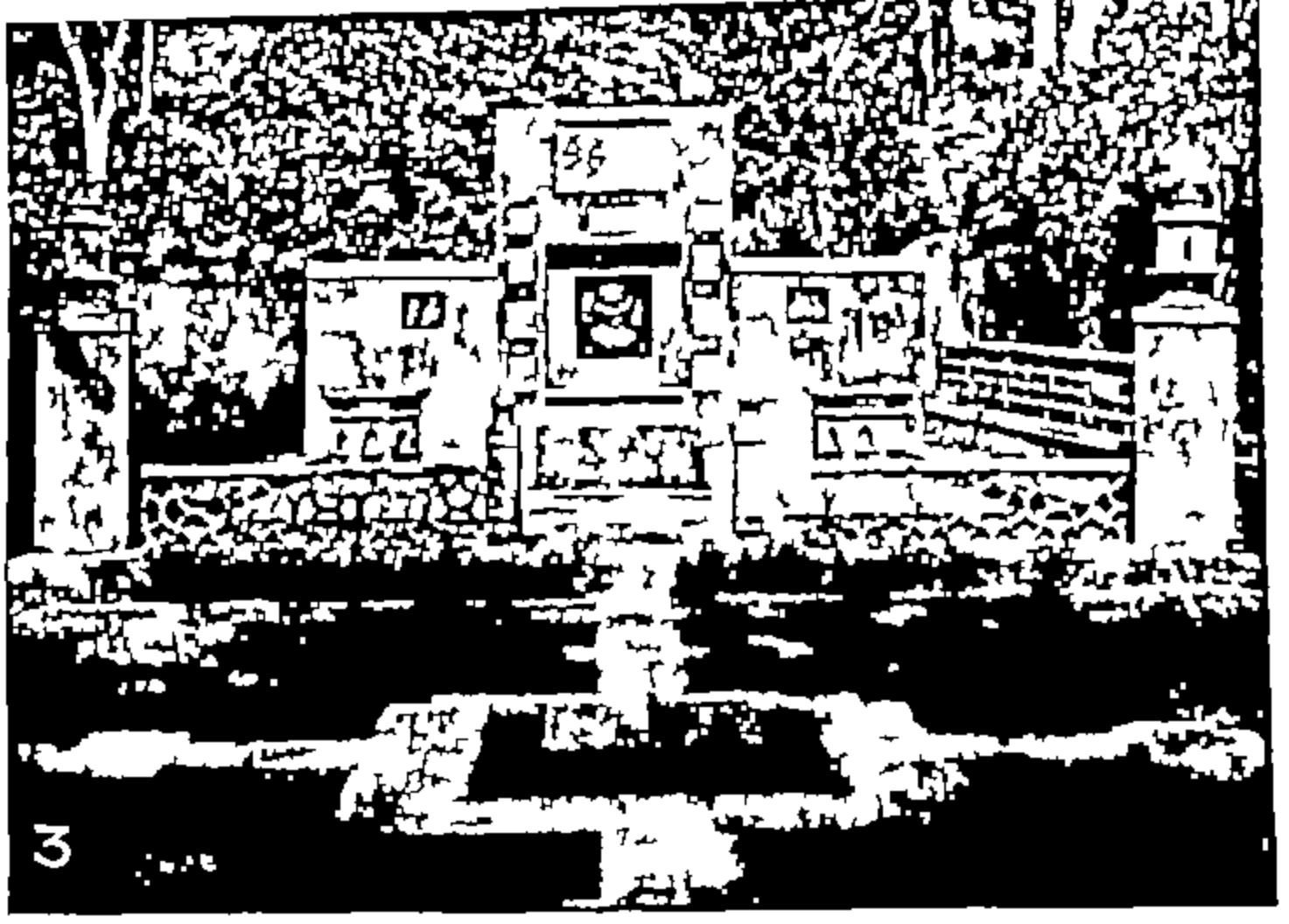

३ कस्तूरबा गांधीजी तथा महादेवभाई की समाधियां

वे पिछली रात को लगभग ३½ बजे जाग जाते थे। 'हे राम!' के उच्चारण के साथ कुछ देर माला फेरते थे। उसके बाद बाथरूम में लघुशंका करके लौटने पर बिस्तर से लगे एक स्टूल पर रखे हुए पानी से लोहे के छोटे तसले में कुल्ला करके दतौन करते थे। दतौन पिछली रात को कूटकर कूची की शक्ल में तैयार करके रख दी जाती थी। उस पर कोयले की बुकनी लेकर वे उससे दाँत माँजते और उसे मसूड़ों पर मलते थे। बाद में दतौन को चीरकर उससे जीभ साफ करते थे।

दतौन के बाद तुरन्त ही १६ औंस उबलते पानी में शहद और सोडा-बाय-कार्ब डालकर तथा प्याले को नैपकिन से पकड़कर चम्मच की मदद से उसे बड़े चाव के साथ पीते थे।

बाद में आश्रम की सामूहिक प्रार्थना में देर होती और कोई बहुत जरूरी पत्र या लेख लिखने का काम सामने होता तो उतने समय के लिए लालटेन के उजाले में लिखने बैठते।

सवेरे की प्रार्थना की पहली घंटी ४ बजे बजती। दूसरी ४-१५ पर। इसके बाद वे प्रार्थना में जाकर बैठते। प्रार्थना ४-२० पर शुरू होती। आखीर-आखीर में अक्सर जब वे बहुत थके होते थे तो सुबह की आश्रम-प्रार्थना उनके सोने के स्थान पर ही होती थी और वे स्वयं लेटे-लेटे ही सबके साथ प्रार्थना करते थे। कस्तूरबा की मृत्यु के बाद उनकी मृत्यु-तिथि के दिन अर्थात् हर २२वीं तारीख को सुबह की प्रार्थना के अन्त में पूरी गीता पढ़ी जाती थी।

प्रार्थना के बाद वे पत्र लिखते-लिखाते और महत्त्व के लेख आदि लिखने होते सो लिखते। कभी-कभी फिर सो भी जाते थे और थोड़ा आराम कर लेते थे। कुछ देर के बाद उठकर टहलने निकल पड़ते। गर्मियों में सवेरे ६ बजे और जाड़ों में

७ बजे निकलते थे। साथ में कुछ आश्रमवासियों के अलावा बाहर से मिलने के लिए आये हुओं में से जिन्हें टहलते समय बात करने का वक्त दिया होता वे लोग भी रहते थे। टहलकर लौटने पर गांधीजी आश्रम में जो भी कोई बीमार होते उनमें से हरएक से बिना चूके मिलते तथा उनके समाचार पूछते। गांधीजी की कुटिया के पूर्व में थोड़ी दूर पर एक खेत में मीराबहन ने अपनी एक कुटिया बनायी थी वहाँ भी रोज चक्कर लगा ही आते।

वापस लौटकर चप्पल उतारते ये बाद कुटिया के चबूतरे पर बैठ जाते। बा के जीवन-काल में वे ही कपड़े का टुकड़ा लेकर उनके पैरों में लगी धूल पोंछा करती थीं। इसके बाद वे अन्दर जाकर अपनी बैठक पर बैठते और सुबह का नाश्ता लेते थे।

नाश्ते में बकरी का तपाया हुआ दूध लेते थे जिसमें खजूर अथवा ऐसी ही दूसरी कोई चीज पड़ी रहती थी। बाद में बड़े सवेरे उठकर किये हुए काम के बारे में कुछ देखने-करने या सुझाने को होता तो उसमें लग जाते अन्यथा सीधे ही मालिश कराने चल जाते।

गांधीजी प्रतिदिन सवेरे नहाने से पहले कोमल धूप में परदे की आड़ करके लेट जाते और तेल से सारे शरीर में मालिश करवाते। मालिश पूरे ४५ मिनट चलती। मालिश के चलते प्रायः काम काज की सूचनाएँ देते लिखवाते और कभी-कभी इण्टरव्यू भी देते अथवा मालिश शुरू होने के बाद १ मिनट के अन्दर ही गहरी नींद में सो जाते! मालिश सम्पूर्ण शास्त्रीय और वैज्ञानिक पद्धति से करवाते थे और इसके लिए आश्रमवासियों में से कुछ शिक्षित भाई-बहन मालिश की सारी विधि अथवा शास्त्र सीखकर तैयार हुए थे। उन्हींमें से कोई-न-कोई उनकी मालिश किया करता था।

पूनावाले डॉ. दीनशा मेहता जैसे निष्णातों में से कोई मौजूद होता तो मालिश वही करता। अक्सर अपने को मालिश का निष्णात कहलानेवाले लोग भी आते थे, लेकिन ऐसे लोगों की मालिश अधिकतर एकमात्र बार के अनुभव के बाद बन्द हो जाती थी!

यात्रा में, वर्धा में या बाहर के किसी मुकाम पर प्रायः मनुबहन गांधी ही मालिश किया करती थीं। जब गांधीजी गरम पानी के टब में बैठे होते तो मनुबहन अक्सर सेफ्टी रेजर से उनकी हजामत भी बना दिया करती थीं। जब खुद ही हजामत बनाते तो आईने का उपयोग कभी न करते। सेफ्टी रेजर का उपयोग इस तरह करते कि कहीं कोई खूंटी शायद ही रह पाती, फिर भी बाद में सब तरफ उंगली फेरकर देख लिया करते। कोई कमी नजर आती तो उसे दुरुस्त कर लेते।

गांधीजी के बाल भी आश्रमवासी ही काट दिया करते थे। हाथ-पैर के नाखून तो गांधीजी स्वयं अपने हाथों हमेशा अधिकतर चाकू से अथवा कभी-कभी कैंची से काट लिया करते थे। मूँछें भी अपने हाथों ही छाँट लेते थे। कभी कोई पूछता कि आप आईने का उपयोग क्यों नहीं करते, तो वे कहते :

'यही हुई न, खामी को दिखाने के लिए तुम तो हो ही न?'

नहाते समय बड़ी देर तक टब में बैठे या लेटे रहते, अक्सर वहीं सो भी जाते!

सब चीजों में हमेशा ही उनका यह आग्रह रहता था कि पाखाने की सफाई घर भर की सफाई की तुलना में सबसे अधिक होनी चाहिए। घर पर वे हमेशा कमोड का अथवा कमोड की तरह के पाखाने का उपयोग करते थे। बड़ी देर तक कमोड पर बैठे रहते, अखबार पढ़ा करते और प्रायः बहुत महत्त्व के विचार और निर्णय

भी नहीं करते। इसका एक कारण कदाचित् यह भी था कि सारे दिन में निश्चिन्तता का और पूरे एकान्त का लाभ इसी एक स्थान पर उन्हें मिलता था।

शुरू के वर्षों में गांधीजी अधिकतर आश्रम के मुख्य रसोईघर के ओसारे में सब आश्रमवासियों और मेहमानों के साथ एक ही पंगत में भोजन के लिए बैठा करते थे। कभी-कभी जब काम का बोझ अथवा मिलनेवालों की संख्या अधिक होती थी तो कुटियावाली अपनी बैठक पर ही भोजन कर लिया करते थे। उनका आहार नियमित सात्त्विक और प्राकृतिक उपचार के हिमायतियों के ढंग का रहता था। उबला हुआ साग बकरी का दूध खाखरा (खस्ता रोटी) मौसमी फल आदि चीजें लेते थे। जब तक कस्तूरबा रहीं वे बीच-बीच में गुड़-पपड़ी या बकरी के बचे हुए दूध का खोया अथवा पेड़ा बनाया करती थीं। बापू कभी-कभी ऐसी चीजें ले लिया करते थे। खाने-पीने की प्रत्येक वस्तु समय-समय पर पहले से निश्चित किये हुए प्रमाण में तौल के माप से ठीक नपी-तुली ही ली जाती थी। स्वास्थ्य ठीक न होने पर सबसे पहले खाने-पीने में कमी करके अथवा फेर-फार करके ही उसे ठीक कर लेने का प्रयत्न करते थे। जब काम का बोझ बहुत ज्यादा होता तो वे एक बार का भोजन छोड़ दिया करते।

आम तौर पर भोजन के समय मेहमानों को पंगत में अपने पास ही बैठाते और अपने खाने की चीजों में से उन्हें कुछ-न-कुछ दिया करते। इसके अलावा भोजन करनेवालों की विशिष्ट रुचि को ध्यान में रखकर परोसनेवालों को तदनुसार सूचित करते रहते।

भोजन के बाद थोड़ा आराम करते। साधारणतया ठीक

गांधीजी के

२५ मिनट में ही उठकर बैठ जाते। फिर पीतल के तसले में कुल्ला करके अपना काम करने लगते।

जब सेवाग्राम में होते तो गर्मी के मौसम में दोपहर के समय गन्ने का १६ औंस रस खूब गरम करवाकर पीते। बाहर किसी जगह होते तो १६ औंस गरम पानी में ताड़ के गुड़ की चासनी अथवा ताड़-गुड़ ही घोलकर पीते। उसमें नीबू और सोडा-बाय कार्ब तो होता ही। दोपहर के समय जहाँ तक सम्भव होता शहद नहीं लेते थे।

गांधीजी की कुटिया १ फुट से कम ऊँची कुर्सी पर मिट्टी की दीवारों और देसी नलिया के छप्परवाली थी। वह अन्दर-बाहर मिट्टी से लिपी रहती। उसके एक तरफ एक छोटा ओसारा बना हुआ था। एक ही छोटा कमरा था जिसमें एक ओर स्नान-घर था। स्नान-घर के और गांधीजी की बैठक के बीच का पर्देनुमा दीवारें थीं। स्नान घर की पर्देवाली दीवार पर कुदरती रंग की रेशम की तरह मुलायम लिपाई पर मीराबहन द्वारा मिट्टी से उठाये गये खजूर आदि के दो-तीन चित्र थे। बगल में आगा खाँ-महल के उपवास के समय का वहाँ से साथ लाया गया 'हे राम!' वाला एक गत्ता टँगा रहता था। गांधीजी की बैठक की दायीं ओर थोड़े-फासले बाँस के बीच एक-एक हाथ लम्बे दो-तीन खम्भोंवाली एक नन्ही-सी खिड़की थी।

पर्देवाली दीवार से टिकाकर लगा हुआ चौड़ा मखमल खादी के रजाई से ढँका लकड़ी का एक पटिया पड़ा रहता था और उसके सामने चटाईवाली फर्श पर एक छोटी दस फुट चौड़ी गद्दी बिस्तर की तरह गद्दी बिछी रहती थी। गांधीजी उसी पर बैठते थे। खिड़की के पास एक नन्हा-सा स्टूल रखा रहता था जिस पर

पेन्सिलों के पाँच इंच लम्बे एक-दो टुकड़े, कलम, चाकू, कैंची, रबड़ आदि चीजें रखी रहती थीं। सामने और बायें स्नान-घर की तरफ खजूर की चटाइयाँ बिछायी रहती थीं। उन पर मुलाकातियों और कार्यकर्ताओं आदि की मुलाकातें की जाती थीं।

गांधीजी के मुँह के सामने की दीवार में बायीं ओर प्रवेश द्वार था। मिलने आनेवाले उसी तरफ से अन्दर आते थे। गांधी-जी की पीठ के पीछेवाली पश्चिमी और पिछली दीवार के दरवाजे के बीच की जगह में बायीं ओर गांधीजी का मंत्रिमण्डल बैठा करता था। सन् १९४२ के पहले इस जगह महादेवभाई, किशोरलाल-भाई, राजकुमारी अमृतकौर, डॉ. सुशीला नैयर आदि बैठते थे।

प्यारेलालजी कनुभाई गांधी वगैरह कुटिया के बिलकुल पीछे बने एक दूसरे घर में अधिक बैठते थे। टेलीफोन टाइपराइटर, फाइलों की आलमारियाँ आदि सारा सामान इस घर में रहता था। भाई कनु नारायण परशुराम टाइपिस्ट आदि यहीं बैठते थे और गांधीजी की कुटिया के पिछले दरवाजे से वहाँ के काम-काज के लिए आते-जाते रहते थे। जब सन् १९४४ में गांधीजी आगा खान-महल के जेल से छूटकर सेवाग्राम आये तो महादेवभाई और कस्तूरबा के बिना सब-कुछ बहुत सूना-सूना लगता था।

अपनी बैठकवाली गादी पर पलथी मारकर बैठने के बाद फुलस्केप-आकार के लकड़ी के एक पटिये को घुटने पर रखकर सादी पेंसिल अथवा फाउन्टेनपेन से सादे हल्के अखबारी कागज के पैड पर गांधीजी बड़े अक्षरों में लिखा करते थे। उनके अक्षर पहली दृष्टि में भटकानेवाले होते हुए भी सुवाच्य रहते थे। वे यहीं कातते थे और भोजन के बाद उसी जगह २१ मिनट सो लेते थे।

गांधीजी के

गांधीजी देश के बड़े-बड़े नेताओं को, प्रसिद्ध विदेशी पादरियों अथवा राजनीतिज्ञों को, प्रत्येक प्रान्त के छोटे-बड़े राजनीतिक, सामाजिक अथवा रचनात्मक क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को यहीं अपनी बैठक के सामने फर्श पर बिछी खजूर की चटाई पर बैठकर उनसे बातचीत किया करते थे। आम तौर पर मुलाकातें तीसरे पहर तीन से पाँच के बीच हुआ करतीं। कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य नेहरूजी, राजाजी, मौलाना, राजेन्द्रबाबू और सब प्रान्तों के बड़े नेता इन्हीं चटाइयों पर बैठकर गांधीजी से मिलते और चर्चा करते थे। मुलाकात के समय प्रायः गांधीजी अपने यरवदा चक्र पर कातते रहते थे।

वर्धा-सेवाग्राम की कड़ी गरमी में दोपहर के समय गांधीजी बारीक कपड़छन की हुई काली मिट्टी को गीली करवाकर उसकी एक इंच मोटी पट्टी कनटोप की तरह [illegible] अपने सिर पर रखे रहते थे और वैसी ही पट्टी पेट पर भी रखा करते थे। पेट पर तो बारहों महीने रखते। रात में भी रखते। मिट्टी के प्रयोग पर उन्हें कमाल का विश्वास था। बुखार में और पेट आदि के दूसरे कई रोगों में वे अन्य प्राकृतिक उपचार के रूप में खेतों की साफ काली मिट्टी का प्रयोग भी इस या उस रीति से हमेशा करते-कराते रहते थे।

मुलाकात के लिए आनेवाले लोगों को दिये गये समय की पाबन्दी के मामले में गांधीजी बहुत ही चौकस रहते थे। एक मिनट का भी फर्क कभी पड़ने नहीं देते थे। मुलाकाती छोटा आदमी हो या बड़ा नेता, अपने हाथ का काम निपटाकर वे निश्चित समय पर स्वयं तैयार हो ही जाते।

अगर कभी हाथ का काम अथवा कताई पहले निपट जाती मुलाकातियों को दिये गए समय में दस-बारह मिनट की देर हो तो कहते अभी वक्त है थोड़ा सो लूँ। यों कहकर बदन पर चादर ओढ़कर एक ही मिनट में सो जाते। और फिर निश्चित समय से आध मिनट पहले जाग जाते। उन्हें कभी जगाना न पड़ता। उनकी यह विशेषता बहुत प्रसिद्ध है। यदि काम-काज के बीच कुछ मिनटों की फुरसत मिल जाती तो उस समय भी वे झपकी ले लिया करते। और फिर निश्चित मिनट पर ही उठकर कुल्ला करके मुँह धोकर और ताजा होकर फिर काम शुरू कर देते।

शाम का भोजन गांधीजी ५ बजे ही कर लिया करते थे। सुबह की तरह ही नपा-तुला और जो निश्चित होता उतना ही लेते थे। फिर टहलने निकल जाते। सुबह-शाम टहलने को गांधीजी प्रार्थना और चरखा कातने के समान ही महत्व देते थे और अपनी रोज की दिनचर्या में टहलने का उतना ही अनिवार्य मानते थे।

शाम को टहलकर आने के बाद कुटिया के ओसारे के ... में बैठकर सुबह की तरह ही पैरों की और कमर की ... मालिश की जाती थी। फिर शाम की प्रार्थना का समय होने पर प्रार्थना ... पहुँच जाते थे। वहाँ आश्रमवासियों और मेहमानों के अलावा गाँव के ... और अन्य गाँवों के भी ... लोग ... थे। शाम की आश्रम प्रार्थना इस अर्थ में ... प्रार्थना मानी जाती थी। कभी-कभी प्रार्थना के बाद गांधीजी ... अथवा परिस्थिति पर कुछ बातों के बारे ... प्रश्नों के ... रखनेवाली ...

पहनते थे जिन्हें सुबह-शाम टहलकर लौटने के बाद पैरों के साथ ही बा अथवा दूसरे अन्तेवासी पोंछकर रखा करते थे। टहलने जाते समय गांधीजी अपने हाथ में एक लम्बी पतली लाठी रखते थे। इसके अलावा आश्रमवासी अथवा अन्तेवासी बालिकाओं में से जो उनके साथ चलती होतीं उनके कन्धों पर हाथ रखकर चला करते। इस तरह गांधीजी की लाठी बनने के लिए लड़कियों में हमेशा होड़ा-होड़ी होती रहती। कई बार गांधीजी की लाठी उनसे छीनकर दो-दो लड़कियां उनकी जिन्दा लाठियां बनकर उनके अगल-बगल चला करतीं। गांधीजी उन्हें यह सब करने देते। ऐसा हमेशा हुआ करता था। यह ऐतिहासिक घटना सुप्रसिद्ध है ही कि मृत्यु के समय मनुबहन और आभा गांधी उनकी दोनों तरफ थीं और उन्हीं के हाथों में 'हे राम!' कहकर गांधीजी ने अपना शरीर छोड़ा था।

● ● ●

यों तो गांधीजी की दिनचर्या अथवा नित्यक्रम देने के सबसे अधिक प्रामाणिक अधिकारी उनके अन्तेवासी ही माने जायेंगे फिर भी चूंकि मैं गांधीजी के पास हमेशा आया-जाया करता था और उनकी दिनचर्या तथा विशेषताओं को निकट से देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था इसलिए उनके संस्मरणों के साथ ही उनकी यह दिनचर्या जोड़ देना मैंने उचित समझा है। ●

ठक्करबापा मुझसे मिले। बातचीत के बाद यह तय हुआ कि हमारे स्टीमर सिन्ध के हरिजनों को आधे किराये पर देश में ले आयेंगे। लेकिन बाद में बापा का दूसरा पत्र मिला कि हमारे कराची के एजण्ट और वहाँ के नेता सेठ हरिदास वालजी के बीच यह तय हुआ था कि जो हरिजन किराया दे सकें उनसे पूरा किराया लेकर और जो न दे सकें उन्हें हम मुफ्त में लायें।

इस तरह हमारे दो स्टीमर कोई एक हजार हरिजनों को लेकर आये।

२८० एक बार गांधीजी २ अक्तूबर को दिल्ली में थे। मेरे मित्र [illegible] और दूसरे एक मित्र का बहुत आग्रह था कि गांधी-जयन्ती के उस दिन मैं उन्हें गांधीजी के पास ले जाऊँ। आखिर मैं राजी हुआ और उन्हें बिड़ला-हाउस ले गया। मैं गांधीजी की गादी के पास बैठकर उनके साथ गो-सेवा-संघ की बात कर रहा था इतने में लेडी माउण्टबेटन हाथों में फूल लेकर अपनी और अपने पति की तरफ से जन्म-दिन का अभिनन्दन करने बिना किसी पूर्व-सूचना के ही आ गयीं। उन्हें आते देखकर गांधीजी ने बहुत धीमे से सिर्फ यह कहा कि लेडी माउण्टबेटन आ रही हैं।

लेकिन मैंने अच्छी तरह सुना नहीं हालाँकि मैं उठकर खड़ा तो हो गया था और सामने की तरफ थोड़ी दूर पर, जहाँ मेरे दो मित्र बैठे थे वहाँ उनके पास जाकर बैठ गया था। गांधीजी ने खड़े होकर लेडी माउण्टबेटन का स्वागत किया और उन्हें अपने साथ गादी पर बैठाकर उनसे बातें कीं। हम तीनों उसी कमरे में सामने की तरफ बैठे रहे। बाद में मुझे ख्याल आया कि लेडी माउण्टबेटन के आने पर गांधीजी ने धीमी आवाज से उन्हींका नाम लिया था।

गांधीजी के

२१ हमारी सिन्धिया कम्पनी की एक हवाई सर्विस थी। जीमी प्रेस उसका एक अमेरिकन पाइलट था और जुहू में मेरे घर के पीछे रहता था। सन् १९४७ का साल था और कश्मीर पर आक्रमण वाला मामला चल रहा था इसलिए भारत सरकार ने हमारे हवाई जहाज अपने उपयोग के लिए हमसे ले लिये थे। जीमी को दिल्ली कश्मीर के बीच अपने काम के सिलसिले में दिल्ली जाना था। मुझसे कहने लगा

'आप दिल्ली क्यों नहीं चलते ? चलिये जरूर चलिये।

"वैसे तो इस समय दिल्ली में मुझे कोई काम नहीं है लेकिन एक अरसा हुआ गांधीजी से मिला नहीं हूँ इसलिए मन ललचाता जरूर है।

मैं दिल्ली गया।

२२. ता २९ जनवरी गुरुवार के दिन जीमी के साथ मैं शाम की प्रार्थना मे सम्मिलित हुआ। शुक्रवार तारीख ३० को जीमी कश्मीर गया और मैं दोपहर को गांधीजी के पास बिड़ला-हाउस पहुँचा। गांधीजी नहाने की छतवाले मकान में धूप में लेटे हुए थे और बातचीत कर रहे थे। सामने की दीवार की तरफ कुछ बन्दूकधारी सिपाही पहरा दे रहे थे उनमें से एक ने अपनी बन्दूक पास की दीवार से टिकायी और बीड़ी सुलगायी ! पहरा देनेवाला सन्तरी बीड़ी नहीं पी सकता। मनुबहन गांधीजी के पास बैठी थी। मैंने उनका ध्यान इस ओर खींचा

ऐसे लोग गांधीजी की रक्षा क्या करेंगे ?

दिल्ली के मुसलमानों का डेपुटेशन मिलने आया था। गांधीजी उनसे कह रहे थे

आप इजाजत दें तो मैं १५ दिनों के लिए वर्धा हो आऊं। मुसलमानों ने 'हां' कहा। कुछ देर के बाद वे लोग चले गये।

२२३ मैंने देखा कि आज गांधीजी को थोड़ी फुरसत थी। इसलिए मैंने महादेव-ट्रस्ट की बात छेड़ने का विचार किया। महादेवभाई के स्मारक के सिलसिले में बम्बई-गुजरात में एक कोष इकट्ठा हुआ था जिसमें बम्बई को गुजरातवालों का साझीदार बनना पड़ा था। शर्त यह थी कि कोष की जो रकम इकट्ठी हो उसमें से पहले दस लाख रुपये गुजरातवालों को मिलें और दोनों के लिए गांधीजी अलग ट्रस्टी नियुक्त करें। गांधीजी ने बम्बई के लिए श्री वैकुण्ठलाल मेहता और श्री डाह्याभाई पटेल के साथ मुझे नियुक्त किया था।

दुर्भाग्य से २५ लाख रुपयों की अपेक्षित रकम इकट्ठी नहीं हो पायी और पहले १ लाख गुजरात को दे देने के बाद २ लाख की रकम बम्बई के हाथ में रही। कुछ मित्रों की इच्छा थी कि यह रकम भी गुजरात को चली जाय लेकिन ट्रस्ट के अनुसार रकम बम्बई के बाहर खर्च नहीं की जा सकती थी। मर्यादा यह थी कि गांधी-पुस्तकालय गांधी-साहित्य महादेवभाई की जीवनी का प्रकाशन आदि कामों पर यह रकम बम्बई में ही खर्च की जाय। मैंने गांधीजी के सामने ये सारी कठिनाइयां रखीं और उनसे पूछा

हम सब मित्र अपने भरसक सारे प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन ट्रस्ट का काम रास्ते पर लग नहीं रहा है। क्या किया जाय?

गांधीजी 'इस ट्रस्ट के पैसे बम्बई में खर्च हों और मूल विचार के अनुसार बम्बई में उसका काम चले यही ठीक है। कठिनाइयां तो आयेंगी ही। तुम्हें वैकुण्ठभाई को और सब मित्रों

को मिलकर इसका कोई हल खोजना चाहिए। मैं तो इस वातावरण में डूबा हुआ हूँ। फिर भी जितनी मदद सम्भव है उतनी मुझसे ले सकते हो।

किन्तु फिर वह अवसर मुझे मिला नहीं!

[बाद के वर्षों में बम्बई में पुस्तकालय चलाने लायक स्थान प्राप्त करने का बहुत प्रयत्न किया पर स्थान नहीं मिला। गांधी निधि ने मणि-भवन में जगह देने को कहा था लेकिन अन्त में वह भी नहीं मिली। अब यह तय हुआ है कि इस ट्रस्ट की रकम बम्बई विश्वविद्यालय को सौंप दी जाय।]

२२४ महादेवभाई की जीवनी लिखवाने के बारे में भी चर्चा हुई। यह बात लगभग तय हो चुकी थी कि जीवनी तैयार करने का काम स्वर्गीय चन्द्रशंकर शुक्ल को सौंपा जाय लेकिन उनकी शर्तें कड़ी थीं और उन्होंने समय भी पूरे तीन साल का माँगा था।

गांधीजी — चन्द्रशंकर की माँग अधिक मालूम होने पर भी उसे स्वीकार करना चाहिए। उनके जैसा जानकार और परिश्रमी चरित्र लेखक दूसरा कोई शायद ही मिले। तीन साल का समय भी देना चाहिए।

बाद में गांधीजी ने बंगाल के किसी प्रसिद्ध पुरुष के जीवन चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाला ऐसा ही एक किस्सा कह सुनाया जिनका चरित्र लिखने में चार साल लगे थे। नाम भी बताया था। पर मैं उसे भूल गया हूँ।

दूसरी रचनाओं के प्रकाशन के सम्बन्ध में भी नवजीवन-ट्रस्ट की ओर से बाधा उपस्थित होती थी। मैंने इस विषय की भी चर्चा की।

"तीसरी कठिनाई यह है कि आपकी फ़िलॉसफ़ी आपके लेख पोथी-पुस्तकादि आदि के अलावा और किसी काम में रुपया खर्च करने की अनुकूलता हमारे ट्रस्ट में नहीं है, और 'नवजीवन' वाले हमको इस तरह की कोई चीज बम्बई में स्वतंत्र रूप से छापने की अनुमति देते नहीं हैं।

गांधीजी "मैं इसका रास्ता निकाल दूंगा।

लेकिन दैव ने कुछ और ही सोच रखा था। जिस दिन गांधीजी के साथ मेरी यह बातचीत हुई उसी शाम प्रार्थना के समय बिड़ला-भवन के अहाते में प्रार्थना-भूमि पर ही गांधीजी की हत्या हुई।

२३५. इस १ तारीख की ही एक और घटना मेरी स्मृति में अंकित रह गयी है।

दिल्ली की हवाई सेना में एक पारसी अफसर थे। शराब बहुत पीते थे। संयम बिलकुल नहीं रख पाते थे। मुझसे कहने लगे

आप मुझे गांधीजी के पास ले चलिये। मैं मानता हूँ कि उनके हुक्म करने पर मेरी शराब छूट जायगी।

"मैं आपको शाम की प्रार्थना के समय जरूर ले जाऊँगा और जब गांधीजी प्रार्थना-भूमि की ओर आने के लिए निकलेंगे उस समय २ मिनट रास्ते में मुलाकात करवाकर हुक्म दिलवा दूंगा।

निश्चय हुआ कि तीसरे पहर ४॥ बजे मैं उनके घर पहुँचकर उन्हें प्रार्थना में ले जाऊँगा। इतनी बातचीत के बाद हम दोनों जुदा हुए।

तीसरे पहर ठीक समय पर मैं उन्हें लेने गया तो वे नशे में चूर थे। कहने लगे

१४ [illegible] शिलान्यास
समारम्भ [illegible]
१६ [illegible] के साथ [illegible]
[illegible] पर [illegible]
१७ [illegible] के [illegible] के
साथ [illegible]
[illegible]

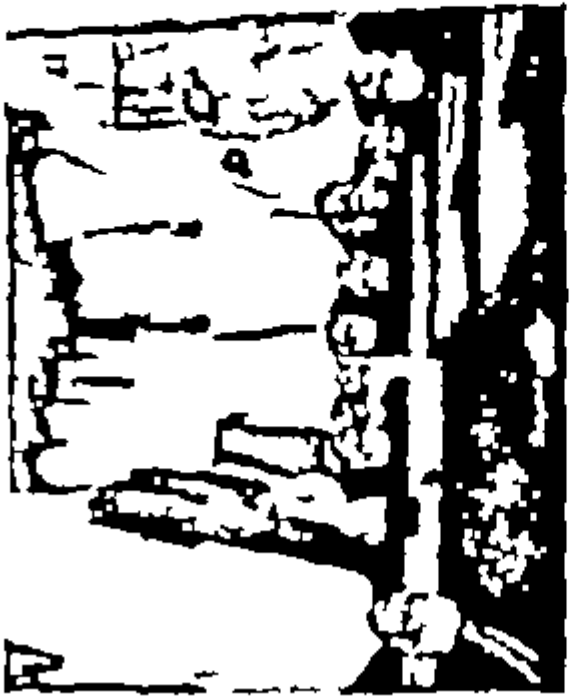

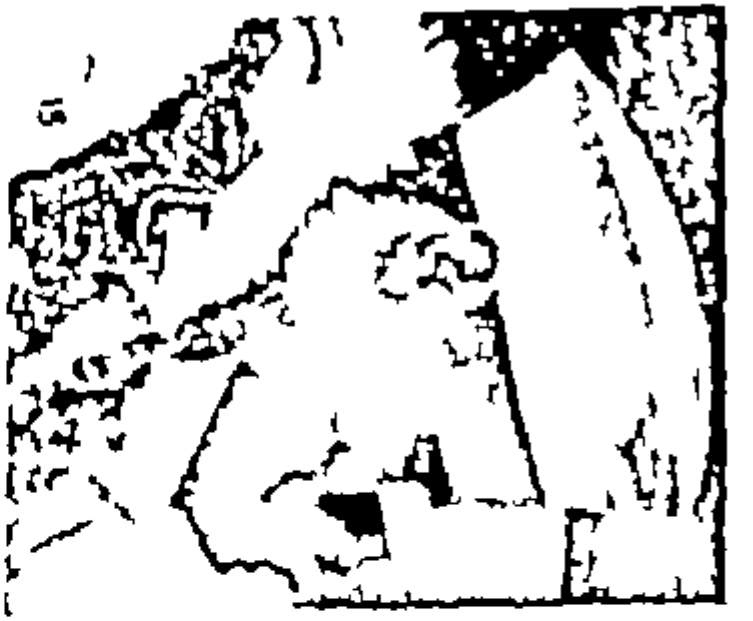

१९. आ

अस्थि स्पेशल–ट्रेन म
प्रयाग जाते हुए

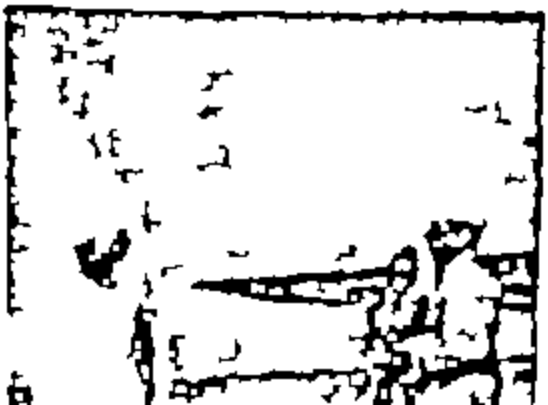

आप तो वापस मिल जायं। अब दूसरी बार फिर कैसे मिला जायगा?

नहीं चलिये। मैं आपको लेने ही आया हूं। इतना तय जो किया था!

"तो हवाई-दल की यह पोशाक उतारकर सिविल ड्रेस में चलें।

गांधीजी के निकट आपकी पोशाक बाधक नहीं होगी। जैसे हैं, वैसे ही चलिए। उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।

लेकिन गांधीजी के समान महापुरुष को अपनी इतनी छोटी और निजी बात के लिए क्यों परेशान करूँ? मुझे माफ कीजिये। मैं पिये हुए हूँ। मुझे आपके साथ चलने में लज्जा मालूम होती है।

बहुत समझाने पर भी वे चलने को राजी नहीं हुए। ●

२० :

हे राम !

हे राम !

२८६ शाम में प्रार्थना के लिए न जाकर मैं वहीं से सीधा अपने होटल पहुँचा और उस वैमानिक का ही विचार करता हुआ खिन्न मन से पलंग पर पड़ा रहा।

मेरे कमरे के सामने रेडियो बज रहा था। कुछ देर बजने के बाद अचानक बन्द हो गया। मैंने सोचा बिगड़ गया होगा। ५॥ बजे मैं नीचे उतरा। वहाँ एक टैक्सीवाले ने कहा

महात्माजी चले गए!

भाई, रहने भी दो। ऐसी झूठी अफवाहें तो बार-बार उठा ही करती हैं।

जी नहीं, बात ऐसी नहीं है। देखिये न, ये सारे लोग बिड़ला हाउस की तरफ दौड़े जा रहे हैं।

मैं काँप उठा। बोला — मुझे भी ले चलो। जल्दी करो।

जाकर देखा तो बिड़ला-हाउस का फाटक बन्द मिला। बाहर ठठ-के-ठठ लोग खड़े थे। और साइकिलों के तो पहाड़ खड़े हो गए थे। बड़ी मुश्किल से मुझे अन्दर जाने का मौका मिला। पहुँचते ही मनुबहन ने हाथ के इशारे से मुझे कहा

'बापू गये!'

८२७ रामदासभाई ने, मैंने और ब्रजकिशनजी चांदीवाला ने मिलकर गांधीजी की देह को अन्तिम स्नान कराया। प्यारेलाल-जी ने भी मदद की।

ब्रजकिशनजी को छोड़ और किसीको मृत्यु के बाद की विधियों का अनुभव नहीं था। इस कारण मैंने और ब्रजकिशनजी ने ही सब-कुछ किया। देह को नहलाया, चन्दन का तिलक किया, तुलसी की माला पहनायी और बाहर लाकर सुलाया। लोगों की भीड़ का पार न था, सब बराबर दर्शनों की मांग कर रहे थे। इसलिए हम मृत देह को ऊपर छत पर ले गये। वहीं हमने जवाहरलालजी का प्रसिद्ध रेडियो भाषण सुना। सरदार पटेल भी गुमसुम बैठे हुए थे।

८२८ दूसरे दिन श्मशान-यात्रा निकली। डॉ. जीवराज मेहता और कन्हैयालाल मुंशी को दाह-संस्कार के स्थान का पता लगाने का काम सौंपा गया था। उन्होंने राजघाटवाली जगह पसन्द की थी। मैं अरथी के साथ ठेठ राजघाट के नाके तक पहुँच गया था, लेकिन फिर भीड़ में अलग पड़ गया, इस कारण दाह-संस्कार के स्थान पर पहुँच नहीं सका।

८२९ दिल्ली की इस श्मशान-यात्रा का एक चित्र मेरे हृदय पर सदा के लिए अंकित हो गया है। श्मशान-यात्रा धीमी-सी चाल से बढ़ रही थी, उसी समय रास्ते के दोनों ओर की इमारतों में से एक इमारत की छत पर कोई अंग्रेज फौजी अधिकारी अपने पूरे यूनीफार्म में खड़ा था। जब गांधीजी की अरथी ठीक उसकी इमारत के सामने से होकर गुजरी, तो उसने पूरे फौजी ढंग से अटेन्शन की हालत में खड़े रहकर अरथी को सलामी दी।

श्मशान-यात्रा से लौटते समय भी टैक्सी या मोटर न मिलने से मैं पैदल ही वापस अपने ठिकाने पहुँचा। ●

२१

अस्थि-विसर्जन और शोक

पोरबन्दर

२१ [illegible] दूसरे दिन दाह-संस्कारवाली जगह पर अस्थि-संचय के समय मैं भी वहाँ पहुँच गया था और उसमें सम्मिलित हुआ था। देख रहा था कि अस्थि चुननेवालों में से कुछ लोग अपने-अपने निजी तौर की दृष्टि से पावन स्मृति-चिह्नस्वरूप अस्थियों के एक-दो टुकड़े चुन अपनी जेबों में भी रख रहे थे! मुझे याद आया कि इसी तरह किन्हीं लोगों ने गांधीजी के खून से सनी उनकी कमरवाली धोती उनके [illegible] पर [illegible] से [illegible] ले ली थी।

कुछ-कुछ अस्थियाँ और भस्म तो [illegible] कलश भरे गये। निश्चय हुआ कि [illegible] में [illegible] जाय। [illegible] कलश मुझे पोरबन्दर [illegible] के लिए सौंपा गया और दूसरा कलश भी [illegible] [illegible] तथा [illegible] के लिए दिये गये।

३१ [illegible] लेकर [illegible] ले जाना [illegible] गये। उन्हें [illegible] सारी [illegible] गया था।
[illegible] में [illegible] पहुँचे [illegible] पहुँच। पोरबन्दर के [illegible] आये थे

 गांधीजी के

अस्थियों को एक जुलूस के रूप में नगर के टाउनहॉल में ले जाया गया। मेरे बहुत मना करने पर भी राजासाहब ने आग्रह करके मुझे हाथ में कलश देकर मोटर में बैठाया और स्वयं जुलूस के साथ अन्त तक पैदल चले।

मैं उसी दिन पोरबन्दर से लौटा। दिल्ली से प्रयाग के त्रिवेणी संगम में अस्थियों को विसर्जित करने के लिए रवाना होनेवाली स्पेशल ट्रेन मुझे पकड़नी थी।

२५२ मैं हवाई जहाज से बम्बई के रास्ते दिल्ली पहुँचा। सारे नेता वहाँ उपस्थित थे। अस्थि-कलश फूल-मालाओं से सजाये गये एक डिब्बे में रखा गया था। सारा डिब्बा लोगों की भीड़ से फूलों से और फूल-मालाओं से ढँक गया था।

रास्ते में भी हरएक स्टेशन पर ऐसी ही भीड़ मिली। लोग डिब्बे को फूलों से बेहिसाब भर देते थे और फिर हाथ फैलाकर प्रसादी के रूप में फूल माँगते थे। जिन स्टेशनों पर ट्रेन खड़ी नहीं होती थी उन पर भी स्पेशल ट्रेन के दर्शनों के लिए आये हुए लोगों की वैसी ही भीड़ खड़ी मिलती थी। रेलवे लाइन के नजदीक के गाँवों में भी लोगों के दल-के-दल खड़े मिलते थे।

२५३ सबेरे इलाहाबाद में त्रिवेणी-संगम पर अस्थि-विसर्जन हुआ। अस्थि-कलशवाली नाव में जवाहरलालजी सहित देश के सभी बड़े नेता मौजूद थे। मैं दूसरी नाव में था। उन दिनों श्री जॉन मथाई रेलवे-मन्त्री थे। उन्होंने दिल्ली से ट्रेन के रवाना होते समय फूलों की एक बड़ी माला अस्थि-कलश पर चढ़ायी थी जिसमें बीचमें रेशमी कपड़े का एक बड़ा फूल टँका था। अस्थि-विसर्जन के बाद जब सारी फूल-मालाएँ त्रिवेणी-संगम में प्रवाहित की गयीं

तो मैंने वह रमणी फूल पानी पर से उठा लिया और उसे सहेज कर रखा।

१५ श्री देवदासभाई ने अस्थियों का कुछ हिस्सा मुझे दिया था। उसे बड़ौदा के धन-भवन में मेरी दादी-माँ द्वारा बनवाये गये मन्दिर के अहाते में जहाँ मैंने गांधीजी, कस्तूरबा और महादेवभाई की समाधियों के नमूने बनवाये हैं, वहाँ तीनों नमूनों के नीचे एक-एक कलश में रखा है। थोड़ी भस्म भी अँगूठी में बन्द करवाकर उसके सिर पर 'हे राम!' और वर्तुल की एक ओर चि. शान्ति कुमार और दूसरी ओर 'बापू के आशीर्वाद' शब्द गांधीजी के हस्ताक्षरों में खुदवाये हैं।

२२ गांधीजी की हत्या ने सारे देश में घर-घर आघात पहुँचाया। प्रत्येक परिवार ने इस तरह के दुःख का अनुभव किया मानो उसके सिर से अपने पिता का छत्र उठ गया हो! विवाह-समारोहों के राग-रंग, बाजे-गाजे, रोशनी और सिनेमा-घर, नाटक-घर सब बन्द रहे। हजारों-लाखों लोगों ने एक-दूसरे को शोक-समवेदना के और आश्वासन के पत्र लिखे तथा सूतक पाला। विदेशों के लोगों ने इस देश के अपने भारतीय मित्रों और परिचितों को ऐसे शोक-सूचक और आश्वासनभरे पत्र भेजे कि वे स्वयं भी एक कुटुम्बी के नाते इस दुःख में हमारे साथ हैं।

गांधीजी की मृत्यु से पहले सन् १९४६ में मैं इंग्लैण्ड अमरिका की यात्रा पर गया था। इस यात्रा के दिनों में मैं जहाँ जहाँ भी गया वहाँ-वहाँ अनेक लोगों ने मुझसे गांधीजी के बारे में और उनके सविनय अवज्ञा-आन्दोलन और सिद्धान्तों के बारे में चर्चाएँ की थीं। इसी कारण अनगिनत लोगों के साथ मित्रता भी

गांधीजी के

हो गयी थी। और यद्यपि इन बहुतों के साथ बाद में मेरा पत्र-व्यवहार आदि के निमित्त से कोई सम्बन्ध रहा नहीं था फिर भी गांधीजी की मृत्यु के बाद उनमें से बहुतेरे लोगों के समवेदना-सूचक पत्र मुझे मिले थे। मेरे शोक का अनुभव करके सबने बहुत ही भावभरे और ढाढ़स बँधानेवाले पत्र लिखे थे।

एक-दो लोगों ने तो लिखा कि जिस घड़ी गांधीजी की हत्या हुई उस घड़ी उन्होंने स्वयं अपने में न जाने कैसी एक तरह की बेचैनी का अनुभव किया था। कोलम्बो में एक सज्जन मेरे पड़ोस में रहता था। सिर्फ बातचीत का नाता था। पक्का गांधी-विरोधी। बाद में भी हमारे बीच कभी पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। लेकिन उसने भी मुझे दिलासा देनेवाला एक बहुत सुन्दर पत्र लिखा था।

१६ गांधीजी के अन्तेवासियों में डा. सुशीला नैयर और श्री घनश्यामदासजी बिड़ला—दोनों उनके निकट के साथी बाहर गये हुए थे इसलिए वे अनुपस्थित रहे। जब कि कोई खास काम न होते हुए भी उक्त अमेरिकन वैज्ञानिक जीमी भ्रम की आकस्मिक महत्त्वाकांक्षा से मैं अनायास ही इस अन्तिम अवसर पर दिल्ली पहुँच गया। इस प्रकार जीमी भ्रम ने मुझे जीवनभर के लिए अपना ऋणी बना लिया।

गांधीजी की हत्या के सिलसिले में एक बात हमेशा ही मेरे दिल में खटकती रही है। वर्षों से मेरे मन में बराबर यह आशंका बनी रहने लगी थी कि शाम की सार्वजनिक प्रार्थना के समय ही कभी कोई उन पर हमला करेगा और उनके प्राण लेगा। जिस शाम को हत्या हुई उस शाम यदि उक्त अमेरिकी वैज्ञानिक पूर्वनिश्चय के

अनुसार प्रार्थना के समय गांधीजी से मिलने मेरे साथ आये होते तो प्रार्थना-स्थान की ओर जाते समय मैं हमेशा की अपनी रीति के अनुसार आगे-आगे चलता होता और प्रार्थना के समय भी सदा की तरह आंख खुली रखकर चारों तरफ ध्यान रखता हुआ उनके पीछे खड़ा रहता।

लेकिन विधि की योजना के आगे मनुष्य का बस ही कितना ?

फिर भी इस परिस्थिति का पछतावा और दुःख तो जीवनभर के लिए मेरे हृदय पर अंकित हो ही चुका है !

अन्य संस्मरण

•

१ दादाभाई नवरोजी
२ रवीन्द्रनाथ ठाकुर
३ गोखलेजी
४ श्री दीनशा वाछा
५ श्री चन्दावरकर
६ श्रीमती एनी बेसेन्ट
७ लोकमान्य तिलक
८ मालवीयजी
९ देशबन्धु दास
१० मोतीलालजी नेहरू
११ विट्ठलभाई पटेल
१२ वल्लभभाई पटेल
१३ मौलाना आजाद
१४ सरोजिनी नायडू
१५ महम्मदअली जिन्ना
१६ आगा खान

[इस पुस्तक के आरम्भ में मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि मेरे पिता स्वर्गीय श्री नरोत्तम मोरारजी के समय में हमारे घर देश के अनेक नेता आया-जाया और ठहरा करते थे। इन सबके कम-ज्यादा सम्पर्क और सहवास का सौभाग्य मुझे छोटी उम्र से ही मिला। बाद के समय में भी यह सिलसिला किसी हद तक जारी रहा। ऐसे कुछ संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

—शान्तिकुमार]

दादाभाई नवरोजी

●

१ भारत के पितामह स्वर्गीय श्री दादाभाई नवरोजी अपनी वृद्धावस्था के अंतिम वर्षों में जुहू के पास समुद्र-किनारे बसे वसोवा गाँव में आकर रहे थे और वहाँ पूरी तरह निवृत्त-जीवन बिताते थे। वे मेरे पिताजी को अच्छी तरह पहचानते थे। सन् १९१५ में बम्बई युनिवर्सिटी ने उन्हें डॉक्टरेट (एल-एल. डी.) की सम्मान पूर्वक उपाधि अर्पण करने का गौरव लिया। उस समय बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डन ने युनिवर्सिटी के कुलपति के नाते दादाभाई को पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि यदि वे इस उपाधि को स्वीकार करने के लिए युनिवर्सिटी तक पधारने का कष्ट उठा सकें तो आम लोगों को लम्बे समय के बाद अनायास ही उनके दर्शनों का लाभ मिल सकेगा।

दादाभाई ने पिताजी को बुलवाया और कहा "यदि आप मुझ बम्बई ले चलें और वापस घर पहुँचा दें तो मैं चलूँ।

"बहुत खुशी के साथ।

निश्चित दिन पिताजी उन्हें बम्बई ले गये। मैं साथ में था। उस समय मेरी उम्र १६ साल की थी।

जाते समय मरीन लाइन्स के पास अपने एक पुराने परिचित के घर थोड़ी देर विश्राम के लिए रुके थे। विश्राम के इस समय में एक ग्रूप फोटो लिया गया था जिसमें एक नन्हें किशोर के रूप में मैं खड़ा हूँ।

उपाधि प्राप्त करके युनिवर्सिटी हॉल से वापस लौटते समय उनका एक जुलूस निकला। पेडर रोड पहुँचने पर हमारे शान्ति भवन में फिर विश्राम के लिए कुछ देर रुके और बाद में वेसावे के लिए निकल पड़े। इस अवसर पर मुझे भारत के इस पितामह का आशीर्वाद पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

एक बार उन्होंने किसी काम के सिलसिले में मेरे पिताजी को अपने वेसावावाले बँगले पर मिलने के लिए बुलाया था। लेकिन योग कुछ ऐसा रहा कि उन्होंने पिताजी को जो समय दिया था किसी दूसरे कारण से उनके लिए वह समय बदलना जरूरी हो गया इस कारण पिताजी को व्यर्थ का चक्कर न खाना पड़े इसके लिए इतनी वृद्धावस्था में भी वे वेसावावाले अपने बँगले से स्वयं चारकर तक गये और पिताजी को तार किया।

४ सितम्बर, १९२५ को उनका सौवाँ जन्म-दिन बम्बई के कावसजी जहाँगीर हॉल में मनाया गया था। गांधीजी उसमें उपस्थित रहे थे। इस अवसर पर मैं ही उन्हें वहाँ ले गया था। ●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

२. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को मैंने पहले-पहल विलायत कैम्ब्रिज में देखा था। उनका कोई रिश्तेदार कैम्ब्रिज में विद्यार्थी था। वे उसीके पास आये थे। उस समय मैंने एक नया कैमेरा खरीदा था। उससे पहला फोटो मैंने गुरुदेव का लिया। मैं बिलकुल नौसिखुआ था इसलिए फोटो बहुत अच्छा तो नहीं आया फिर अपनी भक्ति के कारण मैंने उसे आज तक सहेजकर रखा है। कैम्ब्रिज के एक फोटोग्राफर की दूकान से उन दिनों मैंने गुरुदेव एक फोटो खरीदा था जो पिछले ४१ वर्षों से मेरे शयन-कक्ष लगा हुआ है। गांधीजी का फोटो भी उसीकी बगल ही में है। दोनों फोटो इस तरह दीवार पर लटकाये गए हैं कि दिन में रात में जब भी मैं अपने सोने के कमरे में होऊँ वे मेरी आँखों सामने रहें। इन दोनों छायाचित्रों के सम्बन्ध में अपना एक चित्र अनुभव भी यहाँ दे रहा हूँ। मैं जब कभी सवेरे उठकर गांधीजी का फोटो देखता तो मेरा वह दिन परेशानियों में बीतता

दादाभाई ने पिताजी को बुलवाया और कहा "यदि आप मुझे बम्बई ले चलें और वापस घर पहुँचा दें तो मैं जाऊँ।"

"बहुत खुशी के साथ।"

निश्चित दिन पिताजी उन्हें बम्बई ले गये। मैं साथ में था। उस समय मेरी उम्र १६ साल की थी।

जाते समय मरीन लाइन्स के पास अपने एक पुराने परिचित के घर थोड़ी देर विश्राम के लिए रुके थे। विश्राम के इस समय में एक ग्रूप फोटो लिया गया था जिसमें एक नन्हें किशोर के रूप में मैं खड़ा हूँ।

उपाधि प्राप्त करके यूनिवर्सिटी हॉल से वापस लौटते समय उनका एक जुलूस निकला। पेडर रोड पहुँचने पर हमारे शान्ति भवन में फिर विश्राम के लिए कुछ देर रुके और बाद में वेसावे के लिए निकल पड़े। इस अवसर पर मुझे भारत के इस पितामह का आशीर्वाद पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

एक बार उन्होंने किसी काम के सिलसिले में मेरे पिताजी को अपने वेसावावाले बँगले पर मिलने के लिए बुलाया था। लेकिन मौसम कुछ ऐसा रहा कि उन्होंने पिताजी को जो समय दिया था किसी दूसरे कारण से उनके लिए वह समय बदलना जरूरी हो गया। इस कारण पिताजी को व्यर्थ का चक्कर न लगाना पड़े इसके लिए इतनी वृद्धावस्था में भी वे वेसावावाले अपने बँगले से स्वयं तारघर तक गये और पिताजी को तार किया।

४ सितम्बर १९२५ को उनका सौवाँ जन्म-दिन बम्बई के कावसजी जहाँगीर हॉल में मनाया गया था। गांधीजी उसमें उपस्थित रहे थे। इस अवसर पर मैं ही उन्हें वहाँ ले गया था। ●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

२. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को मैंने पहले-पहल विलायत में कैम्ब्रिज में देखा था। उनका कोई रिश्तेदार कैम्ब्रिज में विद्यार्थी था। वे उसीके पास आये थे। उस समय मैंने एक नया कैमेरा खरीदा था। उससे पहला फोटो मैंने गुरुदेव का लिया। मैं बिलकुल ही नौसिखुआ था इसलिए फोटो बहुत अच्छा तो नहीं आया फिर भी अपनी भक्ति के कारण मैंने उसे आज तक सहेजकर रखा है।

कैम्ब्रिज के एक फोटोग्राफर की दुकान से उन दिनों मैंने गुरुदेव का एक फोटो खरीदा था जो पिछले ४१ वर्षों से मेरे शयन-कक्ष में लगा हुआ है। गांधीजी का फोटो भी उसकी बगल ही में है। ये दोनों फोटो इस तरह दीवार पर लगवाये गये हैं कि दिन में या रात में जब भी मैं अपने सोने के कमरे में होऊँ, वे मेरी आँखों के सामने रहें। इन दोनों छायाचित्रों के सम्बन्ध में अपना एक विचित्र अनुभव भी यहाँ दे रहा हूँ। मैं जब कभी सवेरे उठकर गांधीजी का फोटो देखता तो मेरा वह दिन परेशानियों में बीतता

और गुरुदेव को देखता तो सारा दिन आनन्द में बीतता। स्वर्गीय चन्दुलाल भावावटी कहा करते कि गुरुदेव राजर्षि हैं और गांधीजी त्यागर्षि हैं। शायद इसीलिए ऐसा होता होगा।

जब सन् १९२४ में गांधीजी यरवडा-जेल में ६ साल की सजा काट रहे थे उस समय गुरुदेव ने मेरे नाम २९ जनवरी १९२४ के दिन जो जरूरी तार भेजा था वह आज भी मेरे संग्रह में है। यह तो स्पष्ट ही है कि उनका यह तार, तार द्वारा मँगवाये गये मेरे किसी संदेश के जवाब में ही भेजा गया था। पर दुर्भाग्य से इस मूल तार के अलावा उस समय की परिस्थितियों की अथवा गांधीजी की रिहाई के लिए की गयी किसी तरह की कोशिशों की याद दिलानेवाला या उन पर प्रकाश डालनेवाला कोई दस्तावेज या कागज-पत्र इसके साथ नहीं है। इसलिए यह तार ही ज्यों का त्यों यहाँ दे रहा हूँ।

Shanti Kumar Pedder Rd Bombay

I ask for release of Mahatmaji not because he suffers but because his suffering humiliates our Government.

Rabindranath Tagore

तार का हिन्दी भावार्थ

[शान्तिकुमार पेडर रोड बम्बई।

मैं महात्माजी के छुटकारे की माँग इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वे कष्ट उठा रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका कष्ट उठाना सरकार का अपमान करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

यह तार बम्बई के 'बाम्बे क्रॉनिकल' में छपा था।

एक बार गुरुदेव अपने शान्ति-निकेतन के कला-भवन के लिए फण्ड इकट्ठा करने बम्बई पधारे थे। हमारे शान्ति भवन के सामने ही स्वर्गीय बहरामजी पिटीट के घर ठहरे थे। उन दिनों गुरुदेव के 'मोरिच' नामक एक पारसी मन्त्री थे, लेकिन गुरुदेव उन्हें 'मरीचि' कहकर बुलाते थे इसलिए वे इसी नाम से पहचाने जाते थे। फण्ड इकट्ठा करने के काम में मदद प्राप्त करने के लिए मैं उन्हें कई लोगों के पास ले गया। लगभग दो लाख रुपये इकट्ठा हुए थे। इस काम के निमित्त से गुरुदेव ने हमारे सिन्धिया-हाउस में एक कार्यालय भी खोला था।

दूसरी बार जब सन् १९३६ में शान्ति-निकेतन के लिए फण्ड इकट्ठा करने आये तो वे अपने नाटक दिखाते थे और उनमें खुद भी अभिनय करते थे। गांधीजी को यह चीज़ खटकती थी कि पैसों के लिए गुरुदेव को इस तरह भटकना और परिश्रम करना पड़ता है। इसलिए उन्होंने फण्ड इकट्ठा करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। बम्बई में उगाही का काम मुझे सौंपा। मैंने कहा "मुझे कोई साथी दीजिये।" बापू ने सरदार पटेल के लड़के डाह्याभाई को दिया। निश्चय हुआ कि बम्बई के बड़े उद्योगपतियों में से किसीसे भी पाँच हजार से कम न लिए जायें।

मैंने कहा "हम छाप डालें। हमें कौन देगा? सब आपके ही हाथ में सौंपेंगे। हम तो उन्हें आपके पास खींचकर ले आयेंगे।"

तदनुसार हम स्वर्गीय सर पुरुषोत्तमदास को और दूसरे बड़े उद्योगपतियों को प्रार्थनापूर्वक गांधीजी के पास ले आये। इनमें एक मारवाड़ (सेठ) भी आये। बड़ी देर तक गांधीजी के पैर पर सिर रखकर उन्होंने प्रणाम किया।

और गुरुदेव को देखता तो सारा दिन आनन्द में बीतता। स्वर्गीय अमृतलाल नाणावटी कहा करते कि गुरुदेव राजर्षि हैं और गांधीजी ब्रह्मर्षि हैं। शायद इसीलिए ऐसा होता होगा।

जब सन् १९२४ में गांधीजी यरवदा-जेल में ६ साल की सजा काट रहे थे उस समय गुरुदेव ने मेरे नाम २१ जनवरी १९२४ के दिन जो जरूरी तार भेजा था वह आज भी मेरे संग्रह में है। यह तो स्पष्ट ही है कि उनका यह तार तार द्वारा भेजवाये गये मेरे किसी संदेशे के जवाब में ही भेजा गया था। पर दुर्भाग्य से इस मूल तार के अलावा उस समय की परिस्थितियों की अथवा गांधीजी की रिहाई के लिए की गयी किसी तरह की कोशिशों की याद दिलानेवाला या उन पर प्रकाश डालनेवाला कोई दस्तावेज या कागज-पत्र इसके साथ नहीं है। इसलिए यह तार ही ज्यों का त्यों यहाँ दे रहा हूँ।

Shanti Kumar, Pedder Rd Bombay

I ask for release of Mahatmaji not because he suffers but because his suffering humiliates our Government.

Rabindranath Tagore

तार का हिन्दी भावार्थ

[शान्तिकुमार पेडर रोड बम्बई।

मैं महात्माजी के छुटकारे की मांग इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वे कष्ट उठा रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका कष्ट उठाना सरकार को लज्जित करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

मेरे संग्रह में गुरुदेव का स्मरण करानेवाली तीन छोटी चीजें और हैं : उनके हस्ताक्षरोंवाली 'गीताञ्जलि' की एक प्रति, उनके छपे हुए भाषण की एक प्रति जिस पर उन्होंने अपने हाथों मेरा नाम लिखा है, उनके हाथ के बने दो चित्र और सन् १९१८ में शान्ति-निकेतन की शाला के एक शिक्षक स्वर्गीय अजितकुमार चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद उनकी विधवा को बंगला में लिखा उनके हाथ का आश्वासन-पत्र ।

जब गुरुदेव कलकत्ता जाने के लिए रवाना हुए, तो मैं उन्हें बिदा करने बोरीबन्दर पहुँचा था । जाकर देखा, तो पता चला कि एक ही आइलैण्ड प्लेटफार्म पर कलकत्ता मेल के सामने खड़ी पूना मेल में वे गलती से बैठ गये थे ! मैंने मरीचि से कहा :

"यह क्या किया ? पूना मेल में क्यों बैठाया ?"

मरीचिभाई घबड़ाये । कहने लगे :

"गुरुदेव थके हुए हैं । अब इस समय उनके आराम में खलल डालूँगा, तो वे परेशान होंगे ।"

"लेकिन पूना पहुँचकर क्या करेंगे ? वहाँ पहुँचने पर ज्यादा परेशान नहीं होंगे ? ट्रेन के छूटने में थोड़ी ही देर है ।"

फिर तो खुद मैंने ही जाकर गुरुदेव से कहा । उन्होंने जल्दी जल्दी में ट्रेन बदली । बोले :

'मरीचि हमेशा ऐसा ही गोलमाल करता रहता है !'

'आप यह क्या कर रहे हैं ?

आप महात्मा हैं। बहुत बड़े हैं।

सारी बीम भी ही कपाकप। पूरे पाँच रुपये भी नहीं दिये !

गुरुदेव के इस बार के बम्बई-वास के दिनों में मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क में आया। उन्हें जगह-जगह के निमंत्रण मिला करते थे। मैं उन्हें वहाँ ले भी जाता था।

एक बार सान्ताक्रूज की सारस्वत-कॉलोनी में उनके स्वागत का समारोह था। वहाँ पहुँचने के लिए मैं उन्हें लेकर निकला। उनको गाते हुए सुनना मुझे बहुत पसन्द था। या तो मरीचि ने उनसे इसके बारे में कुछ कहा होगा या कोई और बात होगी लेकिन रास्ते में जाते हुए उन्होंने मोटर में धीमे स्वर में गाना शुरू किया। मैं तो सुख-समाधि में ही पहुँच गया !

सान्ताक्रूज के समारोह के अन्त में 'वन्दे मातरम्' गाया गया। सब खड़े हो गये। लेकिन मैंने देखा कि गुरुदेव बैठे हुए हैं। मैंने उनसे कहा

राष्ट्रगीत गाया जायगा।

चौंककर खड़े हो गये। उन्हें आश्चर्य हुआ। बहुत बकवर राग में और अमूल उच्चारणों के साथ राष्ट्रगीत गाया जा रहा था !

गुरुदेव की ऊँची दीवारवाली टोपी मुझे बहुत अच्छी लगती थी। एक बार उनके पुत्र रथीबाबू ने वैसी एक टोपी मुझे दी। काली थी। गुरुदेव को इसका पता चला। कहने लगे

'काली नहीं रथीन दो। और यों कहकर अपनी पहनी हुई टोपी ही उतारकर मुझे दे दी !

मैंने घर जाकर देखा तो टोपी के साथ गुरुदेव का एक बाल भी उसमें लगा मिला। इन दोनों चीजों को मैंने आज तक सँभालकर रखा है।

मेरे संग्रह में गुरुदेव का स्मरण करानेवाली कुछ निजी चीजें और हैं : उनके हस्ताक्षरोंवाली 'गीतांजलि' की एक प्रति, उनके छपे हुए भाषण की एक प्रति जिस पर उन्होंने अपने हाथों मेरा नाम लिखा है, उनके हाथ के बने दो चित्र और सन् १९१८ में शान्ति-निकेतन की शाला के एक शिक्षक स्वर्गीय अजितकुमार चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद उनकी विधवा को बंगला में लिखा उनके हाथ का आश्वासन-पत्र।

जब गुरुदेव कलकत्ता जाने के लिए रवाना हुए, तो मैं उन्हें बिना कहे बोरीबन्दर पहुँचा था। जाकर देखा तो पता चला कि एक ही प्लेटफार्म पर कलकत्ता मेल के सामने खड़ी पूना मेल में वे गलती से बैठ गए थे! मैंने मरीचि से कहा :

'यह क्या किया? पूना मेल में क्यों बैठाया?'

मरीचिभाई घबराये। कहने लगे :

"गुरुदेव थक गए हैं। अब इस समय उनसे सामान न खुलवाने की बात कहकर उन्हें परेशान करूँ?"

"लेकिन पूना पहुँचकर क्या करेंगे? वहाँ पहुँचने पर ज्यादा परेशान नहीं होंगे? ट्रेन के छूटने में थोड़ी ही देर है।"

फिर तो घर में ही जाकर गुरुदेव से कहा। उन्होंने अपनी धुन में हँस दिया। बोले :

'मरीचि हमेशा ऐसा ही गोलमाल करता रहता है!'

'आप यह क्या कर रहे हैं ?

आप महात्मा हैं। बहुत बड़े हैं।

सारी फीस की ही कपाकप। पूरे पाँच रुपये भी नहीं दिये।

गुरुदेव के इस बार के बम्बई-वास के दिनों में मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क में आया। उन्हें जगह-जगह के निमंत्रण मिला करते थे। मैं उन्हें वहाँ ले भी जाता था।

एक बार सान्ताक्रूज की सारस्वत-कॉलोनी में उनके स्वागत का समारोह था। वहाँ पहुँचने के लिए मैं उन्हें लेकर निकला। उनको गाते हुए सुनना मुझे बहुत पसन्द था। या तो मरीचि ने उनसे इसके बारे में कुछ कहा होगा या कोई और बात होगी लेकिन रास्ते में जाते हुए उन्होंने मोटर में धीमे स्वर में गाना शुरू किया। मैं तो सुख-समाधि में ही पहुँच गया।

सान्ताक्रूज के समारोह के अन्त में 'वन्दे मातरम्' गाया गया। सब खड़े हो गये। लेकिन मैंने देखा कि गुरुदेव बैठे हुए हैं। मैंने उनसे कहा

राष्ट्रगीत गाया जा रहा।

चौंककर खड़े हो गये। उन्हें आश्चर्य हुआ। बहुत मस्त राग में और मधुर उच्चारणों के साथ राष्ट्रगीत गाया जा रहा था।

गुरुदेव की ऊँची दीवारवाली टोपी मुझे बहुत अच्छी लगती थी। एक बार उनके पुत्र रथीबाबू ने वैसी एक टोपी मुझे दी। काली थी। गुरुदेव को इसका पता चला। कहने लगे

काली नहीं रंगीन दो। और यों कहकर अपनी पहनी हुई टोपी ही उतारकर मुझे दे दी।

मैंने घर जाकर देखा तो टोपी के साथ गुरुदेव का एक बाल भी उसमें लगा मिला। इन दोनों चीजों को मैंने आज तक सँभालकर रखा है।

लिया था। एक बार पैसों की मदद के लिए पिताजी के पास आये थे और पिताजी ने अपना नाम प्रकट न करने की शर्त पर रकम दी थी।

इस प्रकार अपनी छोटी उम्र में ही मैंने गांधीजी को बहुत निकट से देखा था। उम्र छोटी होने के कारण मैं उनके काम-काज और उनकी राजनीति को तो नहीं समझता था फिर भी उनकी अनेक मोटी स्मृतियाँ मेरे ध्यान में हैं।

शान्ति भवन में मेहमानों की भीड़ सदा ही बनी रहती। कभी-कभी जब मेहमान बहुत ज्यादा होते और गांधीजी आते तो दुमंजिले पर का छोटा एक कमरा उन्हें दिया जाता। इसमें सब कुर्सी पलंग और एक ड्रेसिंग टेबल इतना सामान रहता था। बगल में छोटा-सा बाथ-रूम था जिसमें एक छोटा मुंह धोने का बेसिन था और नहाने की सुविधा थी। कमरे में तीन खिड़कियाँ थीं। सामने से समुद्र दीखता था।

यह कमरा गांधीजी को इतना भा गया था कि बाद में वे जब कभी आते और शान्ति भवन में भीड़ न होती तो भी हमेशा इसी कमरे में रहना पसन्द करते थे। जब पिताजी कहीं बाहर गये हुए होते तब भी गांधीजी हमेशा बिना किसी संकोच के हमारे ही घर आते और ठहरते थे। उस समय दादी-माँ के साथ मैं उनकी सारी व्यवस्था करता था।

गांधीजी बात के बहुत पक्के थे। उनकी एक दूसरी विशेषता [illegible] कि दिन में या रात में जब [illegible] कोई काम [illegible] विचार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी वे इसी प्रकार [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] दी थी।

गोखलेजी

१ मेरे पिताजी राजनीतिक आन्दोलनों में आगे बढ़कर कोई खास हिस्सा नहीं लेते थे। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले देश के अनेक नेताओं के साथ उनका निकट का सम्बन्ध था। ऐसे लोग बम्बई आने पर अधिकतर हमारे ही घर ठहरा करते थे। पिताजी अपना नाम दिये बिना उनके कामों में भी यथासम्भव सहायता करते रहते थे। स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले की मेरे पिताजी के साथ घनी मित्रता थी। बम्बई आने पर गोखलेजी हमेशा पेडर रोडवाले हमारे 'शान्ति भवन' में ही ठहरते थे। गांधीजी के बारे में उनके बहुत ऊँचे खयाल थे और सब कोई जानते हैं कि गांधीजी भी उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। गोखलेजी ने शुरू से ही गांधीजी को कह रखा था कि उन्हें अपने काम-काज के सिलसिले में किसी भी तरह की मदद की जरूरत हो तो वे मेरे पिताजी से मिल लिया करें। ऐसी एक घटना मुझे याद है। जिस दिन गांधीजी ने साबरमती आश्रम की स्थापना की उसी

लिया व एक बार पैसों की मदद के लिए पिताजी के पास आये थे और पिताजी ने अपना नाम प्रकट न करने की शर्त पर रकम दी थी।

इस प्रकार अपनी छोटी उम्र में ही मैंने गोयनकाजी को बहुत निकट से देखा था। उम्र छोटी होने के कारण मैं उनके काम-काज और उनकी राजनीति को तो नहीं समझता था फिर भी उनकी अनेक मीठी स्मृतियाँ मेरे ध्यान में हैं।

शान्ति भवन में मेहमानों की भीड़ सदा ही बनी रहती। कभी-कभी जब मेहमान बहुत ज्यादा होते और गोयनकाजी साथ हो तो दुमंजिले पर का छोटा एक कमरा उन्हें दिया जाता। उसमें एक कुर्सी, पलंग और एक ड्रेसिंग टेबल इतना सामान रहता था। बगल में छोटा-सा बाथ-रूम था जिसमें एक छोटा मुंह धोने का बेसिन था और नहाने की सुविधा थी। कमरे में तीन खिड़कियाँ थीं। सीधा समुद्र दीखता था।

इस कमरे में गोयनकाजी का इतना मन लग गया था कि बाद में मद्रास में वे जब कभी आते और शान्ति भवन में आकर ठहरते तो भी इसी कमरे में रहना पसन्द करते थे। जब पिताजी कहीं बाहर गए हुए होते तब भी रामनाथजी हमेशा बिना किसी संकोच के हमारे ही यहाँ आते और ठहरते थे। उस समय हम लोगों के साथ [illegible] उनकी [illegible] व्यवहार रहता था।

रामनाथजी बात बहुत कम करते थे। उनकी एक ख़ूबी [illegible]

[illegible]

जब पहले-पहल स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्री को सोसाइटी में लेने का प्रार्थना-पत्र आया उस समय गोखलेजी बम्बई में हमारे घर थे। और जब शास्त्रीजी मिलने आये तो गोखलेजी उनसे पहली बार हमारे 'शान्ति-भवन' के पीछेवाले बरामदे में मिले थे। बाद में शास्त्रीजी को सोसाइटी में प्रवेश देने के सिलसिले में गोखलेजी ने पिताजी के साथ परामर्श भी किया था।

इसके कुछ वर्षों बाद १५ मई, १९२९ के दिन शास्त्रीजी ने हमारे शान्ति-भवन के उस स्थान पर बैठकर, जहाँ गोखलेजी के साथ उनकी पहली भेंट हुई थी मेरी ऑटोग्राफ बुक में हस्ताक्षर करते हुए लिखा था

"This house is of great interest to me and I enjoy being here This is where Mr Gokhale met his friends on arrival from South Africa"

[इस घर में मुझे बड़ी दिलचस्पी है और यहाँ रहने में मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ। यह वही जगह है जहाँ श्री गोखले दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद अपने मित्रों से मिले थे।]

शान्ति भवन में बिलियर्ड का एक टेबल रहा करता था। एक बार उसके खेल में मेरे रतनसीभाई ने गोखलेजी को पूरी तरह हरा दिया। इस पर उन्होंने कहा

बहुत सम्भव है आदमी अच्छा खिलाड़ी बन ही जाय लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं।—

इसके बाद उनमें कोई नाराजगी नहीं थी जो बुरा मान गये हों।

शान्ति भवन के सामने ही जहाँगीरजी पिटीट का बँगला था।

उनकी पत्नी श्रीमती जाइजी पिटीट गोखलेजी और गांधीजी की बड़ी प्रशंसक थीं। उन्होंने एक बार पिताजी से कहा

"एक बार गोखलेजी को मेरे घर नहीं ठहराइयेगा ?

पिताजी ने इसके लिए अपनी स्वीकृति दे दी। बाद में जब गोखलेजी बम्बई आये तो पिताजी ने उनसे बातचीत की और उन्हें जाइजीबहन के घर ठहराया। गोखलेजी वहीं रहे।

वहाँ गोखलेजी को जिस कमरे में ठहराया गया था उसमें रात के समय उनके बँगले का नौकर बिछौना तो लगा गया लेकिन ओढ़ने के लिए कुछ रखना भूल गया! जाड़े के दिन थे। पिछली रात में गोखलेजी को ठण्ड लगने लगी। उठकर अँधेरे में सब कुछ टटोला लेकिन ओढ़ने लायक कुछ नहीं मिला। उनके कमरे की बगल में बिलियर्ड का टेबल रखा था। गोखलेजी ने उसकी खोल निकाल ली और उसे ओढ़कर सो गये! सबेरे उठकर खोल वापस बिलियर्ड की टेबल पर चढ़ा दी!

जाइजीबहन को इसका कोई पता नहीं चला। लेकिन गोखलेजी ने अपनी यह आपबीती पिताजी को सुना दी थी इसलिए अकेले उन्हींको पता था। बाद में एक बार जब किसी मौके पर पिताजी ने जाइजीबहन को यह बात विनोद में सुनायी तो वे बहुत ही शर्मिन्दा हुई थीं।

सन् १९१२ में मेरे पिताजी पहले-पहल विलायत गये थे। उन दिनों गोखलेजी वहीं थे। मेरी दादी-माँ को इस बात की बड़ी फिक्र थी कि विलायत में पिताजी अपने धर्म का पालन किस हद तक कर सकेंगे। उनकी इस चिन्ता को दूर करने के लिए गोखलेजी ने उन्हें पूरी तरह आश्वस्त करनेवाला एक पत्र मराठी में लिखा था।

पूना के निकट बसे हुए सिंहगढ़ के डूंगरी किले पर हमारा एक बंगला था। गोखलेजी पिताजी के साथ वहाँ भी आया करते थे। वहाँ मैंने उन्हें पिताजी के साथ कई बार ताश खेलते देखा था। ब्रिज खेलते थे। गोखलेजी की आदत यह थी कि जब तक पूरे पत्ते न आ जाते उन्हें रख छोड़ते। उठाकर देखते न थे। बाद में अपनी आँख चपचपाकर ही देखते। उनका विश्वास था कि ऐसा करने से पत्ते अच्छे निकलते हैं! उन दिनों मामूली ब्रिज खेला जाता था। तब ऑक्शन ब्रिज का चलन नहीं था।

सन् १९१५ में पूना में गोखलेजी का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु का तार उसी रात हमारे घर पहुँचा था। मैंने पढ़ लिया लेकिन पिताजी को बताया नहीं। सवेरे ही उन्हें दिया। वे बहुत दुःखी हो गये। मुझ पर थोड़े नाराज भी हुए। कहने लगे मुझे उसी समय जगा देना चाहिए था। जगा दिया होता तो मैं रात ही मोटर से पूना जा सकता था। बाद में सवेरे ना वे मोटर से गये ही।

गोखलेजी ने अपनी एक वसीयत लिखी थी। उसके एक्जीक्यूटर के रूप में उन्होंने सर लल्लूभाई सामलदास और पिताजी को नियुक्त किया था।

सन्तान के नाते गोखलेजी के २ लड़कियाँ ही थीं। छोटी गोदावरीबाई थी जो सन् १९१ के इन्फ्लुएन्ज़ा में गुजर गयी। बड़ी काशीबाई का विवाह फरवरी १९१९ में हुआ था। विवाह के बाद उनका नाम आनन्दीबाई रखा रहा। गोखलेजी की मृत्यु के बाद भी आनन्दीबाई ने हमारे परिवार के साथ अपना सम्बन्ध बराबर बनाये रखा। मेरी दादी-माँ भी उन्हें बेटी की तरह ही मानती और बराबर उनकी सार-संभाल भी करती थीं।

हमारे परिवार की 'व्यवहार-पोथी' में दो बातें लिखी मिलती हैं। एक है

"मि. गोखले की कन्या के विवाह के अवसर पर दिया गया गहना। (आप प्यारा दिया है।) माघ वदी नवमी (सन् १९१९)।"

और दूसरी है

"मि. गोखले की लड़की के लड़के का मुंह देखकर चांदी-सोना रुपये दिये (सन् १९२)।

मेरे पिताजी की मृत्यु के बाद श्रीमती आनन्दीबाई गोखले ने अपने जीवन-काल में मेरे साथ का सम्बन्ध ज्यों का त्यों बनाये रखा था।

इस प्रकार श्री गोखलेजी के परिवार के साथ हमारे परिवार का सम्बन्ध ४ साल से भी अधिक लम्बे समय तक बना रहा। ●

श्री दीनशा वाछा

स्व० सर दीनशा एदलजी वाछा जब टाटा कम्पनी से अलग हुए तो मेरी दादी-माँ ने उन्हें फोर्टवाले हमारे कार्यालय में रख लिया था। कई वर्षों तक वे हमारे यहाँ काम करते रहे। लोग उन्हें 'वाछा सेठ' कहते थे। वे मिलों का काम-काज देखते थे कार्यालय में उन्हें मेरे पिताजी के बराबरी के साथी का-सा पद प्राप्त था और वे चेकों पर सही भी करते थे। सन् १९३१-३२ तक वे हमारी पेढ़ी में रहे।

लैण्ड रेवन्यू का और देश के दूसरे आर्थिक प्रश्नों का उनका अध्ययन गहरा था। पुराने समय में एक बार वे कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट भी रह चुके थे। लेकिन बंग-भंग के बाद की राष्ट्रीय राजनीति के और आन्दोलनों के वे कट्टर विरोधी थे। सन् १९१६ के बाद जब मैं व्यवसाय करने लगा तो काम-काज के सिलसिले में मुझे अक्सर उनके पास जाना पड़ता था। उस समय के वर्तमान राजनीति की बहुत तीखी आलोचना और गरमागरम चर्चा किया करते थे।

गांधीजी की राजनीति के साथ तो उनका सदा मतभेद ही रहा। मैं गांधीजी के नेतृत्व की जितनी प्रशंसा करता उतने ही वे चिढ़ते! वे दिल्ली की बड़ी धारा-सभा के एक सदस्य थे। उसकी बैठकों के सिलसिले में दिल्ली अथवा शिमला जाते तो वहाँ से भी मुझे पत्र लिखा करते थे और पुस्तकों में से अवतरण भेजा करते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय नेताओं की कड़ी टीका करते और उनके विरुद्ध भाषण भी करते।

एक बार हमारे कार्यालय का कोई कार्यकर्ता खादी की टोपी पहनकर दफ्तर में आया। वाछा सेठ ने उसे समझाया। दूसरे दिन ऑफिस में आकर देखा तो ऑफिस के हर आदमी के सिर पर खादी की टोपी थी! ठंडे हो गये। चुप रहे।

उनकी दान-वृत्ति अत्यन्त उदार थी। कौम या धर्म का नाम लेकर पहुँचनेवाला कोई भी आदमी उनके घर से खाली हाथ नहीं लौटता था। कलम उठाये बिना लिखा करते थे। इस कारण उनके अक्षर साफ होते हुए भी पढ़े नहीं जाते थे। पढ़ने में बड़ी मुश्किल होती थी। एक बार मेरे पिताजी श्री [illegible] विलायत में उस समय के स्टेट सेक्रेटरी मांटेग्यू से मिलने गये थे। तब उन्होंने अपने पास इकट्ठा करके रखे हुए सर दीनशा वाछा के पत्रों का एक बड़ा-सा पुलिन्दा पिताजी के सामने रखकर उनसे कहा था : 'इन्हें पढ़ दीजिए!'

वे उनमें पूरे पढ़ भी पाये थे [illegible]! ●

श्री चन्दावरकर

५ जस्टिस सर नारायण चन्दावरकर जिन दिनों अपनी युवावस्था में बम्बई में कानून पढ़ रहे थे उन दिनों वे चीनाबाग के पीछे हमारी मोरारजी गोकुलदास की चाल में रहते थे। उसी समय से उन्होंने अपनी बुद्धि-शक्ति के कारण मेरे दादा मोरारजी गोकुलदास का ध्यान खींच लिया था। मोरारजी सेठ ने अपनी प्रौढ़ावस्था में कामचलाऊ अंग्रेजी काफ़ी सीख ली थी। फिर भी जब वे उस समय की धारा-सभा में नियुक्त हुए, तो उन्हें नये-नये कानूनों के बिलों पर अंग्रेजी में भाषण करने पड़ते थे। अपने इन भाषणों के मसविदों को वे चन्दावरकर मास्टर से जँचवाकर और सुधरवा कर तैयार करते थे।

दादाजी की मृत्यु के बाद मेरी दादी-माँ ने उन्हें मेरे धरमसी काका के और पिताजी के शिक्षक (ट्यूटर-कम्पैनियन) के रूप में नियुक्त किया। उस समय से लेकर आगे कई वर्षों तक वे हमारे घर रहे और काकाजी तथा पिताजी पर उनकी शिक्षा, अनुशासन और समाज-सुधार-सम्बन्धी संस्कारों का गहरा प्रभाव पड़ा।

वे हम दोनों को सुबह-शाम हवाखोरी के लिए ले जाते।

उस समय दादाभाई, तैलंग आदि देश के नेताओं के साथ प्रतिदिन उनकी भेंट हुआ करती और देश के प्रस्तुत प्रश्नों के बारे में चर्चाएँ चला करतीं। इसके कारण दोनों पर बचपन से ही राष्ट्रीय भावना और देश-भक्ति के गहरे संस्कार पड़े। इस तरह मेरे पिताजी उन दिनों स्वर्गीय दादाभाई, गोखलेजी और सर फीरोजशाह मेहता के समान महान् पुरुषों के सम्पर्क में आये थे।

सर नारायण कई बरस तक हमारे परिवार के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध बनाये रहे। हम उन्हें चन्दावरकर काका कहते थे। जब मैं विलायत पढ़ने गया तो उन्होंने अपनी अचकन की जेब में रखा पुराने आधे डॉलर का चालीस साल पुराना सोने का एक सिक्का मुझे आशीर्वाद के रूप में बड़े प्रेम के साथ दिया था। वह आज भी मेरे पास है।

हमारे घर का काम छूटने के बाद वे दैनिक 'इन्दुप्रकाश' के सम्पादक बने, अग्रगण्य समाज-सुधारक और प्रार्थना-समाज तथा 'संसार-सुधार-परिषद्' के नेता बने और बम्बई हाईकोर्ट के न्यायाधीश के पद पर भी पहुँचे। वे उस समय की कांग्रेस के अध्यक्ष भी बने थे। इतना सब होने पर भी हमारे परिवार के साथ उनका घरोपा ज्यों का त्यों बना रहा। मांगलिक अवसरों पर और विशेष प्रसंगों पर वे परमसी काका की तरह ही हमेशा मेरी दादी-माँ के पैर छूने पहुँचा करते थे।

पेडर रोडवाले हमारे शान्ति भवन के सामने ही गीन्जि-कॉस में वे रहते थे। जब तक हम शान्ति भवन में रहे, उनकी पत्नी भी रात के ब्यालू (भोजन) के बाद दादी-माँ के पास बिना नागा आती रहती थीं और निश्चिन्त भाव से घण्टों-घण्टे बैठकर बातचीत करती रहती थीं। ●

श्रीमती एनी बेसेण्ट

१ मेरे काका धरमसी सेठ और पिताजी दोनों पक्के थियो-सॉफिस्ट थे और श्रीमती बेसेण्ट को बहुत मानते थे। इस कारण श्रीमती बेसेण्ट जब बम्बई आती-जाती तो धरमसी काका के जीवन-काल में उनके चौनाबाग में ठहरती थीं और बाद में हमारे घर शान्ति भवन में ठहरा करती थीं।

वे शुद्ध शाकाहारी थीं। फर्श पर बैठकर और पलथी मारकर लिखा करती थीं। उनके लिखने के लिए हमने एक खास छोटे कद का डेस्क बनवाया था। वे बम्बई आतीं तो उनके साथ केवल उनका एक नौकर होता। सेक्रेटरी आदि दूसरा कोई नहीं।

वे अपना सारा काम स्वयं करती थीं। किसी किस्म की धांधली मचाती नहीं। कई बार तो हमें घर के अन्दर पता भी न चलता कि श्रीमती बेसेण्ट आयी हैं। पिताजी बम्बई में न होते कहीं बाहर गये होते तो भी वे हमारे ही घर आकर ठहरतीं। जिन दिनों मैं विलायत गया था और हैरो में पढ़ने के लिए रहा था उन दिनों मेरे शिक्षक की पत्नी ने मुझसे कहा था कि श्रीमती बेसेण्ट से

अन्य

शिवाजी किसी समय हैरो के विद्यालय में पादरी का काम करते थे और उन्होंने 'इस लड़की' को छोटी उम्र में विद्यार्थियों की बेंचों के सामने खड़े रहकर भाषण करने का अभ्यास करते हुए देखा था।

मेरी किशोरावस्था के दिनों में सारे हिन्दुस्तान में श्रीमती बेसेण्ट के नाम का बड़ा बोलबाला था। उन दिनों बहुतेरे बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी थियोसाफिस्ट बने थे और वे श्रीमती बेसेण्ट को इस देश में थियोसाफी के क्षेत्र में सबसे बड़ा और राष्ट्रीय तथा हिन्दू-शिक्षा के क्षेत्र में अपने नेता के रूप में मानते थे।

वक्तृत्व-कला में सारी दुनिया के अग्रगण्य वक्ताओं में उनकी गिनती होती थी और वैसी वे थी भी। भाषण करते समय श्रोताओं पर पड़नेवाले प्रभाव को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा करती थी और जब अनुभव करती कि सुननेवाले थक रहे हैं अथवा अस्थिर हो रहे हैं तो बड़ी कुशलता से अपनी हाथ-घड़ी देखकर भाषण समाप्त कर दिया करती थीं।

सन् १९१५ में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था। उसमें मैंने उन्हें भी सुना था। वे एक बार कांग्रेस की अध्यक्ष भी बनी थी।

लोकमान्य तिलक के ६ साल की सजा भुगतकर आने के बाद सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। इस कांग्रेस में लोकमान्य के नेतृत्व में काम करनेवाला गरम दल जो सूरत में हुए झगड़ों के बाद कांग्रेस से हट गया था फिर कांग्रेस में सम्मिलित किया गया और कांग्रेस ने मुसलमानों को भी विशेष अधिकार देने का वचन दिया। इस अधिवेशन के समय मेरे चचेरे भाई श्री रतनसी ने लखनऊ में एक बँगला खास तौर पर किराये से लिया था जिसमें श्रीमती बेसेण्ट के अलावा श्री भूलाभाई देसाई

१६

का परिवार और मेरे शिक्षक स्वर्गीय रणछोड़राम बाबाभाई आदि हमारे साथ रहते थे।

धरमसी काका पर, पिताजी पर और चचेरे भाई रतनसी पर श्रीमती बेसेन्ट का बहुत प्रभाव था। मेरे पिताजी की मृत्यु पर लिखी अपनी टिप्पणी में गांधीजी ने भी इसका जिक्र किया है।

श्री जमनादास द्वारकादास और मद्रास के सुप्रसिद्ध धाराशास्त्री (कानूनदाँ) श्री रामस्वामी अय्यर आदि जो होम रूल में दिलचस्पी के अथवा श्रीमती बेसेन्ट के बहुत पक्के अनुयायियों के रूप में विख्यात हुए और नेता बने श्रीमती बेसेन्ट के साथ उनका पहला परिचय मेरे पिताजी ने ही कराया था। श्रीमती बेसेन्ट और कर्नल आल्कॉट के विरुद्ध कृष्णमूर्ति के नाम से जो मशहूर मुकदमा चला था उस समय भी एक बार श्रीमती बेसेन्ट बम्बई में हमारे घर आयी थीं। उन्हीं दिनों उक्त केस में श्रीमती बेसेन्ट के विरुद्ध कृष्णमूर्ति के पिता की ओर से मुकदमा लड़नेवाले सी. पी. रामस्वामी अय्यर भी हमारे घर ही ठहरे थे। पिताजी ने ही दोनों को पहले-पहल एक-दूसरे से मिलाया था। इस घटना के बाद सर सी. पी. जीवनभर श्रीमती बेसेन्ट के कट्टर अनुयायी बनकर रहे। वे हमेशा कहा करते कि नरोत्तम सेठ के कारण उन्हें अपने जीवन का एक सबसे बहुमूल्य परिचय प्राप्त हुआ।

जब भी श्रीमती बेसेन्ट हमारे घर आतीं, तब शान्ति-भवन में अनेक थियॉसॉफिस्टों का और दूसरे लोगों का आना-जाना बराबर बना रहता था। श्रीमती बेसेन्ट का अनेक सार्वजनिक सभाओं और सम्मेलनों आदि में जाना होता था। जब कोई उन्हें लिवाने नहीं आता, तो वे हमारी मोटर में जाया करतीं। पिताजी अक्सर ही कभी उनके साथ सभा-सम्मेलनों में जाते थे। उनके आने पर उन्हें

सिखाने के लिए और जाने पर विदा करने के लिए स्टेशन पहुँचा करते थे। अन्त-अन्त में रतनसीभाई ने पिताजी के सामने बड़े आग्रहपूर्वक अपना यह प्रस्ताव रखा था कि श्रीमती बेसेण्ट को उनके घर ठहरने दिया जाय। पिताजी ने उनकी यह माँग कबूल कर ली थी। इसलिए बाद में वे वहीं ठहरने लगी थीं। श्री कृष्णमूर्ति भी हमेशा उन्हींके घर ठहरा करते थे।

सन् १९१६-१७ में श्रीमती बेसेण्ट ने हिन्दुस्तान के राजनीतिक नेताओं के सहयोग से होमरूल का आन्दोलन चलाया। उस समय होमरूल लीग की स्थापना भी हमारे शान्ति-भवन में ही हुई थी। उन वर्षों में भी तिलक, जिन्ना, हॉर्निमन, जयकर आदि अनेक राजनीतिक नेता हमारे घर आते रहते थे। उस समय मेरी उम्र १४-१५ साल की थी। मैं दूर एक कोने में खड़ा-खड़ा इन नेताओं को आते-जाते देखा करता था।

थियॉसॉफीवाले एक प्रकार के गूढ़ वाद में विश्वास करते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार हिमालय के दुर्गम प्रदेशों में अथवा तिब्बत में ऐसे कुछ महात्मा रहते हैं जो दुनिया की अमुक निश्चित प्रवृत्तियों में रुचि रखते हैं और उन्हें प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन देते रहते हैं। उन दिनों ऐसे मास्टरों (महात्माओं) के फोटो निष्ठावान् थियॉसॉफिस्टों में बाँटे जाते थे। मेरे पिताजी की पूजा में भी ऐसे दो फोटो (बन्द डिब्बे में) रहते थे और पिताजी रोज उन पर पुष्प चढ़ाते थे।

इस प्रकार के फोटुओं के बारे में परिपाटी यह थी कि जिनके पास वे होते उनकी मृत्यु के बाद उनके वंशजों को वे फोटो थियॉसॉफी के मुख्य केन्द्र को वापस लौटा देने होते थे। यदि वापस जाने का उत्तराधिकारी थियॉसॉफी के 'अन्तरंग मण्डल' (इनर सर्कल)

का न हो तो वह न तो इन फोटुओं को रख सकता है और न देख ही सकता है। अपने पिताजी की मृत्यु के बाद मैंने श्रीमती बेसेन्ट से प्रार्थना की कि वे इन दोनों फोटुओं को मेरे पास रहने दें। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार कर ली।

इस प्रकार उक्त दोनों फोटुओं की पेटी मेरे पास ज्यों की त्यों रह सकी है और पिताजी के समय की तरह ही आज भी उस पर प्रतिदिन फूल चढ़ाये जाते हैं। ●

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य तिलक को मैंने पहले-पहल एक बार सन् १९१५ में उस समय देखा था जब वे श्रीमती बेसेण्ट से मिलने हमारे शान्ति-भवन आये थे और दूसरी बार उस वक्त देखा था जब हम सब गरमी की छुट्टियों में पूना के निकट सिंहगढ़ के किले पर अपने बँगले में रहने गये थे। लोकमान्य के बम्बई के एक वकील मित्र श्री दाजी आबाजी खरे का बँगला भी गढ़ पर था। वहीं वे कभी-कभी आकर रहते थे। इसी तरह इस बार भी आये थे। रोज शाम को टहलने निकलते थे और उस समय हमारे बँगले के सामने खड़े रहकर हमें पुकारा करते थे। हम सब उत्साह से उनके साथ हो लेते थे।

लोकमान्य गणित और ज्योतिष के उद्भट विद्वान् थे। इसलिए रोज पश्चिम की बुर्ज के पास पहुँचकर दीवार पर से सूर्यास्त का दर्शन करते थे और अपनी घड़ी का समय मिला लेते थे। उस निर्जन किले पर घड़ी मिलाने का दूसरा कोई साधन था नहीं।

सन् १९२ की गरमियों में गांधीजी सिंहगढ़ आये थे और हमारे बंगले में ठहरे थे। उस समय लोकमान्य भी कुछ दिनों के लिए उनके साथ रहने की दृष्टि से खास तौर पर सिंहगढ़ आकर रहे थे। इन दो महान् देश-नेताओं के इस सिंहगढ़-सहवास का कार्यक्रम स्वामी आनन्द ने पिताजी से पूछकर खास तौर से बनाया था। उस समय मैं विलायत था।

लोकमान्य उसी साल स्वर्गवासी हुए। उनकी मृत्यु के समाचार मैंने विलायत से लौटते समय अपने जहाज पर फ्रांस के मार्सेल्स बन्दरगाह पर सुने थे। जिन दिनों मैं बम्बई पहुँचा वहाँ उनकी स्मशान-यात्रा की फिल्म दिखाई जा रही थी। पिताजी ने मुझे खास तौर पर उसे देखने को भेजा था। ●

पं० मालवीयजी

पं० मालवीयजी बम्बई आने पर प्रायः हमारे घर ठहरते थे। रोज सुबह-शाम पूजा-पाठ करते। पूजा के बाद १०-१५ मिनट कसरत भी कर लेते थे।

बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय को मेरे परदादा काका और पिताजी के नाम से पचास हजार रुपयों की रकम दान में दी गयी थी। मुझे उस समय की एक-दो बातें याद हैं। काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव रखने का समारोह हुआ था। उसके तुरन्त बाद वहीं मेरा उपनयन-संस्कार हुआ। सन् १९२ में मेरे विलायत से लौटने पर यह निश्चय हुआ कि विदेश-यात्रा का प्रायश्चित्त करने के लिए मुझे काशी जाना चाहिए। पिताजी ने सोचा कि अगर इस निमित्त से मेरी दादी-माँ मुझे लेकर काशी जायेंगी और विश्वविद्यालय देखेंगी तो उन्हें सन्तोष होगा। इस तरह दादी-माँ को समझाकर उन्होंने मुझे उनके साथ बनारस भेजा था। अहमदाबाद के प्रसिद्ध विद्वान् श्री आनन्दशंकर ध्रुव उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय में थे। दादी-माँ को विश्वविद्यालय दिखाने का काम मालवीयजी ने उन्हींको सौंपा था।

तदनुसार उन्होंने हमारे साथ चारों ओर घूमकर हमें विश्वविद्यालय दिखाया था।

बाद के वर्षों में दादी-माँ ने मालवीयजी के सामने अपनी यह इच्छा प्रकट की थी कि विश्वविद्यालय को पचास हजार रुपयों का दान और दिया जाय। शर्त यह थी कि इस दान को पहलेवाले दान की रकम के साथ जोड़कर कुल दान एक लाख रुपये का माना जाय और विश्वविद्यालय में साइन्स कॉलेज को अथवा संस्था के ऐसे किसी भवन को 'मोरारजी गोकुलदास' का नाम दिया जाय। मालवीयजी का आग्रह यह था कि पहले वाले दान की याद न की जाय और नयी रकम ही एक लाख की दी जाय। यह योजना सफल नहीं हो सकी।

प्रायश्चित्त लेने की विधि के समय का एक किस्सा भी मुझे याद है। उपनयन-संस्कार के समय संस्कार करानेवाले शास्त्री ने मेरा मुण्डन करवाया था। इस बार भी उन्होंने कहा कि प्रायश्चित्त के निमित्त से मुझे मुण्डन कराना चाहिए।

'इसकी कोई जरूरत नहीं। बिना मुण्डन के ही सारी विधि करा दीजिये।'

लेकिन कर्मकाण्डी राजी नहीं हुए। इतने में मालवीयजी आ पहुँचे। बोले :

किस बात की चर्चा चल रही है ?

शास्त्रीजी ने अपनी शिकायत पेश की। मालवीयजी ने मुझसे कहा : शास्त्र की आज्ञा है कि मुण्डन कराना चाहिए। शास्त्र की आज्ञा माननी चाहिए। इसमें कौन बड़ी मुसीबत है ? बाल तो आठ दिन में फिर उग ही आयेंगे न ?

मैं मालवीयजी को महापुरुष के रूप में बहुत सम्मान और

आदर

आदर की दृष्टि से देखा करता था। उनकी बात रखने के लिए मैंने मुण्डन करा लिया।

उसी समय के काशी-वास की मालवीयजी से सम्बन्ध रखने वाली एक और स्मृति मुझे रह गयी है। ८० वर्ष की उम्र में तीसरी बार विवाह करनेवाले किन्हीं धनाढ्य भाटिया-सज्जन से हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए एक खासी बड़ी रकम का दान मालवीयजी प्राप्त करना चाहते थे। वे सज्जन हद दर्जे के मूँजी (कंजूस) थे। मालवीयजी को धक्के खिलाया करते लेकिन दान न देते। उन्होंने निश्चय किया कि इस काम के लिए वे मुझे साथ लेकर एक बार फिर उन सज्जन के घर जायें। तदनुसार वे मेरे साथ उनके मुकाम पर पहुँचे। इधर वे सज्जन किसी तरह पसीजते नहीं थे और उधर मालवीयजी उन्हें छोड़ते नहीं थे! यह रस्साकस्सी शाम के ६ बजे से लेकर रात के १ ।। तक चलती रही। मालवीयजी उनसे चिपके ही रहे। आखिर मालवीयजी से पिण्ड छुड़ाने के विचार से ही उन सज्जन ने उन्हें कुछ रकम दी थी। कितनी दी थी सो याद नहीं!

यह तो जग-जाहिर है कि समय की पाबन्दी के मामले में मालवीयजी बहुत शिथिल थे। सभा-सम्मेलनों में हमेशा देर से पहुँचते। ट्रेन पकड़कर कहीं जाना होता तो घर के लोग घड़ी का काँटा एक घण्टा आगे बढ़ा दिया करते। सन् १९३१ की गोलमेज-परिषद् के समय इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुए उस समय गांधीजी सहित सारे नेताओं के स्टीमर पर पहुँच जाने के बाद उनके कारण पी० एण्ड ओ० कम्पनी के मेल स्टीमर को बम्बई के बलार्ड पीयर के डॉक पर लम्बे समय तक रुकना पड़ गया था।

देशबन्धु दास

१. सन् १९२४ में श्री देशबन्धु दास ने मोतीलालजी के साथ गांधीजी से स्वराज्य पार्टी की स्थापना के सिलसिले में चर्चा करने पूना आये थे। उसी समय मैं उनसे पहले-पहल मिला था। बंगाल के जूट और आसाम की चाय के व्यापार का एकाधिकार गोरों के हाथ में था। देशबन्धु ने उन दिनों एक ऐसी योजना तैयार की थी जिससे यह व्यापार देशवासियों के हाथ में आ सके। यह योजना बहुत बड़ी थी और इतनी विशाल कि उसके लिए करोड़ों की पूंजी लगती। उस समय एक दिन अपने कुछ बंगाली मित्रों को साथ लेकर वे पिताजी से और दूसरे धनिकों से इस विषय की चर्चा करने के लिए फोर्ट-स्थित सुदामा-हाउसवाले हमारे कार्यालय में आये थे।

अन्य

मोतीलालजी नेहरू

१० पं० मोतीलालजी नेहरू मेरे पिताजी को बहुत अच्छी तरह पहचानते थे। इस कारण मैं भी उनके सम्पर्क में आ सका था। उनके प्रतापी व्यक्तित्व की बहुत गहरी छाप मेरे दिल पर पड़ गयी है। वही धारा-सभा की बैठकों में सिंह की-सी चाल से चलकर अपनी जगह पर बैठा करते थे। ट्रेजरी बेंच (सरकारी पक्ष) के बड़े अंग्रेज-अधिकारी भी उनको बड़ी इज्जत की निगाह से देखते थे। वे उनसे डरते और उनका अदब रखते थे।

मेरे पिताजी की मृत्यु के अवसर पर उन्होंने मेरे नाम समवेदना का एक भावपूर्ण तार भेजा था। इसके बाद जब वे बम्बई आये और मैं रेंगटा-हाउस के पास के 'कफ-कैसल' में श्री जाल नवरोजी के घर उनसे मिलने गया उस समय वहाँ लोगों का एक बड़ा समुदाय मौजूद था। लेकिन वे मुझे देखते ही उठ खड़े हुए और पास के कमरे में ले जाकर तथा अपने पास बैठाकर बड़ी ही आत्मीयतापूर्वक मेरे कुशल-समाचार पूछे और कहा कि मुझसे किसी बात की जरूरत हो तो मैं उन्हें बिना किसी संकोच के कहा करूँ। इसके बाद बहुत-बहुत ढाढ़स बँधाकर उन्होंने मुझे बिदा किया।

विट्ठलभाई पटेल

११ सन् १९२ में विलायत से लौटते समय अपने 'कैसरे हिन्द' जहाज पर मैं पहले-पहल स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल से मिला था। वे किसी पार्लमेण्टरी कमीशन के सामने गवाही देकर हिन्दुस्तान वापस आ रहे थे। व्हिस्की पीते थे। रोज 'वामनिया व्हिस्की' के नाम से व्हिस्की मँगवाते और 'नारायण-नारायण' कहकर पीते रहते थे।

इसके कई वर्षों बाद जब वे दिल्ली की बड़ी धारा-सभा के स्पीकर बने तो जब-जब भी बड़ी धारा-सभा में भारतीय जहाजी व्यापार की चर्चा निकलती वे हमारी बहुत मदद करते। उन्हीं दिनों मैं उनके अधिक सम्पर्क में आया। वे धारा-सभा में कोई-न-कोई मुद्दा (इश्यू) खड़ा करके हर रोज सरकार को और अंग्रेज-अधिकारियों को आड़े हाथों लिया करते थे। मुझे यह बहुत अच्छा लगता था।

मेरे पिताजी की मृत्यु के अवसर पर वे बैठने आये थे और हमारे निवास-स्थान शान्ति-भवन से लेकर ठेठ महालक्ष्मी मन्दिर तक सबके साथ पैदल चलकर गये थे इस घटना ने मुझे बहुत प्रभावित किया था।

आत्म

वल्लभभाई पटेल

१२. सरदार वल्लभभाई के साथ मेरा पहला परिचय उस समय हुआ जब वे मैसूर में गांधीजी के साथ थे। कस्तूरबा, राजाजी और महादेवभाई के साथ वे भी हमारे घर भोजन के लिए आये थे। इसके बाद परिचय बढ़ता चला गया।

सन् १९३८ की हरिपुरा-कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने नेताओं और प्रतिनिधियों के लिए तरह-तरह की शाही सुविधाएँ खड़ी की थीं। नेताओं के लिए विशिष्ट निवास बनाये गये थे और उनका एक अलग भोजनालय था जिसकी व्यवस्था स्वामी आनन्द के जिम्मे थी।

एक छोटे-से पक्ष के मुख्य नेता बाद में पहुँचे। नेता-निवास में उनके लिए विशेष सुविधा करने की गुंजाइश रही नहीं थी। इसलिए सरदार ने उनके ठहरने की व्यवस्था परिवार-निवासों में से एक निवास में करवा दी। उस नेता को लगा कि उनकी नेतागिरी को धक्का पहुँचाने के लिए जान-बूझकर ही उन्हें नेताओं के साथ रखा नहीं गया है! उन्होंने बड़ा शोर मचाया!

इस सिलसिले में परस्पर कुछ सलाह-मशविरा करने के लिए सरदार और स्वामी आनन्द नेता-निवास और रसोई-घर के बीच के विशाल खुले मैदान में खड़े रहे। हमने देखा कि कोई सुन न सके इसी ख्याल से सरदार के दिमाग ने इस विशाल मैदानवाली जगह को अपने रोज-रोज के सलाह-मशविरे के लिए पसन्द किया था।

हम कुटुम्ब-निवास में रहते थे। सब कहीं जाने के प्रवेश-पत्र हमारे पास थे। सिर्फ बड़े भोजनालय के नहीं थे। क्योंकि हमारा अपना रसोई-घर अलग था। बड़े भोजनालय की व्यवस्था पूज्य रविशंकर महाराज और नानाभाई भट्ट के हाथ में थी। हमें वहाँ देखने जाना था। लेकिन उस जगह खड़े हुए वालन्टियर हमें अन्दर जाने नहीं देते थे। आखिर गांधीजी की कुटिया पर जाने का जो प्रवेश-पत्र मेरे पास था वह मैंने दिखाया। एक नन्हें वालन्टियर ने अपना दिमाग दौड़ाते हुए कहा

यह पास तो सबसे बड़ा पास माना जायगा। इसलिए जो वहाँ जा सकता है, वह सब कहीं जा सकता है। जाने दो!

सरदार पटेल के पुत्र श्री डाह्याभाई की पहली पत्नी एक पुत्र छोड़कर चल बसी थी। इसके बाद जब दूसरी पत्नी के पहली सन्तान होने की खबर आयी तो महादेवभाई ने ट्रंक फोन से आये हुए समाचार गांधीजी को सुना दिये।

'कौन आया — लड़का या लड़की?'

'मैं यह पूछना तो बिलकुल भूल ही गया!'

'लड़की ही होनी चाहिए। लड़का होता तो पाटीदार आदमी चुप न बैठता।'

लड़की ही थी!

सिन्धिया कम्पनी के काम-काज में हमें जब कभी सलाह की अथवा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती तो हम बिना किसी संकोच के उनके पास पहुँचा करते थे और वे हमारा मार्गदर्शन करते रहते थे। ब्रिटिश जहाजी व्यापार के अंग्रेज धन-कुबेरों के विरुद्ध भारतीय जहाजी व्यापार के हित में हमें वर्षों तक जो भारी संघर्ष करना पड़ा था उसमें वे हमेशा ही हमारे लिए आधार-स्तम्भ और दीप-स्तम्भ से बने रहे।

ब्रिटिश जहाजी व्यापार की विराट् पी. एण्ड ओ. कम्पनी भारतीय जहाजी व्यापार को अपनी मुट्ठी में रखकर चला करती थी। उसके ब्रिटिश इण्डिया ग्रुप की एक मोगल लाइन थी। यह मोगल लाइन हज के लिए जानेवाले मुसलमान यात्रियों को जेद्दा ले जाती और वहाँ से वापस लाती थी। उसके कम्पनी अधिकारी हाजियों को जहाज में भेड़-बकरियों की तरह भरा करते थे और यात्रियों को दी जानेवाली मामूली-सी सुविधाओं के बारे में भी सरकारी आदेशों का अनादर करते थे। भारत-सरकार के इस विभाग में सर अकबर हैदरी के एक पुत्र उच्चाधिकारी थे। उन्होंने इस बात के लिए जी-जान से कोशिश की कि स्टीमर पर हाजियों के लिए बनाये गये तंग पाखाने एक फुट और चौड़े करा दिये जायें लेकिन कम्पनीवाले इस न-कुछ-सी बात के लिए भी उन्हें दाद न देते थे।

आखिर उकताकर उन्होंने वालचन्द काका से शिकायत की।

"ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी के साथ हमारा एक एग्रीमेण्ट है जिसमें हमारे स्टीमरों को यहाँ-वहाँ नहीं जाना चाहिए इसकी एक लम्बी सूची दी गयी है।"

सारी दुनिया के अधिकतर बन्दरगाह इस सूची में आ जाते

"यह भव्य और विशाल भवन जो २ वर्षों के साहसपूर्ण कार्यों के प्रतीक के रूप में आपके सामने खड़ा किया गया है, इसकी एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर पर इतिहास अंकित है और भविष्य का इतिहास लिखा जानेवाला है। ●

थे। लेकिन हमने देखा कि उसमें इस लाइन का नाम नहीं है। *किसी गलती से या पता नहीं कैसे यह नाम छूट गया था।* हम तो नहीं चाहते थे। इसलिए हमने इस लाइन में पड़ने का निश्चय किया।

हमारे स्टीमर चलने लगे। एक-दो साल चले। लेकिन ब्रिटिश इण्डिया ने घातक स्पर्धा शुरू कर दी और हमको भारी नुकसान हुआ। अन्त में वालचन्द काका को लगा कि यह लाइन बन्द कर देनी चाहिए। सिन्धिया कम्पनी के उच्च अधिकारी श्री मनसुखलाल मास्टर श्री शम्भुलाल पंड्या और हम सब इस राय के थे कि यह इस लाइन बन्द नहीं की जानी चाहिए। आखिर यह निश्चय हुआ कि सरदार की सलाह ली जाय और वे जैसा निर्णय दें वैसा किया जाय।

सरदार ने वर्ली के समुद्र-तट पर टहलने जाने के अपने समय पर हम सबको इकट्ठा आकर बात करने का वक्त दिया। वालचन्द काका ने पहले से सारी बात कर ही रखी थी। हमारा मन्तव्य सुनने के बाद सरदार ने दो मिनट के अन्दर ही फैसला दिया कि सिन्धिया को इस लाइन चलाना छोड़ना नहीं चाहिए।

सरदार के साथ वालचन्द काका की बड़ी मित्रता थी। वे *अक्सर काम के समय उनके साथ हवाखोरी के लिए भी निकला* करते थे। वालचन्द काका कम्पनी के आद्य संस्थापकों में से एक थे और [illegible] कम्पनी के प्राण-रूप थे।

कम्पनी का मुख्य कार्यालय बम्बई के बेलार्ड एस्टेट पर सुदामा हाउस में था। बाद में सिन्धिया-हाउस बना और २१ दिसम्बर, १९[illegible] के दिन सरदार के हाथों उसका उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर सरदार ने अपने जिन उद्गार प्रकट किये थे

"यह भव्य और विशाल भवन जो २ वर्षों के साहसपूर्ण कार्यों के प्रतीक के रूप में आपके सामने खड़ा किया गया है, इसकी एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर पर इतिहास अंकित है और भविष्य का इतिहास लिखा जानेवाला है। ●

मौलाना आज़ाद

१९ हिन्दुस्तान से हज की जियारत के लिए अरबस्तान जाने वाले मुसलमान यात्रियों को ले जानेवाले ब्रिटिश कम्पनी के स्टीमरों की तुलना में बहुत अधिक सुख-सुविधा देनेवाला और तेज रफ्तार से जानेवाला 'जल-मदीना' नाम का जहाज जिन दिनों हमारी सिन्धिया कम्पनी ने तैयार करवाया और चालू किया उन्हीं दिनों बम्बई में कांग्रेस की कार्यकारिणी की एक बैठक हुई। निश्चय हुआ कि उसके सदस्यों को यह जहाज दिखाने के लिए ले जाया जाय। तीन चार मोटरों में हम सबको डॉक पर ले गये। निश्चित समय पर मैं मौलाना साहब को मोटर में लेकर निकला। मौलाना साहब अपनी अच्छी तरह जानते-समझते थे लेकिन कभी बोलते नहीं थे। इधर मुझे अपनी टूटी-फूटी और गलत हिन्दुस्तानी में उनके साथ बातचीत करते हुए शर्म महसूस होती थी। इस तरह से गम्भीरता बिना एक शब्द बोले हम स्टीमर पर पहुँचे।

उस दिन स्टीमर पर ही नमाज का वक्त हो जाने से मौलाना साहब ने डेक पर ही नमाज अदा की थी। इंग्लैण्ड के एक मंत्री

की हैसियत से सर स्टेफर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान के साथ राजनीतिक वार्तालाप के लिए भारत आये थे। उस समय उन्होंने यहाँ के ब्रिटिश उद्योगपतियों से मिलना तो कबूल कर लिया लेकिन भारतीय उद्योगपतियों से मिलने के लिए समय के अभाव का अथवा ऐसा ही कोई बहाना बनाया। उन दिनों मौलाना साहब कांग्रेस के सदर थे। मैंने उनका ध्यान इस ओर खींचा और लिखा कि यह अनुचित है। मौलाना साहब ने क्रिप्स के साथ पत्र-व्यवहार किया। उन्हें उधर से जो भी जवाब मिलते रहे उनकी जानकारी वे मुझे देते रहे। क्रिप्स ने यह कहकर बात टाल दी कि न मिलने का कारण अनिच्छा नहीं बल्कि समय की कमी है। ●

सरोजिनी नायडू

१४ श्रीमती सरोजिनी देवी को मैंने पहले-पहल बम्बई में सन् १९१५ की स्पेशल कांग्रेस के अवसर पर देखा था। उनका ठिगना कद बहुत सुडौल था और कण्ठ अत्यन्त मधुर। उनकी वक्तृता सुनकर श्रोतृ-समाज डोला करता था। वे 'भारत-कोकिला' अथवा 'बुलबुले हिन्द' कहलाती थीं।

बम्बई के मेरे एक निकट के मित्र दोस्तमुहम्मद जानमुहम्मद के साथ उनकी भी अच्छी पहचान थी। इस कारण मैं उनके अधिक सम्पर्क में आया और बाद में गांधीजी के कारण यह सम्पर्क और भी बढ़ा। वे स्वभाव से विनोदी और खाने-पीने की बड़ी शौकीन थीं। अधिकतर ताजमहल होटल में ठहरती थीं। कविता और कला की मर्मज्ञ थीं। उनकी अंग्रेजी कविताएँ छोटी उम्र में ही देश विदेश में सब कहीं पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं। बाद में वे राजनीति के क्षेत्र में आयीं और अन्त तक गांधीजी के साथ रहीं। वे गांधीजी के साथ आगाखान-महल के जेल में भी थीं। कुछ वर्षों [illegible] आ गयी थी।

वे बहुत वर्षों तक बम्बई कांग्रेस-कमेटी की अध्यक्षा भी रही। इसी तरह वे कांग्रेस की कार्यकारिणी की सदस्या भी रही। जब ऐसी कोई सभा-समिति होती थी तो ताजमहल में लोगों का नाना मजमा इकट्ठा हो जाया करता था। वे उनको और पत्रकारों को खूब खिलाती-पिलाती थीं। जब राजेन्द्रबाबू ने विशाखापट्टनम के हमारे शिप-यार्ड का उद्घाटन किया तो सरोजिनी देवी ने उस अवसर पर एक सुन्दर भाषण किया था।

मेरे कई मित्रों की तरह वे भी मुझे 'शाम्नि' कहकर बुलाया करती थी। मुझे अपना भतीजा मानती थी। बाद के वर्षों में जब हम सबने उन्हें 'बुआजी' कहना शुरू किया तो उसे उन्होंने बहुत पसन्द किया। वे अपने निकट के सब रिश्तेदारों पर वैसा ही रोब दाब रखती भी थी। अन्त-अन्त में जब वे उत्तर प्रदेश की गवर्नर थी तो उन्होंने मुझे निमंत्रण भेजा था कि मुझे कभी समय निकालकर उनके अतिथि के रूप में खास तौर पर लखनऊ पहुँचना चाहिए।

गवर्नर की हैसियत में ही उनका स्वर्गवास हुआ। दुर्भाग्यवश उनके मृत्यु-दिन तक मैं उनके पास पहुँच नहीं पाया। ●

मुहम्मदअली जिन्ना

१ कायदे-आजम मुहम्मदअली जिन्ना को भी मैंने सबसे पहले सन् १९१५ में देखा था। उस साल मैं अपने पिताजी के साथ ऊटी (उटकमण्ड) गया था। जिस ट्रेन में हम थे उसीसे जिन्नासाहब भी ऊटी जा रहे थे।

कुछ दिनों बाद ऊटी में एक जन-भोजन के अवसर पर हम फिर मिले थे। पिताजी के सुझाने पर उन्होंने मेरे साथ कच्छी में बातचीत की। मुझे आश्चर्य हुआ। उस समय तक मुझे यह कल्पना ही नहीं थी कि हमारे भाटिया समाज के अलावा दूसरे समाज के लोग भी कच्छी बोलना जानते हैं।

उसी साल के अन्त में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन में मैंने उनका भाषण सुना। भाषण के बीच उन्होंने किसी पुस्तक से कुछ वाक्य भी पढ़कर सुनाये थे।

बाद में जब श्रीमती बेसेण्ट हमारे घर आतीं तो उनसे मिलने ये अक्सर आया करते। एक बार जुहू में कोई जमीन खरीदने के [illegible] में मोटा [illegible] आये थे। उस वक्त भी ये हमारे बँगले पर

पधारे थे। बैठक में घुसते हुए उन्होंने रतनसीभाई का जनेऊ के समय का मुँडे सिर और हाथ में दण्डवाला बटुकधारी फोटो देखा तो चकित हुए। लेकिन फौरन पहचान लिया और कहा

'रतनसी है।'

जिन दिनों वे हाईकोर्ट में वकालत करते थे, उस समय के उनके कई किस्से लोगों को याद हैं। वे सर चिमनलाल सेतलवाड से उम्र में छोटे थे, लेकिन उनसे पहले बैरिस्टर बन चुके थे, इसलिए हाईकोर्ट में सीनियर माने जाते थे।

वे कोर्ट की अपनी बहस में प्रतिपक्षी के वकील की बातों को काटते, उसे धमकाते और कभी-कभी जज को भी डाँट देते! अपना वाक्य शायद ही कभी पूरा करते! वे प्रायः अपनी एक भवा के साथ हाथ अथवा कलम उठाकर, मुख-मुद्रा टेढ़ी-मेढ़ी बनाकर, आँखों को कपाल पर चढ़ाकर और मुँह-माथा हिला-डुलाकर ही अपनी बात खत्म करते थे।

एक बार हमारे एक मुकदमे के सिलसिले में मुझे कई दिनों तक बार-बार हाईकोर्ट जाना पड़ा था। उसी समय मुझे यह सब देखने-सुनने के मौके मिले थे। उन दिनों हाईकोर्ट में एक ऐसे जज थे, जिनको बार-बार दुपहरी में पश्चिम दिशावाले ओवल के मैदान से आनेवाली ठंडी हवा की ठंडक में बैठकर अपनी अदालत में वकीलों की दलीलें सुनते-सुनते नींद लग जाती और वे सो जाते! कभी-कभी तो उनकी नाक भी बजने लगती! जब वकील साहब की इस [illegible] अथवा [illegible] के सुन हो, तो आड़े-टेढ़े आवाज करने पर कहीं उनकी नींद खुलती!

एक बार ऐसे ही जज की अदालत में जिन्नासाहब किसी मामले

मुहम्मदअली जिन्ना

१८. कायदे-आजम मुहम्मदअली जिन्ना को भी मैंने सबसे पहले सन् १९१५ में देखा था । उस साल मैं अपने पिताजी के साथ ऊटी (उटकमण्ड) गया था । जिस ट्रेन में हम थे उसीसे जिन्नासाहब भी ऊटी जा रहे थे ।

कुछ दिनों बाद ऊटी में एक वन-भोजन के अवसर पर हम फिर मिले थे । पिताजी के बुलाने पर उन्होंने मेरे साथ कच्छी में बातचीत की । मुझे आश्चर्य हुआ । उस समय तक मुझे यह कल्पना ही नहीं थी कि हमारे भाटिया समाज के अलावा दूसरे समाज के लोग भी कच्छी बोलना जानते हैं ।

इसी साल के अन्त में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था । उस अधिवेशन में मैंने उनका भाषण सुना । भाषण के बीच उन्होंने किसी पुस्तक के कुछ वाक्य भी पढ़कर सुनाये थे ।

बाद में तो जब श्रीमती बेसेण्ट हमारे घर आतीं तो उनसे मिलने वे अक्सर आया करते । एक बार घुड़ में कोई नामीन दौड़ने के इनाम का मीरा देखने आये थे । उस वक्त भी वे हमारे बँगले पर

आगा खान

१९ एक बार मरहूम नामदार आगा खान हज के यात्रियों के ले जानेवाले हमारे 'मक्का-मदीना' जहाज को देखने आये थे। [illegible] पर मैंने ही उनका स्वागत किया था। मैं उस वक्त थोड़ी घबरा गया था। लेकिन उन्होंने एक-दो मिनट में ही मेरी सारी घबराहट दूर कर दी थी। प्रतिस्पर्धी के [illegible] को मिटाकर उनके साथ कुछ घुल-मिल जाने की कमाल पुरानों की [illegible] अमीरों की तरह ही उनमें भी थी।

उन्होंने मुझसे कहा था कि मेरे परदादा के साथ उनकी खासी अच्छी दोस्ती थी। जब कभी बम्बई आते और यहाँ रहते तो अक्सर [illegible] के साथ [illegible] करते थे।

बाद में उनके साथ बातचीत या व्यवहार के अधिक अवसर आने का मौका नहीं पड़ा है। लेकिन [illegible] में जब भी हमारी मुलाकात होती तो वे हमेशा ही आगे बढ़कर और [illegible] से सबसे पहले मेरा 'स्वागत' कर लिया करते! उनका [illegible] [illegible] और यह [illegible] हो गया है।

में बहस कर रहे थे। उनकी बगल में दूसरे कोई बड़े वकील बैठे थे। उन्होंने कहा

'किसके सामने बहस कर रहे हैं? अपने को नाहक क्यों थकाते हैं? जरा सामने तो देखिये। साहब तो सो रहे हैं। थोड़ी देर ठहर जाइये या फिर किताबें पछाड़िये तो वे जागेंगे!'

जिन्नासाहब 'जागते हों तो भी कभी कुछ समझते तो हैं ही नहीं।'

एक बार बर्मा-इमिग्रेशन-बिल पर दिल्ली की बड़ी धारा-सभा में बहस होनेवाली थी। यह बिल भारतीय व्यापारियों के हितों के विरुद्ध था। उन्हें अपना पक्ष समझाकर और धन्धे के हिसाब से उनकी फीस देकर उनका लिखित अभिप्राय प्राप्त करने के लिए हम उनके पास गये। उन्होंने साफ इनकार कर दिया। कहा

'बड़ी धारा-सभा में मुझे इस बिल पर बोलना पड़ेगा इसलिए वकील के धन्धे के हिसाब से मैं इसके बारे में अपनी राय नहीं दे सकूंगा। हां धारा-सभा के एक सदस्य के नाते आपका दृष्टिकोण अवश्य समझना चाहूंगा। उतनी बात मुझे समझा दीजिये।'

सन् १९३१ में लन्दन में जो गोलमेज-परिषद् हुई थी उसमें ब्रिटिश व्यापार के हित में की जानेवाली व्यवस्था के प्रस्ताव का जिन्नासाहब ने बड़ा विरोध किया था। ●

"विठ्ठल के परम भक्त ज्ञानेश्वर महाराज ने भी ऐसा ही कहा है 'भव-[illegible] ध्येय [illegible]'—भवसागर का तट इतना (कमर तक) ही है।

●

१ पूज्य केदारनाथजी ने विनोबाजी का पत्र सुनकर इसी विषय में सन्त तुकाराम का वह अभंग सुनाया जिसमें मायके जाती हुई पुत्री की तरह भीमा नदी के तट पर स्थित पंढरपुर के टीले पर कमर पर हाथ रखकर खड़े 'माय-बाप' विठ्ठल देख रहे हैं। इसमें भक्त ने सनातन अपनी अवस्था का वर्णन कर लिया है

माझेन संपत्ति हे कि माझे धन सकळ चरण विठ्ठलाचे।
[illegible] हा पथ माहेराची वाट, [illegible] भीर [illegible]।
[illegible] मन रामनाम गाजे [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
मायबाप [illegible] [illegible] वाट, [illegible] करि [illegible] [illegible]।
तुका म्हणे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मिठी मूक॥

"भक्ति-भावना मेरी सम्पत्ति और विठ्ठल-चरण ही मेरी सारी जायदाद है। यह जीवन भक्ति-रत पुत्री के लिए मायके की राह जैसा मीठा छोटा सीधा और सुखदायी है। [illegible] का साथ राम नाम का भजन-कीर्तन तथा नाम और [illegible] [illegible] की हाथों के [illegible] में शोभित है। इस तरह साधन रास्ते के बीच में पड़ी हुई भयंकरी इतनी [illegible] नदी कि मन पाँवों के पार भी जा सके। [illegible] [illegible] है मेरे माता-पिता [illegible] कमर पर हाथ रखकर यह मेरी राह देख रहे हैं। मेरा [illegible] मिठा मूक मन [illegible] है। [illegible] [illegible] के [illegible] के दर्शन करने के लिए [illegible] [illegible] [illegible] रहा है।

●

परिशिष्ट

[संस्मरण संख्या १५, (पृष्ठ ९९) पर प्रकाशित पंढरपुर की विठ्ठल-मूर्ति के विषय में काकासाहब कालेलकर विनोबाजी तथा केदारनाथजी के स्पष्टीकरण यहाँ दिये जा रहे हैं :]

१ इस सम्बन्ध में काकासाहब कालेलकर ने मुझे लिखा कि 'पुरुषातन' शब्द उनका नहीं हो सकता। सम्भवतः मेरी स्मृति गलत या गयी हो। इसका मुझे खेद है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे 'पुरुषातन' के बदले 'सनातन' शब्द पढ़ें।

काकासाहब ने अहमदाबाद से प्रकाशित 'संस्कृति' मासिक के अगस्त १९६४ के अंक में 'कमर पर हाथ किसलिए?' शीर्षक एक विस्तृत लेख भी लिखा है। उसका सम्बद्ध अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ।

जब भक्त भवनदी पार करने के लिए भगवान् से मदद की याचना करते हैं तब भक्तों की याचना सुनते ही एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना सहायता करने के लिए तत्पर भगवान् सदैव कमर पर हाथ रखकर तैयार रहते हैं। मनुष्य प्रतीक्षा करते समय भी कमर पर हाथ रखता है और सहायता के लिए करने की तैयारी के समय भी। ये दोनों भाव मुझे इष्ट लगे हैं। मैंने स्वयं सदैव पिछला अर्थ पसन्द किया है।

विनोबाजी ने अपने दिनांक ९ ११ ६६ के पत्र में इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है :

पण्ढरीनाथ विठ्ठल कमर पर हाथ रखकर खड़े हैं। इसमें निहित भावार्थ के सम्बन्ध में आपने अपनी पुस्तक में कुछ चर्चा की है। शंकराचार्य ने विठोबा के दर्शन के बाद जो संस्कृत-स्तोत्र रचा उसमें इसका अर्थ दिया है 'ममाग्रे भक्तानां इयं मात्रकमापम्' अर्थात् भवसागर बहुत गहरा है पर मेरे भक्तों के लिए वह गहरा नहीं कमर तक ही है।